प्रकाशक का वक्तव्य

अनन्त काल से मृत्यु के बाद जीवन की समस्या अत्यन्त ही मोहक रही है। मनुष्य सदा इस प्रश्न के चक्कर में पड़ा रहा है कि मृत्यु के बाद आत्मा का क्या होता है। प्रस्तुत पुस्तक, जैसा कि इसका नाम है, विस्तृत रूप से इसी विषय की विवेचना करती है; प्राचीन काल से चले आ रहे इस प्रश्न का समाधान प्रस्तुत करती है।

आधुनिक काल में इस समस्या पर बहुत-सी अटकलबाजियाँ लगायी गयी हैं। इसने बहुत से अनुसन्धान-कार्यों को भी आगे बढ़ाया है। भौतिक मृत्यु के बाद भी चेतनता के जारी रहने का तथ्य बहुत से आधुनिक चिन्तकों द्वारा भी स्वीकृत किया जा रहा है जिनमें अत्याधुनिक डा० जे० बी० राइन हैं जिन्होने इसके पक्ष में अपना विश्वास व्यक्त किया है। इस विषय पर बहुत-सी पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं; लेकिन अब तक उनमे से अधिकांश सूक्ष्म या प्रेतात्म-जगत् के बारे में लिखी गयी हैं। अब तक ज्यादा प्रेतलोक की परिस्थिति के बारे में ही अध्ययन किया है जो कब्र के बाहर के अनेक अपार्थिव लोकों मे सिर्फ एक है। आत्मवाद, प्रेतात्माओं को बुलाने वाली मण्डली एवं स्वीकृत माध्यमों का साक्षीपन ही इन पुस्तको का मुख्यतः विवेच्य विषय रहा है।

स्वामी शिवानन्द जी द्वारा लिखित प्रस्तुत पुस्तक सामान्य धारा से भिन्न है; क्योंकि यह बहुत हद तक प्राचीन आधिकारिक धर्मग्रन्थों, ज्ञान, तर्क, गहन अध्ययन एवं व्यक्तिगत

चिन्तन से प्राप्त तथ्यों पर आधारित है। यह मरणोत्तर अस्तित्व के सभी पहलुओं पर एक ऐसा प्रकाश डालती है जो दूसरी पुस्तकों में पूर्णरूपेण उपलब्ध नहीं है। प्रस्तुत पुस्तक इस विषय पर विभिन्न जातियों एवं धर्मों के विश्वासों (या मतों) की महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ भी देती है।

पुस्तक के वे अंश, जो मृतक से सम्बन्धित आचार एवं परम्पराओं के गुप्त रहस्य एवं उनके आन्तरिक अर्थ को बताते हैं, बहुत ही सूचनात्मक हैं। अन्त में परिशिष्ट एवं कहानियाँ एवं प्रारम्भ में अति-रोचक कविताएँ हैं जो विचारों को उभारने वाली एवं बहुत ही प्रेरणात्मक हैं।

हम यह महसूस करते हैं कि प्रस्तुत पुस्तक का अध्ययन लोगों में यह विश्वास पैदा करेगा कि मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है, कि मनुष्य के कर्म निश्चित रूप से उसके ऊपर मृत्यूपरान्त प्रतिक्रिया करते एवं उसके विचारों को प्रोत्साहित करते हैं। हमें कोई सन्देह नहीं है कि पाठकों को इस भौतिक शरीर से परे का ज्ञान होने पर इस पृथ्वी लोक पर स्थित इस भौतिक शरीर का वास्तविक मूल्याङ्कन करने में सहायता मिलेगी।

—प्रकाशक

प्रस्तावना

परलोक-विद्या या मृतात्माओं के एवं उनके रहने वाले लोकों का विज्ञान एक रोचक विषय है। यह एक रहस्यात्मक विज्ञान है जो बहुत ही रहस्य या छुपे आश्चर्यों से भरा पड़ा है। छान्दोग्योपनिषद् की पञ्चाग्नि-विद्या से इसका घनिष्ट सम्बन्ध है।

बहुत-सी विलक्षण वस्तुओं का आविष्कार करने वाले वैज्ञानिक, शक्तिशाली सम्राट् जिन्होंने आश्चर्यजनक कार्य किये, धार्मिक कवि, अद्भुत कलाकार, ब्रह्मज्ञ ब्राह्मण, ऋषि, योगी आये और चले गये। आप सभी यह जानने को अत्यन्त इच्छुक हैं कि वे कहां चले गये। क्या अभी भी उनका अस्तित्व है? मृत्यु के उस पार क्या है? क्या वे अस्तित्वहीन हो गये या शून्य-वायु में विलीन हो गये? ऐसे प्रश्न निर्बाध रूप से सबके हृदय में उठते रहते हैं। यह प्रश्न आज भी वैसे ही उठता है जैसा हजारों वर्ष पूर्व उठा करता था। इसे कोई भी नहीं रोक सकता, क्योंकि यह हमारी प्रकृति से अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है।

मृत्यु एक ऐसा विषय है जो सबकी गहन उत्सुकता से सम्बंधित है। आज या कल सभी मरेंगे। मृत्यु का भय सभी मानव-प्राणियों पर छाया रहता है। यह मृतक के सम्बन्धियों के ऊपर, जो मृतक-आत्मा का हाल जानने के लिए उत्सुक रहते है, अत्यन्त अनावश्यक दु:ख, शोक और चिन्ता लाता है।

इस प्रश्न ने पश्चिम मे भी बहुत से वैज्ञानिक क्षेत्रों में बड़े परिमाण मे रुचि एवं ध्यान को आकर्षित किया है। बहुत से परीक्षण किये गये हैं, लेकिन ये अनुसन्धान इसी प्रश्न

तक सीमित रहे हैं कि भौतिक शरीर के नाश के अनन्तर 'आत्मा रहती है या नहीं' या आत्मा का अस्तित्व है या नहीं। विज्ञान तथा मध्यस्थता के द्वारा प्रेतात्म-जगत् से सम्बन्ध स्थापित कर आत्मा के अस्तित्व को साबित कर दिया गया है।

इसका विज्ञान मृत्यु के सभी भयों का हरण कर लेगा एवं आपको इस योग्य बनायेगा कि आप इसे पर्याप्त प्रकाश में देख सकें और अपनी प्रगति में इसका महत्त्व जान सकें। यह अवश्य ही आपको मृत्यु को जीतने का एवं अमरता प्राप्त करने का उचित तरीका खोजने को उकसायेगा।

यह आपको जबर्दस्ती प्रोत्साहित करेगा कि आप तत्परता से ब्रह्म-विद्या का अध्ययन करें, सच्चा गुरु या दीप्त ऋषि की खोज करें जो आपको सही रास्ते पर लायें और कैवल्य एवं ब्रह्मज्ञान के रहस्यों को आपको बतायें।

इस पुस्तक में मृत्यु के दूसरे पक्ष का सही-सही वर्णन किया गया है। यह वैज्ञानिक तरीकों से परीक्षण किया गया है। एवं वर्णन किया गया है। यह पुस्तक इस विषय पर पर्याप्त सूचना देती है। यह इस विषय पर आपको तथ्यों का भण्डार देगी। इसमें उपनिषद् की शिक्षाओं के तत्त्वों का सन्निवेश है।

आप इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय की अज्ञानता एवं मिथ्या विश्वासों के कारण बहुत कष्ट सह चुके हैं। अगर आप इस पुस्तक को पढ़ें तो अज्ञान का पर्दा हट जायगा। आप मृत्यु के भय से स्वतन्त्र हो जायेंगे।

योग-साधना का एक लक्ष्य मृत्यु का प्रसन्नता और निर्भयता से सामना करना है। एक योगी या ऋषि या एक सच्चे साधक को मृत्यु का भय नहीं रहता। मृत्यु उन लोगों

से कांपती है जो जप, ध्यान एवं कीर्त्तन करते हैं । मृत्यु एवं उसके दूत उस तक पहुँचने का साहस तक नही कर सकते। भगवान् कृष्ण भगवद्गीता में कहते हैं, "मेरी शरण में आने से ये महात्मा फिर जन्म को प्राप्त नही होते, जो दुःख एवं मृत्यु का लोक है; वे परमानन्द में मिल जाते है।"

मृत्यु एक सांसारिक व्यक्ति को दुःखदायक है । एक निष्काम व्यक्ति मरने के बाद कभी नही रोता । एक पूर्ण-ज्ञान प्राप्त व्यक्ति कभी नही मरता । उसके प्राण कभी प्रस्थान नही करते । मृत्यु के भय पर विजय प्राप्त करो । मृत्यु की विजय सभी आध्यात्मिक साधनाओ की उच्चतम उपयोगिता है। भगवान् से प्रार्थना करो कि वह प्रत्येक जन्म में तुम्हें अपनी पूजा के योग्य बनाये । अगर तुम अनन्त आनन्द चाहते हो तो इस जन्म-मृत्यु के चक्र का नाश करो, अनन्त आत्मा मे वास करो और सदा के लिए आनन्दमय हो जाओ।

भीष्म की मृत्यु उनकी अपनी इच्छा पर निर्भर थी। सावित्री अपने पति सत्यवान् को अपनी सतीत्व-शक्ति के बल पर वापस लायी । भगवान् शिव की प्रार्थना से मार्कण्डेय ने मृत्यु को जीत लिया । तुम भी ज्ञान, भक्ति एवं ब्रह्मचर्य के बल पर मृत्यु को जीत सकते हो ।

तक सीमित रहे हैं कि भौतिक शरीर के नाश के अनन्तर 'आत्मा रहती है या नहीं' या आत्मा का अस्तित्व है या नहीं। विज्ञान तथा मध्यस्थता के द्वारा प्रेतात्म-जगत् से सम्बन्ध स्थापित कर आत्मा के अस्तित्व को साबित कर दिया गया है।

इसका विज्ञान मृत्यु के सभी भयों का हरण कर लेगा एवं आपको इस योग्य बनायेगा कि आप इसे पर्याप्त प्रकाश में देख सकें और अपनी प्रगति में इसका महत्त्व जान सकें। यह अवश्य ही आपको मृत्यु को जीतने का एवं अमरता प्राप्त करने का उचित तरीका खोजने को उकसायेगा।

यह आपको जबर्दस्ती प्रोत्साहित करेगा कि आप तत्परता से ब्रह्म-विद्या का अध्ययन करें, सच्चा गुरु या दीप्त ऋषि की खोज करें जो आपको सही रास्ते पर लायें और कैवल्य एवं ब्रह्मज्ञान के रहस्यों को आपको बतायें।

इस पुस्तक में मृत्यु के दूसरे पक्ष का सही-सही वर्णन किया गया है। यह वैज्ञानिक तरीकों से परीक्षण किया गया है। एवं वर्णन किया गया है। यह पुस्तक इस विषय पर पर्याप्त सूचना देती है। यह इस विषय पर आपको तथ्यों का भण्डार देगी। इसमें उपनिषद् की शिक्षाओं के तत्त्वों का सन्निवेश है।

आप इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय की अज्ञानता एवं मिथ्या विश्वासों के कारण बहुत कष्ट सह चुके हैं। अगर आप इस पुस्तक को पढ़ें तो अज्ञान का पर्दा हट जायगा। आप मृत्यु के भय से स्वतन्त्र हो जायेंगे।

योग-साधना का एक लक्ष्य मृत्यु का प्रसन्नता और निर्भयता से सामना करना है। एक योगी या ऋषि या एक सच्चे साधक को मृत्यु का भय नहीं रहता। मृत्यु उन लोगों

से काँपती है जो जप, ध्यान एवं कीर्त्तन करते है । मृत्यु एवं उसके दूत उस तक पहुँचने का साहस तक नही कर सकते। भगवान् कृष्ण भगवद्गीता में कहते हैं, "मेरी शरण में आने से ये महात्मा फिर जन्म को प्राप्त नहीं होते, जो दुःख एवं मृत्यु का लोक है; वे परमानन्द में मिल जाते है।"

मृत्यु एक सांसारिक व्यक्ति को दु.खदायक है । एक निष्काम व्यक्ति मरने के बाद कभी नही रोता । एक पूर्ण-ज्ञान प्राप्त व्यक्ति कभी नही मरता । उसके प्राण कभी प्रस्थान नहीं करते। मृत्यु के भय पर विजय प्राप्त करो। मृत्यु की विजय सभी आध्यात्मिक साधनाओं की उच्चतम उपयोगिता है। भगवान् से प्रार्थना करो कि वह प्रत्येक जन्म में तुम्हें अपनी पूजा के योग्य बनाये। अगर तुम अनन्त आनन्द चाहते हो तो इस जन्म-मृत्यु के चक्र का नाश करो, अनन्त आत्मा में वास करो और सदा के लिए आनन्दमय हो जाओ।

भीष्म की मृत्यु उनकी अपनी इच्छा पर निर्भर थी। सावित्री अपने पति सत्यवान् को अपनी सतीत्व-शक्ति के बल पर वापस लायी। भगवान् शिव की प्रार्थना से मार्कण्डेय ने मृत्यु को जीत लिया। तुम भी ज्ञान, भक्ति एवं ब्रह्मचर्य के बल पर मृत्यु को जीत सकते हो।

●

मरणोन्मुख उपासक की प्रार्थना

(ईशावास्योपनिषद्)

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ।।

आदित्यमण्डलस्थ ब्रह्म का मुख ज्योतिर्मय पात्र से ढका हुआ है। हे पूषन् ! मुझ सत्यधर्मा को आत्मा की उपलब्धि कराने के लिए तू उसे उघाड़ दे।

पूर्यन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन्समूह ।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि
योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ।।

हे जगत्पोषक सूर्य ! हे एकाकी गमन करने वाले ! हे यम (संसार का नियमन करने वाले) ! हे सूर्य (प्राण और रस का शोषण करने वाले) ! हे प्रजापतिनन्दन ! तू अपनी किरणों को हटा ले (अपने तेज को समेट ले) ! तेरा जो अतिशय कल्याणमय रूप है उसे मैं देखता हूँ। यह जो आदिमण्डलस्थ पुरुष है, वह मैं हूँ।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम् ।
ॐ क्रतो स्मर कृतं स्मर क्रतो स्मर कृतं स्मर ।।

अब मेरा प्राण सर्वात्मक वायुरूप सूत्रात्मा को प्राप्त हो और यह शरीर भस्मशेष हो जाय। हे मेरे सङ्कल्पात्मक मन ! अब तू स्मरण कर, अपने किये हुए को स्मरण कर, अब तू स्मरण कर, अपने किये हुए को स्मरण कर।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम॥

हे अग्ने! हमें कर्मफलभोग के लिए सन्मार्ग से ले चल। हे देव! तू समस्त ज्ञान और कर्मों को जानने वाला है। हमारे पापण्डपूर्ण पापों को नष्ट कर। हम तेरे लिए अनेक नमस्कार करते हैं।

●

मृत्यु-संस्तुति

हे मृत्यु, हेयम ! तुझे है अभिनन्दन
तू है ईश्वरीय नियमों का प्रणेता
सभी बनते हैं तेरे ही शिकार
बनते हैं तेरे ही ग्रास।
तू काल है
तू है धर्मराज।
हे सर्वज्ञ काल !
तू है नियम का विधायक।
तू है ज्ञाता
तीनों कालों का—भूत, वर्त्तमान और भविष्य।
तूने ही पुराकाल में दी थी दीक्षा
नचिकेता को, आत्म या ब्रह्मविद्या की।
मैंने काल या मृत्यु का किया है अतिक्रमण,
मैं हूँ सनातन तत्त्व।
कहाँ है काल उस सनातन तत्त्व में ?
काल तो है मात्र मानस सृजन।
मैंने मन का किया है अतिक्रमण।
मुझे भय है नहीं अब मृत्यु का
हे मृत्यु ! मैं हूँ परे तेरी पहुँच के
मैं करता हूँ तेरी अल्विदा।
मैं हूँ कृतज्ञ तेरे सारे सदय कार्यों के लिए
तुझे है अनेकानेक नमस्कार।
हे यम ! मैं चाहता हूँ विदेह-मुक्ति में प्रवेश।
मैं प्राप्त करूँगा परमात्मा में अखण्ड विलयन।

वास्तविक जीवन क्या है

नित्य आत्मा में जीवन
आत्मसुख का सतत आस्वादन
सदा-सर्वदा परमात्मा का पूजन
यही है वास्तविक जीवन ।

सदा ईश्वर के नाम का जपन
सर्वदा उसी की कीर्ति का गायन
सदा उसी का स्मरण
यही है वास्तविक जीवन ।

करो यम नियम का अभ्यास
करो बीमार और गरीबों की सेवा
करो श्रुतियों का श्रवण,
यही है वास्तविक जीवन ।

चिन्तन तथा ध्यान
गुरु की सेवा
उनके उपदेशों का अनुगमन
यही है वास्तविक जीवन ।

अपने आत्मा का साक्षात्कार
निज-आत्मा का ही सर्वत्र दर्शन
और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति
यही है वास्तविक जीवन ।

मानवता के लिए अर्पित जीवन
करना आत्मसंयम का अभ्यास
करना मन और इन्द्रियों पर शासन
यही है वास्तविक जीवन।

करो प्राणायाम का अभ्यास
करो ब्रह्मविचार
करो सङ्कल्प का पालन
यही है वास्तविक जीवन।

ॐ में ही निवास
ॐ का ही सतत कीर्त्तन
ॐ का ही अविरल ध्यान
यही है वास्तविक जीवन।

नामरूपों की कर उपेक्षा
करना अन्तर्हित वस्तु का दर्शन
करना अमृत-सुधा का पान
यही है वास्तविक जीवन।

वास्तविक मृत्यु क्या है ?

नित्यप्रति गीता, उपनिषदों का नही पठन
और न सदा ईश्वर का स्मरण
न साधु एवं गुरुओं का सेवन
यही है वास्तविक मरण।

न रखना समदर्शन
न मन का ही सन्तुलन
न आत्मदृष्टि का ही अवलम्बन
यही है वास्तविक मरण।

ब्रह्मज्ञान से वञ्चित
विस्तृत हृदय से भी शून्य
दानशील कार्यो से रहित
यही है वास्तविक मरण।

देह से ही तादात्म्य-प्राप्त
ईश्वरीय स्वरूप का विस्मरण
निरुद्देश्य जीवन में भ्रमण
यही है वास्तविक मरण।

खाना, पीना, मौज उडाना
समय का व्यर्थ गमन
निज नाम और यश को खोना
यही है वास्तविक मरण।

जूआ तथा ताश के खेल
उपन्यास, मदिरापान तथा धूम्रपान
गपशप, निन्दा, मात्सर्य में संलग्न
यही है वास्तविक मरण।

पिशुनता, निन्दा,
दूसरों के दोषदर्शन
ठगी तथा मिथ्याचरण
यही है वास्तविक मरण।

अर्थ का अवैधिक उपार्जन
परस्त्रियों के प्रति दुराचरण
दूसरों के प्रति हिंसात्मक आचार
यही है वास्तविक मरण।

विषयपरायण जीवन
वीर्य का करना व्यर्थ नाश
कामदृष्टि का अवलम्बन
यही है वास्तविक मरण।

जन्म तथा मृत्यु

जन्म तथा मृत्यु हैं दो भ्रामक दृश्य
इस जगत् रूपी नाटक के ।
वास्तव में न तो कोई जन्म लेता है
और न मरता ही है
न कोई जाता है और न आता ही है ।

यह है माया का जादू
यह है मन का ही खेल
ब्रह्म का है एकमेव अस्तित्व ।

शरीर के लिए ही है जन्म
पञ्चतत्त्वों से ही होता शरीर का गठन
आत्मा तो है जन्म-रहित तथा मृत्यु-रहित
मृत्यु है भौतिक शरीर का विक्षेपण ।

यह है सुषुप्ति के ही समान
जन्म है सुषुप्ति से जागरण
हे राम ! मृत्यु से भय न कर
जीवन तो है अखण्ड और अबाध ।

पुष्प मुरझाते हैं पर सुरभि फैलती रहती है
शरीर विनष्ट होता है
परन्तु आत्म-सुरभि अमर
एवं शाश्वत है ।

विवेक करना सीखो
सत्य एवं असत्य के बीच
सदा असीम का करो चिन्तन
यही है जन्म-मृत्यु से रहित, सनातन ।

माया तथा मोह का करो अतिक्रमण
तीनों गुणों से बनो अतीत
शरीर के प्रति आसक्ति का करो त्याग
अमरात्मा में बनो विलीन ।

पुनर्जन्म

मन के ही कारण है पुनर्जन्म
मन के ही व्यवहारों पर है यह अवलम्बित ।
तुम विचारते हो, मन में वनते हैं संस्कार
संस्कार ही है वृत्ति का बीज
ये संस्कार एक-दूसरे से वनकर आवद्ध
देते हैं वासना को जन्म ।

जैसा तुम विचारते हो
वैसा ही तुम वन जाते हो ।
अपने विचारों के अनुकूल ही
तुम जन्म धारण करते हो ।

सत्त्व तुम्हे ऊपर ले जाता है
रजस् मध्य मे ही रखता है
तमस् अत:पतन दिलाता है
दुर्गुणों मे ही आच्छन्न रखता है ।

मन ही कारण है
मनुष्य के बन्धन और मुक्ति का ।
मलिन मन बांधता है
शुद्ध मन मुक्ति प्रदान करता है ।

जब तुम सत्य का साक्षात्कार करते हो
तुम आत्मा को जानते हो ।
भावी जन्मों के कारण का विनाश होता है,
वृत्तियाँ विनष्ट होती हैं, संस्कार भस्मीभूत
होते हैं ।

तुम पुनर्जन्म से मुक्त हो
तुम पूर्णता प्राप्त करते हो
तुम परम शान्ति पाते हो
तुम अमर बन जाते हो—यही सत्य है।

यदि एक ही जन्म है
यदि बुरे कर्म करने वाले नरकाग्नि में
जलते हैं सर्वदा
तो, प्रगति की कोई आशा नहीं
यह बुद्धिग्राह्य नहीं है।
यह तर्कसङ्गत नहीं है।

वेदान्त में निकृष्ट पापी के लिए भी
आशा है
कितना समुन्नत है यह दर्शन !
यह घोषित करता है
मित्र ! तू शुद्ध आत्मा है
पाप तुझे छू नहीं सकता।
अपने गत ईश्वरत्व को प्राप्त करो
पाप कुछ भी नहीं है।

पाप भूल मात्र है
तुम पल मात्र में ही पाप को विनष्ट कर सकते हो
वीर बनो, प्रसन्न रहो
उठो, जागो, उत्तिष्ठत जाग्रत।

गीता कहती है—
"निकृष्ट पापी भी
धर्मात्मा बन सकता है,

वह ज्ञान-नौका द्वारा
पाप सन्तरण कर सकता है।"

इससे क्या समझने हो, हे मित्र !
प्रतिभाशाली लड़का, शिशुपन में ही पियानो
बजाता है
बचपन में ही भाषण देता है
वह गूढ गणित की समस्याओं को हल कर
देता है।

एक लड़का अपने पूर्व-जन्म का विवरण
देता है
दूसरा पूर्ण योगी के रूप मे प्रकट होता है
इससे यह प्रमाणित है कि पुनर्जन्म है।
बुद्ध ने बहुत जन्मों में ही अनुभव प्राप्त
किया था,
अन्तिम जन्म में ही वे बुद्ध बने।

जिसे सङ्गीत में रुचि है
वह कई जन्मों में अनुभव प्राप्त करता है
तथा अन्ततः एक जन्म में पूर्ण कुशल बन जाता है।
हर जन्म में वह सङ्गीत के सस्कार का अर्जन
करता है,
शनैः-शनैः वासनाएँ तथा रुचि बढती जाती है,
किसी एक जन्म मे वह कुशल सङ्गीतज्ञ बन जाता है।
यही बात है प्रत्येक कला के विषय मे।

बच्चा माँ का दूध पीता है,
शिशु बत्तख तैरते है
पूर्व-जन्म के संस्कारो से ही।

सारे सद्गुण एक जन्म में ही विकसित नहीं

हो सकते।

क्रमिक प्रगति द्वारा ही मनुष्य
सभी सद्गुणों का अर्जन कर सकता है।

साधुजन सभी सद्गुणों में पारङ्गत होते हैं
साधुओं और सिद्धों के अस्तित्व से
पुनर्जन्म प्रमाणित होता है।

एक पत्र

५ दिसम्बर, १९५७

अमरता की सन्तानो !

एक जीवन्त, अपरिवर्तनशील, शाश्वत चेतना है जो सभी नाम एवं रूपों में अन्तर्निहित है। वह परमात्मा या ब्रह्म है।

परमात्मा सभी क्रियाओं का अन्त है। वह सभी साधनों एवं योगाभ्यासों का अन्त है। उसे खोजो। उसे जानो। तभी तुम स्वतन्त्र एवं पूर्ण हो सकते हो। संसार को एक मरीचिका की तरह देखो। निःस्वार्थ सेवा, वैराग्य, अविषय, प्रार्थना एवं चिन्तन-परायण जीवन व्यतीत करो। तुम शीघ्र ही ईश्वर-साक्षात्कार कर लोगे।

ईश्वर तुम्हें प्रसन्न रखे ! ॐ तत्सत्।

तुम्हारी अपनी ही आत्मा,
स्वामी शिवानन्द

विषय-सूची

सप्तम प्रकरण—प्रेतात्म-विद्या

अष्टम प्रकरण—मृतकों के लिए श्राद्ध तथा प्रार्थना

नवम प्रकरण—मृत्यु पर विजय

दशम प्रकरण—कथा-वार्त्ता

एकादश प्रकरण—पत्र

परिशिष्ट

मृत्यु क्या है ?

१. मृत्यु क्या है ?

इस स्थूल शरीर से जीवात्मा का अलग हो जाना ही मृत्यु कहलाती है। मृत्यु के अनन्तर ही नवीन तथा उत्तम जीवन का प्रारम्भ होता है। मृत्यु आपके व्यक्तित्व और आत्म-चेतना को रोकती नही। यह तो जीवन के उत्तम स्वरूप का द्वार उन्मुक्त करती है। इस भाँति मृत्यु पूर्णतर जीवन का प्रवेश-द्वार है।

जन्म और मरण तो माया के जादू है। जो जन्म लेता है, वह मरना आरम्भ करता है। जीवन ही मरण है और मरण ही जीवन। इस संसार-रूपी रङ्गभूमि मे प्रवेश करने तथा बाहर जाने के लिए जन्म और मरण ये दो द्वार हैं। वास्तव में न तो कोई आता है और न कोई जाता ही है। ब्रह्म अर्थात् जो शाश्वत सत्ता है, एकमात्र वही विद्यमान है।

जिस प्रकार आप एक घर से निकल कर दूसरे घर मे प्रवेश करते है उसी प्रकार जीवात्मा भी अनुभव प्राप्त करने के लिए एक शरीर से निकल कर दूसरे शरीर मे जाता है। जिस प्रकार एक मनुष्य पुराने फटे हुए वस्त्रों को निकाल फेंकता है तथा नये वस्त्र धारण करता है; उसी भाँति इस शरीर का निवासी (पुरुष) जीर्ण-शीर्ण शरीर को फेंक कर नये शरीर में प्रवेश करता है।

मृत्यु जीवन का अन्त नही है। जीवन नित्य निरन्तर प्रवाह-शील प्रगति है, जिसका कभी भी अन्त नही। यह तो गुजरने का मार्ग है। प्रत्येक जीवात्मा को अपना अनुभव प्राप्त

तथा नया विकास साधने के लिए उसमें होकर जाना पड़ता है। इस भाँति मृत्यु एक आवश्यक घटना है।

इस शरीर से जीवात्मा का अलग होना, निद्रा से अधिक कोई विशेष बात नहीं है। जिस प्रकार मनुष्य सो जाता है और जाग उठता है; उसी भाँति जन्म और मृत्यु ये दोनों ही हैं। मृत्यु निद्रा की-सी दशा है और जन्म जागृति की-सी। मृत्यु श्रेष्ठतर नवीन जीवन का विकास प्रारम्भ करती है। विवेकी तथा ज्ञानी पुरुष मृत्यु से भयभीत नहीं होते; क्योंकि वे जानते हैं कि मृत्यु तो जीवन का प्रवेश-द्वार है। उन ज्ञानी जन के लिए मृत्यु उस म्यान के सदृश नहीं है, जिसमें रहने वाली तलवार जीवन-सूत्र को काट डालती है; परन्तु उनके लिए तो मृत्यु देवदूत बनी रहती है, जिसके पास स्वर्ण की वह कुञ्जी है, जो आत्मा को विशेष विकसित, पूर्ण और सुखमय स्थिति का अनुभव करने के लिए जीवन का द्वार उन्मुक्त कर देती है।

प्रत्येक जीवात्मा की स्थिति एक वृत्त के समान है। इस वृत्त की परिधि किसी भी स्थान पर नहीं है; परन्तु इसका केन्द्र इस शरीर में है। एक शरीर से दूसरे शरीर में इस केन्द्र का स्थानान्तरित होना ही मृत्यु कहलाती है। तो फिर तुम मृत्यु से क्यों भयभीत होते हो ?

जो यह सर्वोत्तम आत्मा परमात्मा है, वह मृत्यु-रहित है, विनाश-रहित है, काल-रहित है, कारण-रहित है और दशा-रहित है। वह इस शरीर, मन तथा समस्त संसार का मूल-कारण अथवा अधिष्ठान है, पाँच महाभूतों से बने हुए इस शरीर की ही मृत्यु होती है। भला इस शाश्वत आत्मा की मृत्यु किस प्रकार हो सकती है; क्योंकि आत्मा तो देश, काल तथा कारण से परे है।

यदि तुम जन्म-मृत्यु से छुटकारा पाना चाहते हो तो तुम्हें बिना शरीर का बनना पड़ेगा। कर्म के परिणाम-स्वरूप ही यह शरीर रहता है। तुम्हे ऐसा कर्म नही करना चाहिए, जिसमें कि फल की आशा हो। यदि तुम अपने-आपको राग-द्वेष से बचा सकते हो तो तुम कर्म से मुक्त रह सकोगे। यदि तुम केवल अपने अहङ्कार को मार डालो तो तुम अपने-आपको राग-द्वेष से मुक्त रख सकोगे। उस अविनाशी आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर, यदि तुम अपने अज्ञान का निवारण कर सको तो तुम अपने अहङ्कार को दूर कर सकोगे। इस शरीर का मूल-कारण एकमेव अज्ञान ही है।

यह आत्मा सभी प्रकार के शब्द, रूप, रस, स्पर्शादि से परे है। यह स्वय निराकार एव निर्गुण है। यह प्रकृति से भी परे है। यह तीन प्रकार के (स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण) शरीर से तथा शरीर के पाँच कोशो से परे है। यह अनन्त, अविनाशी तथा स्वय-प्रकाश है। जो पुरुष इस शाश्वत आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है, वह आपने-आपको काल के कराल गाल से बचा लेता है।

२. मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है

शरीर मे रहने वाली व्यक्तिगत आत्मा ही 'जीवात्मा' कहलाती है। ये जीवात्माएँ अपनी क्रियाओं के सम्पादनार्थ तथा इस जगत् से अनुभव प्राप्त करने के लिए, विविध शरीरों का निर्माण करते हैं। स्व-निर्मित इन शरीरो मे वे जीव प्रवेश करते हैं और जब वे शरीर रहने के अनुपयुक्त हो जाते हैं, तब उन्हें वे परित्याग कर देते हैं। वे जीव पुन: नवीन शरीरों का निर्माण करते है और पुन. उसी प्रकार उन शरीरो का भी परित्याग कर देते हैं। यह प्रवेश तथा निर्गमन ही [illegible]

आविर्भाव तथा तिरोभाव कहलाता है। शरीर में जीवात्मा का प्रवेश होना 'जन्म' कहलाता है और शरीर से जीवात्मा का अलग होना 'मरण' कहलाता है। यदि शरीर में जीवात्मा विद्यमान न हो तो उसे मृतक कहते हैं।

स्त्री के शोणित में पुरुष के शुक्र के सम्मिश्रण की क्रिया को माता के उदर में बालक का गर्भ धारण करना कहते हैं। पुरुष के शुक्र के अणु तथा स्त्री के शोणित के अणु जीवाणु हैं। वे कोरी आँखों से दिखायी नहीं पड़ते हैं; परन्तु सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से वे दृष्टिगोचर होते हैं। सामान्य रूप से इस प्रकार के जीवाणुओं के सम्मिश्रण को ही 'गर्भ' कहते हैं तथा वैज्ञानिक रीति से उसे शोणित के फलरूप होने की क्रिया कहते हैं।

एक व्यक्ति की मृत्यु के विषय में जो घटनाएँ होती हैं, उनके क्रम को जानने के लिए तथा इस विषय में वर्तमान अज्ञान के आवरण को विदीर्ण करने के लिए विचारशील मानव सदा ही प्रयत्नशील रहा है; परन्तु मृत्यु के परे जीवन के विषय में, जो अज्ञान का आवरण है, उसे दूर करने में मनुष्य को पूर्ण सफलता मिल चुकी है, यह नहीं कहा जा सकता।

इस रहस्य के उद्घाटन के लिए आधुनिक विज्ञान भी प्रयत्नशील है; परन्तु अद्यावधि कोई ऐसा तथ्य इसके हाथ नहीं लगा है, जो किसी प्रकार की मान्यता की आधारभूमि बन सके। परन्तु इस विषय में जो प्रयोग किये जा रहे हैं, उनसे बहुत-सी रोचक बातों का पता चल रहा है।

ऐसा कहा जाता है कि इस बात का अभी तक पता नहीं लग सका कि एक कोश से बने हुए शरीर की स्वाभाविक मृत्यु कब हुई? जब इस पृथ्वी पर एक कोश से बने हुए प्राणियों के जीवन का प्रारम्भ हुआ, उस समय उनके लिए मृत्यु अज्ञात

थी। जब एक कोश से बने हुए प्राणियों से अनेक कोश वाले प्राणियों का इस जगत् में विकास हुआ, तभी से यह मृत्यु का दृश्य देखने में आता है।

विज्ञान की प्रयोगशालाओं में किये गये प्रयोगों से पता चला है कि बिल्ली या मुर्गे के शरीर से अलग किये हुए चुल्लिका-ग्रन्थि, स्त्रीबीज, अण्डकोश, प्लीहा, हृदय, गुरदा इत्यादि सम्पूर्ण अङ्ग जब जीवित रखे जाते हैं तो, उनमें नये कोश तथा तन्तुओं का उभार होने के कारण उनके आकार तथा परिमाण में वृद्धि होती है।

यह भी जानने में आया है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व समाप्त हो जाने के अनन्तर भी शरीर के अङ्ग अपनी क्रियाएँ करते रहते हैं। रुधिर के श्वेत कणों को यदि संभाल कर रखा जाय तो वे, जिस शरीर से निकाले गये हैं, उसके नाश हो जाने पर भी, महीनों तक जीवित रहते हैं। परन्तु यह बात सच है कि उनमें जो जीवन है, वह रक्तकणों का जीवन है, वह उस व्यक्ति का जीवन नहीं है।

मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है। यह तो केवल एक व्यक्तित्व के विकास का अन्त है। [illegible] बनने के लिए जीवन सदा प्रवहनशील है तथा जब तक वह अनन्त में विलीन नहीं हो जाता, तब तक वह प्रगतिशील बना रहता है।

२ मृत्यु का भय

श्री वशिष्ठ मुनि अपने योगवासिष्ठ में कहते हैं
[illegible] से होने वाली [illegible] के कारण, [illegible] शरीर को

नाड़ियों की शक्ति क्षीण पड़ जाती है और उसके परिणाम-स्वरूप नाड़ियों के सङ्कोच एवं विकास की गति अवरुद्ध हो जाती है। नाड़ियों के इस सङ्कोच और विकास के कारण ही अन्दर का श्वास बाहर और बाहर का श्वास अन्दर आता-जाता रहता है। इस गति के अवरुद्ध होने से शरीर अपना सन्तुलन खो बैठता है तथा पीड़ा अनुभव करता है। इसके कारण न तो अन्दर का श्वास भलीभाँति बाहर होता है और न बाहर का श्वास ही भलीभाँति शरीर में पुनः प्रवेश करता है। श्वासोच्छ्वास की क्रिया अवरुद्ध हो जाती है। श्वासोच्छ्वास की क्रिया में अवरोध होने से मनुष्य अचेत हो जाता है और मृत्यु को प्राप्त होता है। व्यक्ति की सम्पूर्ण वासनाएँ तथा आसक्तियाँ जो उस समय उसके अन्दर वर्त्तमान होती हैं, वे सब-की-सब बाहर निकल आती हैं। जो व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण वासनाओं तथा संस्कारों के साथ शरीर के अन्दर रहता है, उसे ही जीव कहते हैं। जब शरीर मृत्यु को प्राप्त होता है, तब व्यक्ति के अन्दर रहने वाले प्राण जीव के साथ शरीर से बाहर निकल आते हैं और वायु में भटकते रहते हैं। वायुमण्डल की वायु इस प्रकार के जीवों के साथ रहने वाले अनेक प्राणों से आपूर्ण रहती है। वायु में रहने वाले ये जीव अपने पूर्व-जीवन के अनुभवों के कारण, उन प्राणों के अन्दर टिके रहते हैं। मैं उन्हें देख सकता हूँ। इस भाँति जो जीवात्मा अपनी सम्पूर्ण कामनाओं के साथ रहता है, उसे उस समय प्रेत (परलोक में गया हुआ) कहते हैं।

"जहाँ पर जब एक (शरीर) मृत्यु को प्राप्त होता है तब मृत्यु की अचेतनावस्था दूर हो जाने पर वह (जीव) वहीं पर दूसरे लोक का अनुभव करने लगता है।"

४. मृत्यु के चिह्न

मृत्यु के वास्तविक चिह्न को खोज निकालना बहुत ही कठिन है। हृदय के स्पन्दन का स्तम्भित हो जाना, नाड़ी की गति रुक जाना अथवा श्वासोच्छ्वास का स्थगित होना—ये मृत्यु के वास्तविक चिह्न नही है। हृदय का स्पन्दन तथा नाड़ी एव श्वासोच्छ्वास इत्यादि क्रियाओं का बन्द होना, अवयवों का कठोर पड़ जाना, शरीर में उष्णता का अभाव—ये सभी मृत्यु के सामान्य कारण है। नेत्रों में अपना प्रतिबिम्ब पडता है कि नही - इसका पता डाक्टर लगाते है और उसके पाँव को झुकाने का भी प्रयास करते हैं, परन्तु ये चिह्न मृत्यु के ठीक-ठीक चिह्न नही है। कारण यह है कि ऐसे बहुत से उदाहरण देखने में आये है कि श्वासोच्छ्वास तथा हृदय की धड़कन बन्द होने पर भी कुछ समय पश्चात् वे व्यक्ति पुन जीवित हो उठे।

हठयोगियों को पेटी में बन्द कर उन्हें चालीस दिन तक पृथ्वी के अन्दर गाड देते हैं। उसके अनन्तर उन्हे बाहर निकाला जाता है और वे जीवित रहते है। श्वासोच्छ्वास दीर्घ काल तक रोका जा सकता है। यदि कृत्रिम रूप से प्राणायाम के द्वारा श्वास को रोका जाय तो भी दो दिवस तक श्वासोच्छ्वास बन्द रहता है। इस विषय के बहुत से उल्लेख पाये जाते है। लगातार घण्टों तक तथा कई दिनो तक भी हृदय की धडकन रोकी जाती है और पुनः चालू की जाती है। इससे यह कहना बहुत कठिन है कि मृत्यु का ठीक तथा अन्तिम चिह्न क्या हो सकता है? शरीर का बिगड जाना तथा सड जाना ही मृत्यु का अन्तिम चिह्न हो सकता है।

मृत्यु के अनन्तर शरीर बिगडने लगे, इसके पहले ही किसी को तुरन्त गाड़ नही देना चाहिए। कोई ऐसा सोच सकता है

कि अमुक व्यक्ति मर गया है; परन्तु हो सकता है कि वह मनुष्य अर्धसमाधि, अचेतनावस्था अथवा समाधि की दशा में रह रहा हो। ये सम्पूर्ण अवस्थाएँ मृत्यु से मिलती-जुलती हैं। वाह्य चिह्न समान ही होते हैं।

हृदय की गति रुक जाने के कारण जिन लोगों की मृत्यु होती है, उनके शव को तुरन्त ही नहीं गाड़ देना चाहिए; क्योंकि ऐसा सम्भव है कि कुछ समय अनन्तर उनका श्वासोच्छ्वास पुनः चालू हो जाय। शरीर में विगाड़ होने के पश्चात् ही उनके गाड़ने आदि की क्रिया करनी चाहिए।

एक योगी स्वेच्छा से अपने हृदय के स्पन्दन को रोक सकता है, वह समाधि की दशा में घण्टों अथवा दिनों तक रह सकता है। समाधि-अवस्था में हृदय की धड़कन तथा श्वासोच्छ्वास की क्रियाएँ नहीं होतीं। यह निद्रा-रहित निद्रा अथवा सम्पूर्ण चेतनावस्था है। जब योगी स्थूल चेतना की स्थिति में आता है तब हृदय की धड़कन तथा श्वासोच्छ्वास की क्रियाएँ पुनः प्रारम्भ हो जाती हैं। विज्ञान इस विषय का कुछ स्पष्टीकरण नहीं कर सकता। डाक्टर जब स्वयं अपनी आँखों से इन अवस्थाओं को देखते हैं तो वे अवाक् हो जाते हैं।

५. मृत्यु के समय तत्त्वों का अलग होना

यह स्थूल शरीर पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश—इन पाँच महाभूतों से बना हुआ है। देवताओं का शरीर तैजस अथवा दिव्य पदार्थ का बना होता है। उनमें अग्नि-तत्त्व की अधिकता रहती है। इसी भाँति जलचरों में जल-तत्त्व तथा पक्षियों में वायु-तत्त्व की अधिकता रहती है।

शरीर के अन्दर जो कठोरता का अंश है, वह पृथ्वी-तत्त्व के कारण है। रस-भाग जल के कारण है। शरीर में जो तुम

उष्णता का अनुभव करते हो, वह अग्नि-तत्त्व के कारण है। शरीर का हिलना-डुलना तथा दूसरी क्रियाएँ वायु के कारण होती हैं। अवकाश आकाश के कारण है। जीवात्मा इन पाँचों तत्त्वों से भिन्न है।

पाँचों महातत्त्व प्रकृति के अक्षय कोष से उत्पन्न हुए हैं। मृत्यु के पश्चात् ये तत्त्व अलग हो कर अपने मूलभूत तत्त्वों में विलीन हो जाते हैं। पार्थिव तत्त्व अपने उस मूल कोष में जाकर मिल जाता है जो कि पृथ्वी-तत्त्व से बना होता है। दूसरे तत्त्व भी अपने-अपने मूल-तत्त्व में जा मिलते हैं।

मृत शरीर को स्नान करा कर नया वस्त्र धारण कराते हैं और उसके अनन्तर उसे श्मशान-भूमि में ले जाते हैं। वहाँ उसे अग्नि की चिता पर रखते हैं। इस समय जो मन्त्र पढ़ते हैं, उसमें प्राण-तत्त्व को बोधित करते हैं। प्राण-तत्त्व को इसलिए सम्बोधित किया जाता है कि जिससे मुख्य प्राण स्थूल शरीर से पञ्च-प्राणों को विमुक्त कर दे और और वे बाहर की वायु में रहने वाले अपने-अपने तत्त्वों में मिल जायें। उसके पश्चात् शरीर को लक्ष्य करके मन्त्र पढ़ा जाता है, जिससे कि वह अपने पाँच तत्त्वों—पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश के साथ मूल-स्रोत में विलीन हो जाय। उसके अनन्तर शरीर में अग्नि लगा देते हैं। प्राण-सहित जीवात्मा इस भाँति शरीर से विलग होकर चेतना में प्रवेश करता है और स्थूल तत्त्वों से अलग होते ही अपनी आगे की यात्रा प्रारम्भ कर देता है।

जो-जो इन्द्रियाँ अधिष्ठाता देवों के साथ रह रही होती हैं, उन (इन्द्रियों) की क्रियाएँ बन्द हो जाती हैं। दृष्टि सूर्य के अन्दर चली जाती है, जिस सूर्य से आँख को देखने की शक्ति मिली थी। वाणी अग्नि में चली जाती है। प्राण वायु में मिल

जाते हैं। श्रोत्र दिशाओं में मिल जाते हैं। शरीर पृथ्वी में मिल जाता है। शरीर के लोम ऋतु-कालीन वनस्पति में मिल जाते हैं। सिर के केश वृक्षों में मिल जाते हैं तथा रक्त एवं वीर्य जल में मिल जाते हैं।

६. उदान वायु के कार्य

जिस वायु को पवन अथवा हवा कहते हैं, वही वायु प्राण-शक्ति है। प्राण इन्द्रियों को गतिमान् करता है। प्राण विचार को उत्पन्न करता है। प्राण शरीर को गति प्रदान करता है और गतिशील बनाता है। प्राण अन्न को पचाता, रक्त-सञ्चार करता तथा मल-मूत्र को बाहर निकालता है। प्राण श्वासोच्छ्वास की क्रिया कराता है। प्राणों के द्वारा ही तुम देखते, सुनते, स्पर्श करते, स्वाद चखते तथा विचार करते हो। समष्टि-प्राण हिरण्यगर्भ अथवा ब्रह्मा है। प्रकृति का व्यक्त होना प्राण है। स्थूल प्राण श्वास तथा सूक्ष्म प्राण जीवनशक्ति है।

जिस प्रकार फुटबाल के अन्दर रबर की एक थैली होती है, उसी प्रकार इस स्थूल शरीर के अन्दर सूक्ष्म शरीर रहता है। मृत्यु के समय उदान वायु इस सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से बाहर खींच लाता है। जो स्वप्नावस्था में कार्य करता है, जो स्वर्ग को जाता है; वह सूक्ष्म शरीर है। उदान वायु सभी प्रकार के प्राणों को वहन करने वाला वाहन है। यह उदान वायु भोजन को निगलने में सहायक होता है। जब तुम प्रगाढ़ निद्रा में होते हो, तब यह तुम्हें ब्रह्म के पास पहुँचाता है। उदान वायु का निवास-स्थान कण्ठ है।

सारे प्राण, मन, बुद्धि, इन्द्रिय तथा स्थूल शरीर का आधार तथा मूल-कारण यह अजर अमर आत्मा है। वह तुम्हारे हृदय-

प्रकोष्ठ में रहता है। वहाँ एक सौ एक (१०१) नाड़ियाँ हैं। इन सभी नाड़ियों की बहत्तर सहस्र (७२,०००) उपनाड़ियाँ हैं। रक्त-सञ्चार की क्रिया करने वाला व्यान इन नाड़ियों में गतिमान् रहता है।

इन नाड़ियों में से एक मुख्य नाड़ी द्वारा उदान वायु बाहर आता है। वह उदान वायु तुम्हारे पुण्य कर्मों के आधार पर तुम्हें उत्तम लोकों में, तुम्हारे बुरे कर्मों के आधार पर तुम्हें अधम लोकों में और तुम्हारे पुण्यापुण्य मिश्रित कर्मों के आधार पर तुम्हें मानव-लोक में ले जाता है।

जो योगी जीवन्मुक्त बन गये होते हैं, उनको न तो जन्म से और न इन भिन्न-भिन्न प्रकार के लोकों से ही कोई सम्बन्ध रहता है। उन योगियों के मन और प्राण ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं। उनका जीवात्मा परब्रह्म परमात्मा में विलीन हो जाता है।

इन जीवन्मुक्तों को आगे ले जाने के लिए उदान वायु की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। जिन्होंने अजर-अमर आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर लिया है तथा जिन्होंने वैराग्य द्वारा अपने मन को शुद्ध एवं पवित्र बना लिया है, वे जीवन्मुक्त योगी मृत्यु के समय सम्पूर्णतः विलीन हो जाते हैं; उन्हें इस लोक में पुनः वापस नहीं आना पड़ता।

७. आत्मा क्या है ?

आत्मा के दो प्रकार हैं, एक तो व्यक्तिगत आत्मा अर्थात् जीवात्मा और दूसरा सर्वोत्तम आत्मा अर्थात् परमात्मा। व्यक्तिगत आत्मा सर्वोत्तम आत्मा का प्रतिबिम्ब या प्रतिमूर्त्ति है। जिस प्रकार एक सूर्य जल के भिन्न-भिन्न भागों में प्रति-

जाते हैं। श्रोत्र दिशाओं में मिल जाते हैं। शरीर पृथ्वी में मिल जाता है। शरीर के लोम ऋतु-कालीन वनस्पति में मिल जाते हैं। सिर के केश वृक्षों में मिल जाते हैं तथा रक्त एवं वीर्य जल में मिल जाते हैं।

६. उदान वायु के कार्य

जिस वायु को पवन अथवा हवा कहते हैं, वही वायु प्राण-शक्ति है। प्राण इन्द्रियों को गतिमान् करता है। प्राण विचार को उत्पन्न करता है। प्राण शरीर को गति प्रदान करता है और गतिशील बनाता है। प्राण अन्न को पचाता, रक्त-सञ्चार करता तथा मल-मूत्र को बाहर निकालता है। प्राण श्वासोच्छ्वास की क्रिया कराता है। प्राणों के द्वारा ही तुम देखते, सुनते, स्पर्श करते, स्वाद चखते तथा विचार करते हो। समष्टि-प्राण हिरण्यगर्भ अथवा ब्रह्मा है। प्रकृति का व्यक्त होना प्राण है। स्थूल प्राण श्वास तथा सूक्ष्म प्राण जीवनशक्ति है।

जिस प्रकार फुटबाल के अन्दर रबर की एक थैली होती है, उसी प्रकार इस स्थूल शरीर के अन्दर सूक्ष्म शरीर रहता है। मृत्यु के समय उदान वायु इस सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से बाहर खींच लाता है। जो स्वप्नावस्था में कार्य करता है, जो स्वर्ग को जाता है; वह सूक्ष्म शरीर है। उदान वायु सभी प्रकार के प्राणों को वहन करने वाला वाहन है। यह उदान वायु भोजन को निगलने में सहायक होता है। जब तुम प्रगाढ़ निद्रा में होते हो, तब यह तुम्हें ब्रह्म के पास पहुँचाता है। उदान वायु का निवास-स्थान कण्ठ है।

सारे प्राण, मन, बुद्धि, इन्द्रिय तथा स्थूल शरीर का आधार तथा मूल-कारण यह अजर अमर आत्मा है। वह तुम्हारे हृदय-

प्रकोष्ठ में रहता है। वहाँ एक सौ एक (१०१) नाड़ियाँ हैं। इन सभी नाड़ियों की बहत्तर सहस्र (७२,०००) उपनाड़ियाँ हैं। रक्त-सञ्चार की क्रिया करने वाला व्यान इन नाड़ियों में गतिमान् रहता है।

इन नाड़ियों में से एक मुख्य नाड़ी द्वारा उदान वायु बाहर आता है। वह उदान वायु तुम्हारे पुण्य कर्मों के आधार पर तुम्हें उत्तम लोकों में, तुम्हारे बुरे कर्मों के आधार पर तुम्हें अधम लोकों में और तुम्हारे पुण्यापुण्य मिश्रित कर्मों के आधार पर तुम्हें मानव-लोक में ले जाता है।

जो योगी जीवन्मुक्त बन गये होते हैं, उनको न तो जन्म से और न इन भिन्न-भिन्न प्रकार के लोकों से ही कोई सम्बन्ध रहता है। उन योगियों के मन और प्राण ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं। उनका जीवात्मा परब्रह्म परमात्मा में विलीन हो जाता है।

इन जीवन्मुक्तों को आगे ले जाने के लिए उदान वायु की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। जिन्होंने अजर-अमर आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर लिया है तथा जिन्होंने वैराग्य द्वारा अपने मन को शुद्ध एवं पवित्र बना लिया है, वे जीवन्मुक्त योगी मृत्यु के समय सम्पूर्णतः विलीन हो जाते हैं; उन्हें इस लोक में पुनः वापस नहीं आना पड़ता।

७. आत्मा क्या है ?

आत्मा के दो प्रकार हैं, एक तो व्यक्तिगत आत्मा अर्थात् जीवात्मा और दूसरा सर्वोत्तम आत्मा अर्थात् परमात्मा। व्यक्तिगत आत्मा सर्वोत्तम आत्मा का प्रतिबिम्ब या प्रतिमूर्त्ति है। जिस प्रकार एक सूर्य जल के भिन्न-भिन्न भागों में प्रति-

बिम्बित होता है; उसी प्रकार परमात्मा का प्रतिबिम्ब भी भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न अन्तःकरण में पड़ता है।

आत्मा चैतन्य है। वह अभौतिक पदार्थ है। वह बुद्धिरूप अथवा ज्ञानरूप है। वह स्वयं चैतन्य है। जीवात्मा उस चैतन्य का प्रतिबिम्ब है। यह वह जीवात्मा है जो शरीर की मृत्यु के पश्चात् शरीर से अलग होकर स्वर्गलोक को जाता है और उस जीवात्मा के साथ इन्द्रिय, मन, प्राण, संस्कार, वासनाएँ तथा भावनाएँ रहती हैं। जब यह जीवात्मा स्वर्ग की ओर प्रयाण करता है, तब उसे प्राणमय सूक्ष्म शरीर प्राप्त होता है।

जब सरोवर का जल सूख जाता है, तब जल के अन्दर रहने वाला सूर्य का प्रतिबिम्ब अपने बिम्ब सूर्य में जा मिलता है। इसी भाँति जब ध्यान-धारणा के द्वारा मन विलीन हो जाता है, तब यह जीवात्मा स्वयं परमात्मा में विलीन हो जाता है और यही जीवन का अन्तिम लक्ष्य भी है।

वासना, इच्छा, अहङ्कार, अभिमान, लोभ, काम तथा राग-द्वेष के कारण जीवात्मा अशुद्ध बनता है और उसके परिणाम-स्वरूप यह जीवात्मा परिच्छिन्न बनता है, वह अल्पज्ञ एवं अल्पशक्तिमान् बनता है। जो सर्वोत्तम आत्मा परमात्मा है, वह अनन्त, सर्वज्ञ शक्तिमान् है। वह ज्ञानस्वरूप तथा आनन्द-स्वरूप है।

अज्ञान के कारण ही यह जीवात्मा बन्धन में पड़ता है और उससे ही उसे मन, शरीर तथा इन्द्रियों की मर्यादा में आना पड़ता है। ये बन्धन और मर्यादा केवल देखने को हैं। ये माया-रूप हैं। जब यह आत्मा अनन्त तत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब वह अपने-आपको मर्यादित पदार्थों तथा बन्धनों से मुक्त बना लेता है। जिस प्रकार जल का एक बुद-बुद सागर के साथ

एकरूप बन जाता है; उसी भाँति अज्ञान के नष्ट हो जाने पर यह जीवात्मा भी परमात्मा के साथ एकरूप बन जाता है।

जीवात्मा ही शरीर, मन तथा इन्द्रियों को जीवन प्रदान करता है। यही उन्हें विकसित करता तथा गति एवं प्रेरणा प्रदान करता है। जब यह जीवात्मा शरीर को छोड़ कर चला जाता है तब शरीर लकडी के एक कुन्दे के समान बन जाता है। उस समय यह मृत शरीर न तो बोल सकता है, न चल सकता है और न देख ही सकता है।

वह सर्वोत्तम-परमात्मा स्वयं चैतन्य-स्वरूप है, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है, स्वयं आनन्द रूप है, स्वयं ज्ञान रूप है तथा स्वयं सत्ताधीश है। वह स्वयं को जानता है तथा दूसरोंको भी जानता है। वह स्वयं-ज्योति है और सभी पदार्थों को प्रकाशित करता है। अतः वह चैतन्य है। भौतिक पदार्थ अपने-आपको नहीं जानते हैं। अतएव वे जड़—चेतना-रहित हैं।

वह परमात्मा निराकार, निर्गुण, सर्वव्यापक, अविभाज्य, अविनाशी तथा देश-काल से अपरिछिन्न है। यद्यपि सूर्य स्वयं दिवस एवं रात्रि का निर्माण करता है; परन्तु सूर्य में काल अथवा दिवारात्रि कुछ भी नहीं है। इसी भाँति वह परमात्मा भी है। वह अनन्त, शाश्वत तथा अमर है।

एकमेव परमात्मा ही सत् है। नाम-रूप-मय यह जगत् माया-रूप है। जिस भाँति रज्जु में सर्प का आरोप किया जाता है, उसी भाँति उस परमात्मा में इस जगत् का आरोप किया गया है। हाथ में दीपक लेते ही रज्जु में रहने वाला सर्प नष्ट हो जाता है। तुम धारणा-ध्यान करो अथवा परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करो, उसके परिणाम-स्वरूप इस जगत् का अध्यास पूर्ण रूप से जाता रहेगा।

मृत्यु के दूसरे तट पर क्या है ? जब शरीर मर जाता है, तब व्यक्ति किन-किन अवस्थाओं को पार करता है और किस लोक में अपने-आपको पाता है ? इस प्रकार के दार्शनिक प्रश्नों पर वे विचार नहीं करते। वे लोग तो ऐसा मानते हैं कि जो व्यक्ति इस प्रकार के प्रश्नों की खोज-बीन करने लगता है, वह अज्ञानी है। वे एकमात्र अपने-आपको ही चतुर तथा बुद्धिमान् मानते हैं। उनके विचारों को बदलने अथवा उन्हें समझाने में भी युक्ति अथवा तर्क काम नहीं देते। आत्मा के अनस्तित्व के प्रतिपादन में उन लोगों ने ग्रन्थ के ग्रन्थ भर डाले हैं। ये विपरीत बुद्धि वाले क्या ही अद्भुत मनुष्य हैं ?

भारत के आधुनिक कालेजों में शिक्षा प्राप्त करने वाले अधिकांश विद्यार्थी, जो कि भारत के प्राचीन ऋषि-मुनियों की ही सन्तानें हैं, कुशिक्षा एवं कुसङ्गति के कारण उपर्युक्त दर्शन के अनुयायी बन गये हैं। वे दम्भ एवं काम के पाश में आ गये हैं। वे प्रार्थना, सन्ध्या, गायत्री-जप तथा गीता, उपनिषद्, रामायण एवं भागवत के स्वाध्याय को छोड़ बैठे हैं। वे तो शरीर के पुजारी बन गये हैं वेशभूषा का अन्धानुकरण कर रहे हैं। वे होटल, रेस्तरां, क्लब, सिनेमा आदि में नियमित रूप से जाते हैं। वे बड़े उत्साह से ताश खेलते तथा उपन्यास पढ़ते हैं और प्रतिमास सैकड़ों रुपये व्यय कर डालते हैं। इसका तो उन्हें विचार ही नहीं आता कि हमारे माता-पिता कितना आर्थिक सङ्कट झेल रहे हैं। जब वे स्नातक बन कर आते हैं तो पचास रुपया भी उपार्जन नहीं कर पाते। अज्ञानी माता-पिता इस प्रकार की मूर्खतापूर्ण कल्पनाओं को प्रश्रय देते हैं कि उनका पुत्र बड़ा न्यायाधीश, इञ्जीनियर, बैरिस्टर तथा नागरिक बन जायगा। वे रुपया उधार ले कर तथा घर की भूमि-सम्पत्ति बेच कर भी अपने बालकों को पढ़ाते हैं। परिणाम-स्वरूप ये माता-पिता अपने बालकों को बेरोजगारी

की श्रेणी में पाते हैं। प्रकृति निश्चय ही दुष्ट विद्यार्थियों को दण्ड देती है।

चार्वाक मतावलम्बी तथा भौतिकवादी जनों का ऐसा मत है कि शरीर अथवा भूतों का सङ्घात ही विचार, बुद्धि, चैतन्य, मन और जीव इत्यादि को उत्पन्न करता है और जब तक शरीर रहता है तब तक चैतन्य इत्यादि भी रहते हैं। उनकी ऐसी मान्यता है कि जैसे यकृत् का विकार पित्त है, वैसे ही भेजे की एक क्रिया का विकार विचार, बुद्धि अथवा चैतन्य है। परमाणुओं का सङ्घात बुद्धि अथवा चैतन्य को उत्पन्न नहीं कर सकता। कोई भी गति उत्तेजना, भाव तथा विचार को कभी भी उत्पन्न नहीं कर सकती। चैतन्य अथवा बुद्धि किसी भी प्रकार गति का कार्य नहीं बन सकती। जड पदार्थ अथवा जड शक्ति ने कभी भी चैतन्य या बुद्धि को उत्पन्न किया हो—ऐसा कोई भी वैज्ञानिक सिद्ध नहीं कर सकता है। ये चार्वाक तथा भौतिकवादी अवास्तविक तर्कों में अपने को धोखे में डाल रहे हैं। इन्द्रिय-जन्य भोगों के आकर्षण के कारण वे लोग अपनी विवेक-शक्ति खो बैठे हैं। प्रत्येक वस्तु को उसके ठीक प्रकाश में देखने की सूक्ष्म बुद्धि इनमें नहीं है। यह शरीर तो सतत परिवर्तित होता रहता है। पञ्चभूतों का सङ्घात यह पार्थिव शरीर तो नाशवान् है; परन्तु जड पदार्थ, शक्ति, मन इत्यादि का आधार, अधिष्ठान तथा मूल-कारण जो यह अविनाशी आत्मा है यह नित्य है। इस शरीर के नाश हो जाने पर भी इस प्रकार का ज्ञान बना रहेगा कि 'मैं कौन हूँ'। तुम अपने विषय में कभी ऐसा सोच ही नहीं सकते और न कल्पना ही कर सकते हो कि इस शरीर के नाश हो जाने पर मैं नहीं रहूँगा। तुम्हारे अन्दर एक ऐसी स्वाभाविक भावना है कि 'इस शरीर के नाश हो जाने के पश्चात् भी मैं अवश्य रहूँगा।' यही यह

मृत्यु के दूसरे तट पर क्या है ? जब शरीर मर जाता है, तब व्यक्ति किन-किन अवस्थाओं को पार करता है और किस लोक में अपने-आपको पाता है ? इस प्रकार के दार्शनिक प्रश्नों पर वे विचार नहीं करते। वे लोग तो ऐसा मानते हैं कि जो व्यक्ति इस प्रकार के प्रश्नों की खोज-बीन करने लगता है, वह अज्ञानी है। वे एकमात्र अपने-आपको ही चतुर तथा बुद्धिमान् मानते हैं। उनके विचारों को बदलने अथवा उन्हें समझाने में भी युक्ति अथवा तर्क काम नहीं देते। आत्मा के अनस्तित्व के प्रतिपादन में उन लोगों ने ग्रन्थ के ग्रन्थ भर डाले हैं। ये विपरीत बुद्धि वाले क्या ही अद्भुत मनुष्य हैं ?

भारत के आधुनिक कालेजों में शिक्षा प्राप्त करने वाले अधिकांश विद्यार्थी, जो कि भारत के प्राचीन ऋषि-मुनियों की ही सन्तानें हैं, कुशिक्षा एवं कुसङ्गति के कारण उपर्युक्त दर्शन के अनुयायी बन गये हैं। वे दम्भ एवं काम के पाश में आ गये हैं। वे प्रार्थना, सन्ध्या, गायत्री-जप तथा गीता, उपनिषद्, रामायण एवं भागवत के स्वाध्याय को छोड़ बैठे हैं। वे तो शरीर के पुजारी बन गये हैं वेशभूषा का अन्धानुकरण कर रहे हैं। वे होटल, रेस्तरां, क्लब, सिनेमा आदि में नियमित रूप से जाते हैं। वे बड़े उत्साह से ताश खेलते तथा उपन्यास पढ़ते हैं और प्रतिमास सैकड़ों रुपये व्यय कर डालते हैं। इसका तो उन्हें विचार ही नहीं आता कि हमारे माता-पिता कितना आर्थिक सङ्कट झेल रहे हैं। जब वे स्नातक बन कर आते हैं तो पचास रुपया भी उपार्जन नहीं कर पाते। अज्ञानी माता-पिता इस प्रकार की मूर्खतापूर्ण कल्पनाओं को प्रश्रय देते हैं कि उनका पुत्र बड़ा न्यायाधीश, इञ्जीनियर, बैरिस्टर तथा नागरिक बन जायगा। वे रुपया उधार ले कर तथा घर की भूमि-सम्पत्ति बेच कर भी अपने बालकों को पढ़ाते हैं। परिणाम-स्वरूप ये माता-पिता अपने बालकों को बेरोजगारों

की श्रेणी में पाते हैं। प्रकृति निश्चय ही दुष्ट विद्यार्थियों को दण्ड देती है।

चार्वाक मतावलम्बी तथा भौतिकवादी जनों का ऐसा मत है कि शरीर अथवा भूतों का सङ्घात ही विचार, बुद्धि, चैतन्य, मन और जीव इत्यादि को उत्पन्न करता है और जब तक शरीर रहता है तब तक चैतन्य इत्यादि भी रहते हैं। उनकी ऐसी मान्यता है कि जैसे यकृत् का विकार पित्त है, वैसे ही भेजे की एक क्रिया का विकार विचार, बुद्धि अथवा चैतन्य है। परमाणुओं का सङ्घात बुद्धि अथवा चैतन्य को उत्पन्न नहीं कर सकता। कोई भी गति उत्तेजना, भाव तथा विचार को कभी भी उत्पन्न नही कर सकती। चैतन्य अथवा बुद्धि किसी भी प्रकार गति का कार्य नही बन सकती। जड़ पदार्थ अथवा जड शक्ति ने कभी भी चैतन्य या बुद्धि को उत्पन्न किया हो—ऐसा कोई भी वैज्ञानिक सिद्ध नहीं कर सकता है। ये चार्वाक तथा भौतिकवादी अवास्तविक तर्कों से अपने को धोखे में डाल रहे हैं। इन्द्रिय-जन्य भोगों के आकर्षण के कारण वे लोग अपनी विवेक-शक्ति खो बैठे हैं। प्रत्येक वस्तु को उसके ठीक प्रकाश में देखने की सूक्ष्म बुद्धि इनमें नहीं है। यह शरीर तो सतत परिवर्त्तित होता रहता है। पञ्चभूतों का सङ्घात यह पार्थिव शरीर तो नाशवान् है; परन्तु जड़ पदार्थ, शक्ति, मन इत्यादि का आधार, अधिष्ठान तथा मूल-कारण जो यह अविनाशी आत्मा है यह नित्य है। इस शरीर के नाश हो जाने पर भी इस प्रकार का ज्ञान बना रहेगा कि 'मैं कौन हूँ'। तुम अपने विषय में कभी ऐसा सोच ही नही सकते और न कल्पना ही कर सकते हो कि इस शरीर के नाश हो जाने पर मैं नही रहूँगा। तुम्हारे अन्दर एक ऐसी स्वाभाविक भावना है कि 'इस शरीर के नाश हो जाने के पश्चात् भी मैं अवश्य रहूँगा।' यही यह प्रकट

करता है कि शरीर से स्वतन्त्र एक अजर-अमर आत्मा है। आत्मा का प्रदर्शन तो कभी भी नहीं किया जा सकता; परन्तु ऐसे कितने ही अनुभूत तथ्य हैं, जिनके आधार पर इसके अस्तित्व का अनुमान किया जा सकता है।

मृत्यूपरान्त क्या अवशेष रहता है? शरीर की मृत्यु के पश्चात् आत्मा का क्या होता है? वह आत्मा कहाँ चली जाती है? क्या वह मृत्यूपरान्त भी रहती है? इस प्रकार का स्वाभाविक प्रश्न एक साथ ही सबके मन में उठता रहता है। यह वह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, जो सबके हृदयतल को स्पर्श करता है। वह प्रश्न आज भी प्रत्येक देश के प्रत्येक मानव-मस्तिष्क में वैसा ही बना हुआ है, जैसा कि आजके सहस्रों वर्ष पूर्व था। इसे कोई रोक नहीं सकता है। इस प्रश्न की आज भी चर्चा हो रही है और भविष्य में भी इसकी चर्चा होती रहेगी। पुरातन युग से ही तत्त्वज्ञानी, ऋषि, मुनि, योगी, विचारक, स्वामी, अध्यात्मज्ञानी तथा पैगम्बर (भविष्य वेत्ता) इत्यादि इस महान् तथा जटिल प्रश्न के सुलझाने का यथाशक्य प्रयास करते आये हैं।

जब तुम भोग-विलासमय जीवन में (निमग्न) रहते हो, जब तुम लक्ष्मी के क्रोड़ में होते हो; तब तुम इस विषय को भूल जाते हो; परन्तु जिस समय तुम देखते हो कि मृत्यु के क्रूर हाथों ने तुम्हारे एक प्रिय कुटुम्बी को तुमसे छीन लिया है, उस समय तुम आश्चर्यचकित हो जाते हो और सोचने लगते हो कि 'वह प्रिय कुटुम्बी कहाँ गया? क्या वह अब भी कहीं पर है? क्या शरीर से अलग भी कोई आत्मा है? उसका पूर्ण रूप से नाश हो गया—ऐसा सम्भव नहीं। यह तो हो नहीं सकता कि उसके विचार एवं कर्मों के संस्कार पूर्णतः नष्ट हो जायें।'

अपने अन्तर्मुखी ध्यान से प्राप्त अनुभव के आधार पर उपनिषद्-द्रष्टा ऋषियों ने यह अधिकारपूर्ण घोषणा की है कि 'एक सर्व-व्यापक अविनाशी आत्मा की सत्ता है। वह आत्मा स्वयं प्रकाश, पूर्ण, आनन्दघन, अज, अविनाशी, अमर तथा देश-काल एवं विचार-रहित है। जब शरीर तथा मन आदि के सीमित बन्धन नष्ट हो जाते हैं, जब अविनाशी आत्मा के ज्ञान की प्राप्ति से अज्ञान का आवरण दूर हो जाता है, तब जीवात्मा परमात्मा के साथ तद्रूप बन जाता है। वह आत्मा अन्तर्यामी और मन, प्राण तथा इन्द्रियों का प्रेरक है। मन आत्मा से ही प्रकाश प्राप्त करता है।

जीवात्मा भौतिक विज्ञान की मर्यादा से परे है। वह जड़ विज्ञान की पहुँच से भी परे है। मनुष्य वह जीवात्मा है, जिसने इस स्थूल शरीर को धारण कर रखा है। जीवात्मा अत्यन्त सूक्ष्म है। वह आकाश, मन तथा शक्ति से भी विशेष सूक्ष्म है। चैतन्य तथा ज्ञान आत्मा के स्वभाव है, शरीर के नहीं। चैतन्य ही आत्मा के अस्तित्व का प्रमाण है। मनुष्य का व्यक्तित्व तो अजर, अमर, सर्वव्यापक, अविभाज्य अथवा ब्रह्म का आंशिक प्रकट स्वरूप है। मनुष्य के अन्दर रहने वाला अमर अंश आत्मा है।

अरे अज्ञानी मानव ! अमर आत्मा का निषेध करने वाले ग्रन्थों का आधार ले कर तुम पथभ्रष्ट हो गये हो। अब इस मोह-निद्रा से जग जाओ। अपने नेत्र खोलो। तुमने तो अपने लिए नरक में स्थान सुरक्षित कर लिया है और उस अन्धतम प्रदेश में जाने के लिए सीधा पारपत्र प्राप्त कर लिया है। स्वर्ग का द्वार बन्द करने वाले निकृष्ट ग्रन्थों के पढ़ने से ऐसा हुआ है। इन्हें अग्नि को भेंट कर दो तथा गीता एवं उपनिषदों को पढ़ो। नियमित जप, कीर्तन तथा ध्यान करो और इस

में पड़ा होता है--ऐसा कहा जा सकता है। वास्तव में मूर्च्छा मृत्यु का द्वार ही है। यदि उसका कोई प्रारब्ध कर्म शेष रह गया होता है, तब तो वह होश में आता है अन्यथा मृत्यु को प्राप्त होता है।

इस मूर्च्छावस्था की आयुर्वेद के वैद्यों तथा एलोपैथी के डाक्टरों ने भलीभाँति शोध की है। सामान्य अनुभव से भी इसका ज्ञान हो जाता है।

जाग्रत दशा, स्वप्न दशा, प्रगाढ़ सुषुप्ति की दशा तथा मूर्च्छा की दशा—इन सम्पूर्ण दशाओं का मूक साक्षी ब्रह्म है वह तुम्हारा अन्तरात्मा है। वह अमर एवं अविनाशी है। उस ब्रह्म के साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करो। शरीर की सभी दशाओं का अतिक्रमण कर सदा-सर्वदा के लिए सुखी तथा आनन्दमय बन जाओ।

❂

द्वितीय प्रकरण

मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा की यात्रा

मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा की यात्रा

१. मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा की यात्रा (१)

जीवात्मा प्राण, मन तथा इन्द्रियों के साथ अपने पूर्व-शरीर को त्याग देता है और एक नवीन शरीर धारण करता है। अविद्या, शुभ-अशुभ कर्म तथा पूर्वजन्मों के संस्कारों को भी वह अपने साथ ही ले जाता है।

जिस प्रकार कीडा दूसरी घास पर अपने पाँवों को टिका कर ही पहले की घास की पकड को छोडता है; वैसे ही इस वर्तमान शरीर को छोडने के पहले जीवात्मा को आने वाले शरीर का भान रहता है। साङ्ख्य मत के अनुसार, 'जीव तथा इन्द्रियाँ दोनों ही व्यापक हैं और जब नया शरीर धारण करना होता है, तब कर्म के अनुरूप ही नये शरीर का कार्य प्रारम्भ हो जाता है।' बौद्ध मत के अनुसार 'नये शरीर मे आत्मा इन्द्रियों के बिना अकेले ही कार्य प्रारम्भ करता है तथा नये शरीर की भाँति नयी इन्द्रियो की रचना होती है।' वैशेषिकों के मतानुसार 'अकेले मन ही नये शरीर मे प्रवेश करता है।' दिगम्बर जैन मत के अनुसार 'जिस प्रकार एक तोता एक वृक्ष को छोड कर दूसरे वृक्ष पर उड़ जाता है, उसी प्रकार अकेला जीवात्मा पुराने शरीर को छोड़ कर नये शरीर में चला जाता है।' ये सम्पूर्ण मत समीचीन नही हैं और ये वेद विरुद्ध भी हैं। 'जीवात्मा मन प्राण, इन्द्रिय तथा सूक्ष्म भूत अथवा तन्मात्राओं के साथ ही पुराने शरीर से चला जाता है'—यह विचार ही ठीक है। जीवात्मा नये शरीर के लिए बीज- सूक्ष्म

भूतों या तन्मात्राओं को अपने साथ ले जाता है। ये सभी तन्मात्राएँ जीवात्मा के साथ ही जाती हैं।

जब जीवात्मा शरीर का त्याग करता है, तब सबसे पहले मुख्य प्राण शरीर छोड़ देता है और तब उसका अनुसरण करते हुए दूसरे सभी प्राण भी चले जाते हैं। ये सब प्राण तन्मात्राओं की भूमिका अथवा मूल-आधार के विना कहीं टिक नहीं सकते हैं। तन्मात्राएँ ही प्राण के सञ्चरण के लिए भूमिका तैयार करती हैं।

जब प्राण दूसरे शरीर में जाता है, तब वहाँ केवल आनन्द ही रहता है। विषयों की तन्मात्राएँ प्राणों का वाहन बनती हैं। जहाँ तन्मात्राएँ होती हैं, वहीं इन्द्रिय तथा प्राण भी होते हैं। वे कभी भी विलग नहीं होते हैं। प्राण के विना जीवात्मा नये शरीर में प्रवेश नहीं कर सकता।

जब मरण-काल आ उपस्थित होता है, तब प्रयाण करते हुए जीवात्मा के साथ जाने के लिए प्राण और इन्द्रियाँ बिलकुल निष्क्रिय बन जाती हैं।

यज्ञ में आहुति-रूप से अर्पित किये जाने वाले दूध, घी इत्यादि पदार्थ एक सूक्ष्म आकार ग्रहण करते हैं; जिन्हें अपूर्व कहते हैं। वे अपूर्व यज्ञ करने वाले के साथ सम्बद्ध रहते हैं। मरण के पश्चात् जीव जल के साथ संयुक्त होकर प्रयाण करता है। यज्ञ में आहुति-रूप से दिये हुए जल इत्यादि पदार्थ ही उस सूक्ष्म अपूर्व के रूप में होते हैं।

भेंट, तर्पण के रूप में प्रदान किया हुआ जल अपूर्व के रूप में सूक्ष्म आकार धारण करता है। यह अपूर्व जीवात्मा से सम्बद्ध होता है और जीव को उसके पुण्य-फल प्राप्त करने के लिए स्वर्ग लोक को ले जाता है।

जो लोग यज्ञ-यागादि करते हैं, वे स्वर्ग में देवताओं को आनन्द प्रदान करते हैं और उनके साथ स्वयं भी आनन्द भोगते हैं। वे पुण्यशाली व्यक्ति देवताओं के साथ उनके सेवाभावी साथी के रूप में रहते हैं। वे लोग देवताओं के साथ रह कर देवों के आनन्द का उपभोग करते हैं और उस लोक में उनकी सेवा करते रहते हैं। वे लोग चन्द्रलोक मे आनन्द भोगते हैं और जब उनका पुण्य समाप्त हो जाता है, तब पृथ्वी पर पुनः वापस आ जाते हैं।

जो जीव स्वर्ग मे लौटते हैं, उनका सञ्चित कर्म कुछ अवशेष रहता है और वह कर्म ही उनके जीवन का कारण बनता है। जीव के कर्मों का एक सञ्चित भाग होता है जिसे उसने अभी भोगा नहीं है। उस सञ्चित कर्म की शक्ति से जीवात्मा इस भूलोक मे वापस आता है। कर्म-राशि मे जो पुण्य-कर्म होते हैं, वे पुण्य-फल के भोग के लिए जीव को चन्द्रलोक में ले जाते है तब चन्द्रलोक मे भोगों के लिए प्राप्त जल-रूप शरीर पिघल जाता है। जिस भाँति सूर्य-रश्मियों से हिम-उपल पिघल जाता है, जिस भाँति अग्नि के ताप से घी पिघल जाता है; उसी भाँति अब स्वर्ग के भोगों का अन्त आने वाला है, इस विचार से उत्पन्न क्लेश के कारण जल-रूप शरीर भी गल जाता है। इसके अनन्तर अवशेष कर्मों के आधार पर जीव नीचे आ जाता है।

छान्दोग्य उपनिषद् (५-१०-७) में हम देखते हैं कि 'जो जीव अपने पूर्व जन्मों में अच्छे आचरण वाले होते है, वे शीघ्र ही उत्तम योनि को प्राप्त होते है। वे ब्राह्मण योनि, क्षत्रिय योनि अथवा वैश्य योनि प्राप्त करते हैं तथा जो अशुभ आचरण वाले

होते हैं, वे तत्काल अशुभ योनियों को प्राप्त होते हैं। वे कुत्ते की योनि अथवा सूकर की योनि प्राप्त करते हैं।'

स्मृति बतलाती है कि भिन्न-भिन्न वर्णाश्रम के लोग अपने-अपने धर्म का अनुष्ठान करते हैं। वे लोग अपने पुण्य-कर्मों का फल भोगने के लिए इस जगत् से परलोक को चले जाते हैं। अपने शेष रहे हुए सञ्चित कर्म के फल भोगने के लिए जब वे पुनः जन्म लेते हैं तब वे विशेष वर्ण, उत्तम कुल, अधिक सौन्दर्य, दीर्घ आयु, ज्ञान, चरित्र, समृद्धि, सुख-सुविधा तथा कुशलता आदि गुण प्राप्त करते हैं अर्थात् जीव अपने सञ्चित कर्म के अनुसार ही जन्म लेते हैं।

ब्रह्म-हत्या आदि कितने ही ऐसे जघन्य पाप हैं; जिनके कारण कई जन्म लेने पड़ते हैं। जीव, जिस मार्ग से ऊपर गया होता है, कुछ दूर तक तो वह उसी मार्ग से नीचे आता है और फिर उसका मार्ग बदल जाता है।

पापी चन्द्रलोक में नहीं जाते हैं। वे लोग यमलोक को जाते हैं और वहाँ अपने बुरे कर्मों का फल भोग कर पुनः भूलोक में वापस आ जाते हैं।

जो पाप करते हैं उनके लिए नरक भयजनक लगता है। रौरव, महारौरव, वह्नि, वैतरणी तथा कुम्भीपाक नरक अस्थायी हैं। तामिस्त्र तथा अन्ध तामिस्त्र, ये दोनों नरक स्थायी माने जाते हैं। चित्रगुप्त तथा दूसरे यमदूत सातों नरकों की देखभाल रखते हैं। उन सातों नरकों के भी मुख्य नियामक यमराज ही माने जाते हैं। चित्रगुप्त तथा दूसरे यमदूत तो यमराज के नियुक्त किये हुए अधीक्षक तथा सहकारी हैं। वे सब यम के शासन तथा प्रभुत्व के अधीन कार्य करते हैं। चित्रगुप्त तथा अन्यान्य यमदूत यमराज से निर्देश प्राप्त करते हैं।

२. तृतीय स्थान

श्रुति कहती है कि जो ज्ञान के साधन द्वारा देवयान मार्ग द्वारा ब्रह्मलोक में नही जाते, न कर्म के साधन द्वारा पितृयान मार्ग द्वारा चन्द्रलोक को ही जाते हैं, अर्थात् जो इन दोनों मार्गों तथा साधनों से वञ्चित रह जाते हैं, वे निम्न योनि में बारम्बार जन्मते तथा मरते रहते हैं। इस भाँति पाप करने वाले तृतीय स्थान को जाते हैं। श्रुति का वचन है कि जो इन दोनों में से किसी मार्ग द्वारा नही जाते, वे बारम्बार जन्मने-मरने वाले कीट-पतङ्ग आदि क्षुद्र जीव-जन्तुओं मे जन्म लेते हैं। इनके विषय में ही ऐसा कहा जाता है, "उत्पन्न होओ और मरो।" यही उनका तृतीय स्थान है। पापी लोग जीव-जन्तु को भाँति क्षुद्र प्राणी माने जाते है; क्योंकि वे कीट-पतङ्गों के शरीर धारण करते हे। उनका स्थान तृतीय स्थान कहा जाता है, क्योंकि वह न तो ब्रह्मलोक है और न चन्द्रलोक ही है।

जीवात्माएँ फिर इसी मार्ग से जिस प्रकार वे गये थे, उसी प्रकार लौटते हैं। वे पहले आकाश को प्राप्त होते हैं और आकाश से वायु को। वायु होकर वे धूम होते हैं और धूम होकर अभ्र होते हैं। वह अभ्र होकर मेघ होता है, मेघ होकर बरसता है, वे पुण्यशाली जीव आकाश, वायु इत्यादि पदार्थ-रूप नही बन जाते, परन्तु वे तो उन पदार्थों के सदृश्य ही बनते हैं। वे आकाश के सदृश्य सूक्ष्म रूप धारण करते हैं और इससे वे वायु की सत्ता अथवा प्रभाव मे आ जाते है और वहाँ से आगे चल कर वे धूम के सम्पर्क मे आकर उससे मिल जाते हैं और इस प्रकार जीवात्मा इनसे होकर शीघ्र ही निकल जाता है।

"मेघ होकर वह बरसता है। तब वह जीव धान, जौ,

औषधि, वनस्पति, तिल और उड़द आदि होकर उत्पन्न होता है। इस प्रकार यह निष्क्रमण निश्चय ही कष्टप्रद है। उस अन्न को जो-जो भक्षण करता है, जो-जो वीर्य-सेचन करता है, तद्रूप ही वह जीव हो जाता है।"

(छा० उ० ५-१०-५)

आकाश, वायु, धूम, अभ्र तथा मेघ आदि रूपों में जब जीवात्मा को यात्रा करनी होती है, तब उसे इसमें अल्प समय ही लगता है; परन्तु बाद में उसे जब जौ, वीर्य, गर्भजात शिशु के रूप से निष्क्रमण करना होता तब उसे पूर्वापेक्षा बहुत अधिक समय लगता है और साथ ही कष्ट भी बहुत अधिक होता है।

नारदीय पुराण कहता है: "जो पुण्यशाली जीव ऊपर से नीचे आना आरम्भ करता है, उसे माता के उदर में प्रवेश करने में एक वर्ष लग जाता है; क्योंकि इसके पूर्व उसे अनेक स्थानों में भटकना पड़ता है।"

धान्य तथा औषधियों में उनका अपना जीवात्मा रहता है। ये पुण्यशाली जीव उन जीवात्माओं के सम्पर्क में आते हैं; परन्तु वे उनके सुख-दुःख के भागी नहीं बनते। वे पुण्यशाली जीवात्माएँ तो धान्य के पौधों के केवल सम्पर्क में ही आते हैं।

धान्य तथा औषधियों को तो ये जीवात्माएँ अपने विराम-स्थल के रूप में ही उपयोग करते हैं। वे उनके साथ तद्रूप नहीं बनते। वे अपनी विशेषता खो नहीं देते।

छान्दोग्य उपनिषद् की यह घोषणा है: "उस अन्न को जो-जो भक्षण करता है और जो-जो वीर्य-सेचन करता है, तद्रूप ही वह जीव हो जाता है" (५-१०-६)। जो पुरुष वीर्य-सेचन करता है, उसके साथ जीव सम्पर्क में आता है। ऊपर से

उतरने वाला जीवात्मा उसका आहार बन कर उसका वीर्य बनता है। जीवात्मा पुरुष के अन्दर तब तक ही रहता है, जब तक कि पुरुष का वीर्य स्त्री के उदर में सेचन नहीं किया जाता है। जिस धान्य में जीवात्मा आया होता है वही धान्य जब पुरुष के भोजन में आता है, तब उस धान्य से जो वीर्य-रूप रस बनता है, उसके साथ वह जीवात्मा सम्बन्ध में आता है और उसके परिणाम-स्वरूप वह अन्त में माता के उदर में शरीर धारण करता है।

माता के उदर में वह जीवात्मा एक ऐसे सम्पूर्ण विकसित शरीर को धारण करता है, जो उसके पूर्व-सञ्चित कर्मों के फल भोगने के लिए उपयोगी हो। जिस परिवार में जीवात्मा को जन्म लेना होता है, उस परिवार के लोग भी उनके सञ्चित कर्मों से स्वभावत. ही सम्बन्धित होते हैं। इस विषय में छान्दोग्य उपनिषद् कहती है 'इन जीवों में जो अच्छे आचरण वाले होते हैं, वे शीघ्र ही उत्तम योनि को प्राप्त होते हैं। वे ब्राह्मणयोनि, क्षत्रिययोनि अथवा वैश्ययोनि प्राप्त करते हैं; परन्तु जो अशुभ आचरण वाले होते हैं वे कुत्ते की योनि, सूकर की योनि अथवा चाण्डाल की योनि प्राप्त करते हैं।"

(छा० उ० ५-१०-७)

पुनर्जन्म की इस सम्पूर्ण योजना को बतलाने का अभिप्राय यह है कि जो सर्वोत्तम सुख एव आनन्द-रूप है, वह एकमेव आत्मा ही है। केवल वही तुम्हारी खोज का विषय होना चाहिए। शोक-सन्तापमय इस ससार से तुम्हें ग्लानि उत्पन्न हो और इस भाँति तुम आत्मा के शाश्वत सुख को प्राप्त करने के लिए शीघ्र ही तत्पर बनो।

अरे अज्ञानी जन, रे मूर्ख मानव, ओ दुःखी जीव, हे मोहापन्न आत्मा, अज्ञान की दीर्घ निद्रा से तुम जग जाओ। अपनी आँखें खोलो। मोक्ष प्राप्त करने के लिए साधन-चतुष्टय का विकास करो और मानव-जीवन के चरम तथा परम लक्ष्य को इस जीवन में ही प्राप्त कर लो। शरीर-पिञ्जर से बाहर निकल आओ। न मालूम किस अनादि काल से तुम इस पिञ्जर में आकर फँस गये हो। तुम बारम्बार माता के उदर में निवास करते रहते हो। अविद्या की इस ग्रन्थि का उच्छेदन कर डालो और शाश्वत सुख के साम्राज्य में विचरण करो।

३. कर्म तथा पुनर्जन्म (१)

इस स्थूल शरीर से आत्मा का विलग हो जाना ही मृत्यु कहलाती है। इस शरीर के ही कारण मनुष्य को सब शोक-सन्ताप प्राप्त होते हैं। योगी को मृत्यु से भय नहीं लगता; क्योंकि वह तो अपने-आपको इस अजर-अमर सर्वव्यापक आत्मा से एकरूप बना लेता है।

कर्म और पुनर्जन्म ये दोनों हिन्दू शास्त्र के ही नहीं, बौद्ध शास्त्र के भी महान् स्तम्भ हैं। जो मनुष्य इन दोनों महान् सत्यों में विश्वास नहीं करता, वह इन दोनों धर्मों के तथ्य को हृदयङ्गम नहीं कर सकता है।

यदि तुम शोक, दुःख, कष्ट तथा मृत्यु के रहस्य को जान जाओ, तो तुम दुःख और शोक का अतिक्रमण कर सकोगे। मृत्यु एक ऐसी घटना है जो मानव-मन को गम्भीर चिन्तन में प्रवृत्त करती है। मृत्यु का अध्ययन ही वास्तव में दर्शन का विषय है। सभी दार्शनिक विचारधाराएँ मृत्यु की घटना से उत्पन्न हुई हैं। भारत के सर्वोत्तम जीवन-दर्शन का प्रारम्भ भी

मृत्यु के विषय से ही होता है। तुम भगवद्गीता, कठोपनिषद् तथा छान्दोग्य उपनिषद् का परिशीलन करो। उनमें इस विषय का वर्णन है। मृत्यु तो सत्य के ध्येय-रूप शाश्वत ब्रह्म की खोज तथा उसके साक्षात्कार के लिए आह्वान है।

मृत्यु तो शरीर का परिवर्त्तन मात्र है। जीवात्मा इस शरीर को व्यवहृत वस्त्र की भाँति उतार फेंकता है। परमानन्द सुख की प्राप्ति के लिए यह मनुष्य नित्य परिशुद्ध तथा पूर्ण बनता रहता है। इस क्रिया में इसे करोड़ों वर्ष लग जाते हैं।

हिन्दू धर्म के अनुसार जीवन तो नित्य-निरन्तर प्रवाहशील प्रगति है, जिसका कभी भी अन्त नहीं। जो-कुछ भी परिवर्त्तन हो रहा है, वह तो आवरणों का तथा बाह्य शरीर का ही परिवर्त्तन है। आत्मा तो अमर है। यह जीव अपने कर्मानुसार एक के अनन्तर दूसरा रूप धारण करता रहता है। हिन्दू धर्म दो मौलिक सिद्धान्तों के आधार पर टिका रहा है एक तो कर्म का नियम तथा दूसरा पुनर्जन्म का सिद्धान्त। मृत्यु तो विकास के लिए एक आवश्यक प्रक्रिया है। जिस प्रकार तुम एक घर से निकल कर दूसरे घर में प्रवेश करते हो, उसी प्रकार जीवात्मा भी अनुभव प्राप्त करने के लिए एक शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में प्रवेश करता है।

मृत्यु के उपरान्त, जो जीव शरीर से उत्क्रमण करता है, उसको प्रेत की संज्ञा दी जाती है। वह परलोक की यात्रा करता है। स्थूल शरीर से विलग हुआ जीव दस दिन तक अपने प्रिय एवं परिचित स्थानों में चक्कर लगाता रहता है। इन दस दिनों तक उसे भूत का आकार मिलता है। इस अवधि में उसके सूक्ष्म अथवा लिङ्ग-शरीर को प्रतिदिन आकार मिलता रहता

है तथा उसके मस्तक, आँख तथा दूसरे अवयवों का गठन होता रहता है। पितरों को तीर्थ स्थानों में श्राद्ध तथा तर्पण के रूप में जो-कुछ तिल, जल इत्यादि दिया जाता है, उससे इस लिङ्ग-शरीर का परिपोषण होता है।

ग्यारहवें दिन जीव को पूरा आकार प्राप्त हो जाता है। अब वह जीव मृत्यु देव यमराज की सभा को जाने के लिए प्रयास आरम्भ करता है। यमराज के यहाँ पहुँचने में जीव को मरने के पश्चात् एक वर्ष लग जाता है। यह मार्ग विघ्न-बाधा तथा कष्टों से आकीर्ण है जो मनुष्य बहुत ही कुत्सित कर्म किये होता है, उसे बहुत ही कष्ट भोगने पड़ते हैं; परन्तु यदि मृत व्यक्ति के पुत्र इत्यादि स्वजन, इस वर्ष में उसके हेतु पिण्डदान तथा श्राद्ध-तर्पण की क्रिया करते हैं और पवित्र विद्वान्-ब्राह्मणों को भोजन इत्यादि अर्पित करते हैं तो उस जीवात्मा के कष्ट कुछ कम हो जाते हैं और उसकी मृत्यु-यात्रा सरल हो जाती है। मृत-व्यक्ति का पुत्र बिना रुदन के ही पिण्ड दान दे। जो जन्मा है, वह मरेगा अवश्य और जो मर गया है, उसका जन्म होना भी अवश्यम्भावी है। यह अपरिहार्य है। इसका कोई उपाय नहीं। अतः तुम्हें उसके लिए शोक नहीं करना चाहिए। दशाह क्रिया को बन्द नहीं रखना चाहिए। बारहवे दिन पुत्र को सपिण्ड श्राद्ध कर्म अवश्य करना चाहिए और सोलह मास तक अन्वाहार्य-श्राद्ध (मासिक श्राद्ध) करना चाहिए। पुत्र जो-कुछ श्राद्ध-तर्पण आदि की क्रिया करता है, उससे मृत आत्मा को न्याय-सभा में जाने के लिए मार्ग में पोषण मिलता है।

मार्ग में उग्र गर्मी पड़ती है, उस जीव को बहुत ही ताप लगता है, परन्तु उसका पुत्र ग्यारहवें दिन जो छाते का दान करता है, इससे उसके सिर पर मधुर छाया होती है। वह मार्ग

कण्टकाकीर्ण है, परन्तु जूते के दान के प्रतिफल से वह अश्वारोही बन आगे बढ़ता है। वहाँ पर शीत, उष्णता तथा वात का भयावह क्लेश होता है; परन्तु वस्त्र-दान की सहायता से वह मृत आत्मा सुखपूर्वक अपने मार्ग पर चलता रहता है। वहाँ भीषण गर्मी पड़ती है और जल भी अप्राप्य है; परन्तु मृत व्यक्ति के पुत्र ने जो जल-पात्र दान किया था, तृषित होने पर वह जीव उस दान की सहायता से जल-पान करता है। पुत्र को इसी *भाँति गो-दान भी करना चाहिए।*

यमलोक के प्रधान लेखपाल चित्रगुप्त हैं। वे भाग्य का लेखा-जोखा रखते हैं। जब एक वर्ष पूरा हो जाता है, तब मृत आत्मा इस पृथ्वी-लोक में जो-जो भले-बुरे कर्म किये होता है, उसे चित्रगुप्त बतलाते हैं। उस दिन वह मृत आत्मा अपने प्रेतत्व का परित्याग कर देता है। उस दिन वह पितृ की उच्च स्थिति *को प्राप्त होता है।*

पितृ-पूजन हिन्दू धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों में से एक है। पितरों की तीन स्थितियाँ गिनी जाती हैं . पिता, पितामह तथा *प्रपितामह और माता, मातामही तथा प्रमातामही।* इस लोक में जो जीवित हैं, उसके ये तीनों ही पितृ माने जाते हैं। जो आत्मा अपने इहलौकिक जीवन में शुभ कर्म करता है, वह मृत्यु के अनन्तर पितृलोक में अपने पूर्वजों से सम्बन्ध प्राप्त करता है और उनके साथ आनन्दपूर्वक रहता है।

जिन लोगों ने कुसङ्ग, अज्ञान अथवा अहङ्कार के कारण श्राद्ध, तर्पण तथा दूसरे धार्मिक कार्य करना छोड़ दिया है, उन्होंने वास्तव में अपने पूर्वजों की तथा अपनी भी बहुत बड़ी क्षति पहुँचाई है। उन्हें अब जग जाना चाहिए। अभी से ही

उन्हें इन धार्मिक कृत्यों को प्रारम्भ कर देना चाहिए। अभी भी अधिक विलम्ब नहीं हुआ।

संवत्सरी, श्राद्ध, तर्पण तथा पितृ-पूजन आदि धार्मिक कृत्यों के अनुष्ठान द्वारा तुम अपने पूर्वजों के शुभ आशिष प्राप्त करो।

४. मृत्यूपरान्त जीवात्मा क्यों कर अलग होता है

जब मृत्यु का समय आ पहुँचता है, तब श्वास-क्रिया में कठिनाई मालूम होती है और शरीर-स्थित जीवात्मा शब्द करता-करता बाहर निकल जाता है। जिस प्रकार भारी भार से लदी हुई गाड़ी शब्द करती है, उसी प्रकार जब प्राण छूटते हैं, तब जीवात्मा शब्द करता है।

जीवात्मा की उपाधि सूक्ष्म शरीर है। जिस प्रकार इस शरीर में रहते हुए जीवात्मा जाग्रत तथा स्वप्न की अवस्थाओं में विचरण करता रहता है, उसी भाँति मृत आत्मा इस लोक और परलोक में भी विचरण करता है। यह जन्म से मृत्युपर्यन्त गति करता रहता है। जब तक इहलौकिक जीवन में रहता है, तब तक वह स्थूल शरीर तथा इन्द्रियों से सम्बन्ध रखता है; परन्तु जब मरता है तो वह स्थूल शरीर के पृथक् हो जाता है। इस शरीर से जिस समय प्राण विलग होते हैं, उसी समय जीवात्मा भी तुरन्त विलग हो जाता है। सर्वोत्तम स्वयं-प्रकाश परमात्मा ही जीवात्मा का नियमन करता है। आत्मा के प्रकाश के आधार पर ही मनुष्य बैठता है, उठता है तथा कार्य करता है।

सूक्ष्म शरीर का मुख्य आधार-रूप यह प्राण है। स्वयं-प्रकाश आत्मा के आधार से ही प्राण-शक्ति को प्रेरणा मिलती

है। ऐसा विदित होता है कि जब सूक्ष्म शरीर निष्क्रमण के लिए उद्यत होता है, तब आत्मा भी उसके साथ ही लेती है; अन्यथा सूक्ष्म शरीर से सयुक्त जीवात्मा भार से लदी हुई गाड़ी की भाँति आवाज किस प्रकार कर सकता है ? वह इसलिए आवाज करता है कि प्राण-शक्ति के अलग होने से जो असह्य पीड़ा होती है, उसके कारण जीवात्मा की स्मृति विलुप्त हो जाती है। इस समय जो पीड़ाएँ सहन करनी पड़ती हैं, उनके कारण यह जीवात्मा मन की असहायावस्था में आ पड़ता है। अतः जब मरण-काल आता है, तब वह जीवात्मा अपने कल्याण के लिए कोई भी साधन अपना नहीं सकता है। अन्तकाल में आचरण करने योग्य साधनों का अभ्यास करने के लिए उसे पहले से ही सावधान रहना चाहिए; क्योंकि उस समय वह ईश्वर का चिन्तन नहीं कर सकता।

ज्वर तथा अन्यान्य व्याधियों से आक्रान्त हो कर यह शरीर वृद्धावस्था में कृश एवं दुर्बल हो जाता है। ज्वर तथा अन्य कारणों से जब यह शरीर अत्यन्त कृश हो जाता है, तब भार-बोझिल गाड़ी की भाँति जीवात्मा शब्द करता-करता उत्क्रमण करता है।

मृत्यु के कारण अनेक एवं विविध हैं। मनुष्य सर्वदा काल के मुख में है। जब जरा भी तैयार नहीं रहता तभी मृत्यु अकस्मात् उसे इस संसार से उठा लेती है। मनुष्य सदा ऐसा सोचता रहता है कि वह मृत्यु से बच जायेगा अथवा यदि वह यह मानता भी है कि मृत्यु अवश्यमेव आती है, तो भी वह ऐसा विश्वास करता है कि वह बहुत दिनों के पश्चात् ही आयेगी। जैसे आम, अञ्जीर अथवा पीपल के वृक्ष का फल अपनी शाखा से अलग हो जाता है, उसी भाँति अनन्त-रूप

जीवात्मा उस शरीर के अङ्गों से सम्पूर्णतया अलग हो जाता है तब वह जीवात्मा अपनी प्राण-शक्ति को विकसित करने के लिए, जिस मार्ग से विशेष शरीर में आया था, उसी मार्ग से पीछे आता है। वह स्थूल शरीर के नेत्रादि अङ्गों से पूर्णतया अलग हो जाता है। इस शरीर से अलग होते समय, वह जीवात्मा अपनी प्राण-शक्ति की सहायता से इस स्थूल शरीर का रक्षण नहीं कर सकता। जिस भाँति जीवात्मा स्थूल शरीर तथा इन्द्रियों को छोड़ प्रगाढ़ निद्रा में प्रवेश करता है, उसी भाँति मरण-काल में भी वह इस स्थूल शरीर का सङ्ग छोड़ देता है और दूसरे शरीर से सम्बध जोड़ता है। जिस प्रकार एक व्यक्ति स्वप्न से जागरण में, जागरण से स्वप्न में और उसमें से फिर प्रगाढ़ निद्रा में वारम्वार अवस्था परिवर्तन करता रहता है, उसी भाँति यह जीवात्मा भी वारम्वार एक शरीर से दूसरे शरीर में चला जाता है। यह जीवात्मा भूतकाल में ऐसे अनेक शरीरों में से होकर आया है और भविष्य में भी इसी भाँति इसका अनेक शरीरों में प्रवेश करना चालू रहेगा। यह जीवात्मा अपने भूत कालीन कर्म, ज्ञान आदि के आधार पर ही भविष्य में जन्म लेता है। अपनी प्राण-शक्ति को प्रकट करने के लिए ही यह जीवात्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता है। अपनी प्राण-शक्ति के आधार पर ही यह जीवात्मा अपने कर्मों के फल-भोग आदि इच्छाओं को पूरा करता है। अपने कर्मो के फल-भोगने में यह प्राण-शक्ति केवल निमित्त कारण है और इसीलिए यह विशेषता वतलायी है कि 'अपनी प्राण-शक्ति को प्रगट करने के लिए।'

अपने कर्मो के फल के साक्षात्कार के लिए इस जीवात्मा ने अखिल विश्व को साधन रूप से ग्रहण किया है और अपने

इस ध्येय को सिद्ध करने के लिए वह एक शरीर से दूसरे शरीर में पहुँच जाता है। शतपथ-ब्राह्मण बतलाता है कि 'मनुष्य उस शरीर में जन्म लेता है, जो उसके लिए ही निर्माण किया गया है' (६-२-२-७)। जिस भाँति मनुष्य स्वप्न की दशा में जाग्रत दशा में आता है, यह परिस्थिति उसके सदृश ही है, जिसमें कि एक शरीर से दूसरे शरीर में आना होता है।

५. शरीर त्याग करते समय जीवात्मा राजा के तुल्य है

जब किसी देश का राजा अपनी राजधानी में अपने राज्य के किसी स्थान को देखने के लिए निकलता है तब ग्राम के नेता लोग अन्न, जल तथा निवास तैयार कर राजा के आगमन की प्रतीक्षा करते रहते हैं। वे कहते रहते हैं - "ये आये, ये आये।" उसी प्रकार जब जीवात्मा निष्क्रमण के लिए उद्यत होता है, तब सम्पूर्ण अधिदेव तथा अधिभूत, उसके किये हुए कर्मों के फल के साधनों के साथ उस जीवात्मा की प्रतीक्षा करते हैं। वे देव जीवात्मा के योग्य सूक्ष्म शरीर तैयार करते हैं और जीवात्मा उस शरीर से कर्म का फल भोगता है।

जब राजा एक प्रदेश से जाने वाला होता है, तब 'राजा यहाँ से जाने वाले हैं'—इतनी साधारण-सी बात जान कर ही अधिकारी लोग उस राजा से मिलने आते हैं। उसी प्रकार जब मरण-काल आ पहुँचता है और कर्म-फल भोक्ता जीवात्मा जाने वाला होता है, तब इस शरीर की इन्द्रियाँ ऐसा जान कर उससे मिलने जाती हैं। श्वासोच्छ्वास की क्रिया जब कष्टसाध्य हो जाती है, उससे जीवात्मा चला जाना चाहता है, ऐसा जान कर इन्द्रियाँ उसके पास जा पहुँचती हैं। वे इन्द्रियाँ शरीर का परित्याग करने वाले अपने नियामक जीवात्मा की आज्ञा से नहीं वरन् उसकी इच्छा जान कर ही उससे मिलने जाती हैं।

६. निष्क्रमण की प्रक्रिया

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि जब मरण-काल आ पहुँचता है, तब यह जीवात्मा शरीर तथा इन्द्रियों को पूर्णतया छोड़ देता है। जब जीवात्मा निर्बल हो जाता है और अपनी चेतना खो बैठता है, तब इन्द्रियाँ उसके पास आ पहुँचती हैं। वास्तव में जीवात्मा निर्बल नहीं पड़ता; परन्तु शरीर निर्बल पड़ जाता है। 'जीवात्मा निर्बल पड़ता है; यह आलङ्कारिक अथवा लाक्षणिक वर्णन है,' क्योंकि जीवात्मा तो निराकार है अतः वह निर्बल नहीं पड़ सकता। इसी भाँति अचेतनावस्था में भी समझना चाहिए। जब मरण-काल आ पहुँचता है, तब जीवात्मा असहाय-सा मालूम होता है। ऐसा इन्द्रियों के बाहर चले जाने के कारण ही होता है। इस असहायता का आरोप लोग जीवात्मा पर लगाते हैं। इसीलिए लोग कहते हैं कि 'अरे यह मनुष्य तो अचेत हो गया।'

जब मनुष्य मरणासन्न होता है, तब उसकी भिन्न-भिन्न इन्द्रियाँ अपने मूल कारण में लीन हो जाती हैं, इससे वे इन्द्रियाँ अपना कार्य नहीं कर सकतीं। मरण के साथ ही सम्पूर्ण इन्द्रियाँ हृदय में लीन हो जाती हैं। इस हृदय को हृदय-कमल अथवा हृदयाकाश कहा जाता है। जब मनुष्य सुषुप्ति में होता है, तब उसकी इन्द्रियाँ सम्पूर्ण रूप से हृदय में विलीन नहीं होतीं। सुषुप्ति तथा मृत्यु में इतना ही भेद है।

नेत्रेन्द्रिय के विषय में यह बात समझनी है कि नेत्रेन्द्रिय का अधिष्ठाता देव सूर्य का एक अंश है और जब तक मनुष्य जीवित रहता है, तब तक वह देव देखने की क्रिया चलाता है। जब मनुष्य मर जाता है, तब वह देव नेत्र की सहायता करना बन्द

कर देता है और अपने आत्मा सूर्य में लीन हो जाता है। इसी भाँति अन्य सभी इन्द्रियाँ भी अपने-अपने देवों में विलीन हो जाती है; जैसे कि वाणी अग्नि में, प्राण वायु में इत्यादि। जब मनुष्य अन्य नवीन शरीर धारण करता है, तब वे इन्द्रियाँ अपने अधिष्ठातृ देवों के साथ उस शरीर में अपना-अपना यथोचित स्थान ग्रहण करती है। इस भाँति इन्द्रियों के विलीन होने तथा उनके पुनः प्रगट होने की क्रिया तो प्रतिदिन ही प्रगाढ निद्रावस्था में होती रहती है। जब नेत्र का अधिष्ठाता देव सम्पूर्ण रीति से लीन होने को तैयार होता है, तब मृतप्राय व्यक्ति रूप-रङ्ग नही पहचान सकता। इस दशा में जीवात्मा प्रगाढ निद्रावस्था की भाँति प्रकाश के सम्पूर्ण अशों का आहरण कर लेता है।

मरणोन्मुख व्यक्ति की एक-एक इन्द्रियाँ सूक्ष्म शरीर के साथ सम्बद्ध हो जाती है। इसीलिए उसे देख कर आस पास के लोग कहते है कि 'अब वह देखता नही है।' इसी प्रकार इन्द्रियों के अधिष्ठाता सभी देव, एक के अनन्तर एक, अपने-अपने अश को समाहृत कर मूल-कारण में विलीन हो जाते है। तब वह इन्द्रियाँ अपनी क्रिया बन्द कर देती है। इसके अनन्तर मरने वाला व्यक्ति सुनता नही, सूंघता नही, देखता नही और न बोलता ही है। वह अचेत हो जाता है और तदनन्तर सदा के लिए अपनी चेतना खो बैठता है। 'वह अमुक व्यक्ति है तथा वह अमुक जाति-वर्ण का है'— यह उसे कभी स्मरण नही होता। इस भाँति वह अपनी ज्ञान-शक्ति, स्मृति तथा जागरण की चेतना खो देता है। बाह्य जगत् उसको शून्य-सा उद्भासित होता है। उसके अनन्तर इन्द्रियाँ हृदय मे एकत्रित हो जाती है।

सूक्ष्म शरीर में आत्मा की स्वयं-प्रकाश ज्ञान-ज्योति नित्य-निरन्तर अपने विशिष्ट रूप में विभासित होती रहती है। यह सूक्ष्म शरीर उस आत्मा का एक सीमित साधन है, जिसका आधार लेकर आत्मा सापेक्ष सत्ता में अभिव्यक्त होता है और इस भाँति वह आत्मा जन्म-मरण तथा आवागमन के परिवर्त्तन का विषय बनता है।

७. जीवात्मा कैसे उत्क्रमण करता है

जीवात्मा इस शरीर में रहते हुए जैसे कर्म किये रहता है तथा जैसे अनुभव प्राप्त किये रहता है, उसके अनुरूप ही शरीर से उसके निष्क्रमण का मार्ग भिन्न-भिन्न होता है। यदि उसके शुभ कर्मों का सञ्चय अधिक है और उसी के अनुसार ज्ञान भी प्राप्त किया है, तो उससे जीवात्मा को सूर्य की ओर ले जाया जाता है और वह जीवात्मा नेत्र के द्वारा शरीर त्यागता है। यदि जीवात्मा हिरण्यगर्भ के लोक को जाने का अधिकारी है, तो वह सिर के द्वार से शरीर को छोड़ता है। इसी प्रकार अपने भूतकाल के कर्मों तथा अनुभवों के अनुसार यह जीवात्मा शरीर के भिन्न-भिन्न मार्गों से उत्क्रमण करता है।

परलोक को प्रयाण करने के लिए जब जीवात्मा देह-त्याग करता है, तब प्राण भी उस शरीर को परित्याग कर देता है और प्राण के शरीर के परित्याग करने के साथ ही दूसरी इन्द्रियाँ भी शरीर को छोड़ देती हैं। जिस प्रकार स्वप्नावस्था में जीवात्मा के स्वतन्त्र चेतना नहीं होती, उसी भाँति मरण की दशा में भी जीवात्मा को भूतकाल के कार्यों की स्वतन्त्र स्मृति नहीं रह जाती; [illegible] शेष [illegible] बनी रहती

पर भी उसे नहीं कर सकते हैं। यह सब पुरातन संस्कारों के प्रकट होने अथवा अप्रकट होने पर निर्भर रहता है।

जीवात्मा भविष्य में कौन-सा जन्म लेगा, इसका आधार ज्ञान, कर्म तथा पूर्वप्रज्ञा—इन तीनों पर रहता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह सद्गुणों का विकास करे तथा सत्कर्म करे जिससे कि वह अभिलषित भोगों के उपभोग के लिए इच्छानुकूल उपयुक्त शरीर धारण कर सके।

यद्यपि इन्द्रियाँ सर्वव्यापक हैं और सब-कुछ ग्रहण करती हैं; परन्तु वे शरीर तथा तन्मात्राओं की मर्यादा में रहती हैं, यह बात व्यक्ति के कर्म, ज्ञान तथा पूर्वप्रज्ञा के कारण है। अतः यद्यपि इन्द्रियाँ स्वाभाविक रूप से सर्वव्यापक तथा असीम हैं, तो भी जो नवीन शरीर बनना है, उसका आधार मनुष्य के कर्म, ज्ञान तथा पूर्वप्रज्ञा के ऊपर रहता है और इस भाँति इन्द्रियों की प्रतिक्रियाएँ भी इसका अनुसरण कर सङ्कोच एवं विकास को प्राप्त होती हैं।

जिस प्रकार जोंक एक तृण के अन्तिम छोर पर पहुँच कर दूसरे तृण-रूप आश्रय को पकड़ कर अपने को सिकोड़ लेती है, उसी प्रकार जीवात्मा भी एक शरीर को अलग फेंक कर —अचेतावस्था को प्राप्त करके दूसरे शरीर का आश्रय ले अपना उपसंहार कर लेता है।

जिस प्रकार सुनार स्वर्ण का थोड़ा-सा भाग अलग ले कर उससे दूसरे नवीन और अधिक सुन्दर रूप की रचना करता है उसी प्रकार यह जीवात्मा इस शरीर को फेंक कर—अचेतावस्था को प्राप्त करके पितर, गन्धर्व, देव अथवा हिरण्यगर्भ के लोकों के सुखोपभोग के उपयुक्त दूसरे नवीन और सुन्दर रूप की रचना करता है।

पुनर्जन्म का मूल-कारण वासना ही है। जीवात्मा का लिङ्ग-शरीर अथवा मन जिसमें अत्यन्त आसक्त होता है, उसी फल को यह साभिलाष प्राप्त करता है। इस लोक में यह जो-कुछ कर्म करता है, उसका फल भोगने के लिए पुनः इस लोक में आ जाता है। पुनर्जन्म की कामना करने वाला पुरुष ही ऐसा करता है; परन्तु जो पुरुष कामना नहीं करता, वह कदापि पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होता। जो अकाम, निष्काम, आप्तकाम और आत्मकाम होता है, उसके प्राणों का उत्क्रमण नहीं होता, ब्रह्म ही होने से वह ब्रह्म को प्राप्त होता है। जो ब्रह्मवेत्ता है और जिसने अपनी सम्पूर्ण वासनाओं को निर्मूल बना दिया है, उसके लिए कोई भी कर्म फल-जनक नहीं होता; क्योंकि श्रुति कहती है—"जो पूर्ण आत्मकाम हो चुके हैं तथा जिन्होंने आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लिया है—उनकी समस्त कामनाएँ इस शरीर में ही विलीन हो जाती हैं।"

(मुण्डकोपनिषद्)

८. मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा की यात्रा (२)

यह जीवात्मा मुख्य प्राण, ज्ञानेन्द्रिय तथा मन के साहचर्य में अपने पूर्व-शरीर को छोड़ देता है और नवीन शरीर धारण करता है। वह अविद्या, शुभाशुभ कर्म तथा पूर्व कालीन जन्मों में प्राप्त संस्कारों को भी अपने साथ ही ले जाता है।

जब जीवात्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता है, तब वह सूक्ष्म शरीर की तन्मात्राओं से परिवेष्टित होता है। यह सूक्ष्म शरीर ही नये शरीर का बीज होता है।

यह जीवात्मा धूम्रादि आतिवाहिक पदार्थों के द्वारा

ऊर्ध्वारोहण कर चन्द्रलोक में जाता है। वहाँ अपने शुभ कर्मों का फल भोग कर शेष सञ्चित कर्मों का फल भोगने के लिए, जिस मार्ग से गया होता है, उसी मार्ग से अथवा अन्य मार्ग से भी वापस आता है।

स्वर्ग में देव बन कर रहने के लिए जो शुभ कर्म किया था, वह पुण्य-कर्म जब पूरा हो जाता है, तब शेष बचा हुआ शुभ अथवा अशुभ कर्म उस जीवात्मा को फिर इस लोक में वापस लाता है। इस भाँति के आवागमन के सिद्धान्त को स्वीकार किये बिना नव-जात शिशु के सुख-दुःख का स्पष्टीकरण कर सकना सम्भव नहीं।

एक ही जन्म में गत जीवन के सभी कर्मों की पूर्ति हो जाय, यह सम्भव नहीं; क्योंकि मनुष्य शुभ तथा अशुभ दोनों ही प्रकार के कर्म किये रहता है, जिसके परिणाम-स्वरूप वह मनुष्य, देवयोनि अथवा पशु-पक्षी की योनि में जन्म लेता है। इससे यह सम्भव नहीं कि शुभाशुभ दोनों प्रकार के कर्मों के फल की पूर्ति एक ही जन्म में हो जाय। अतएव यद्यपि स्वर्ग में पुण्य-कर्मों का फल पूरा-पूरा भोगा जा चुका होता है, तथापि दूसरे कर्म सञ्चित रहते हैं, जिनके कारण मनुष्य भले अथवा बुरे वातावरण में जन्म लेता है।

जीवात्मा जो नया शरीर धारण करता है, उसका भान उसे पहले से ही रहता है। जिस प्रकार जोंक अथवा कीड़ा दूसरी घास पर अपने पाँवों को टिका कर ही पहली घास को पकड़ को छोड़ता है, वैसे ही इस वर्त्तमान शरीर को छोड़ने से पहले जीवात्मा को अपने आने वाले शरीर का भान रहता है।

एक मत यह है कि मृत्यु होने के पश्चात् जो कर्म फल-

जनक होते हैं, वे सब समाप्त हो जाते है और इससे जो लोग चन्द्रलोक में जाकर फिर वापस आते हैं, उनके पास किसी प्रकार का कर्म अवशेष नहीं रहता। परन्तु यह मत यथार्थ नहीं है। कल्पना कीजिए कि कुछ विशेष कर्म एक ही प्रकार के जन्म में पूर्ण रूप से भोगे जाते हैं तथा कुछ विशेष कर्म दूसरे प्रकार के जन्म मे भोगे जाते हैं, तो फिर वे कर्म एक जन्म में किस प्रकार पुञ्जीभूत हो सकते हैं ? हम ऐसा तो कह नहीं सकते कि अमुक कर्म फल देना बन्द कर देते हैं; क्योंकि प्रायश्चित्त के अतिरिक्त इस भाँति कर्मों का फल बन्द नहीं होता। यदि सम्पूर्ण कर्म एक साथ ही फल धारण करते हों तो स्वर्ग अथवा नरक मे जीवन व्यतीत करने अथवा पशु-पक्षी योनि में जीवन समाप्त करने के पश्चात् दूसरा जन्म ग्रहण करने का कोई कारण ही नहीं रहता; क्योंकि इनमें पुण्य अथवा पाप करने का कोई साधन नहीं है। इसके अतिरिक्त ब्रह्महत्या इत्यादि कितने ऐसे महापाप होते हैं, जिन्हें भोगने के लिए कई जन्म लेने पड़ते हैं। श्री मध्वाचार्य जी ब्रह्मसूत्र पर अपने भाष्य मे लिखते हैं कि 'चौदह वर्ष की आयु से लेकर जीवात्मा अमुक आवश्यक कर्म करता है, जिसका एक-एक कर्म भी कम-से-कम दस जन्मों का कारण बनता है।' फिर सभी कर्मों का फल एक ही जन्म मे भोग सकना क्योंकर सम्भव हो सकता है ?

६. दो मार्ग—देवयान तथा पितृयान

(अ) अर्चि-मार्ग (देवयान)

उत्तरायण मार्ग अथवा देवयान वह मार्ग है, जिससे योगी ब्रह्म के पास जाते हैं। यह मोक्ष को प्राप्त कराता है। यह

ब्रह्म के उपासकों को ब्रह्मलोक में ले जाता है। वह ब्रह्म का उपासक देवयान मार्ग पर पहुँच कर अग्निलोक में आता है, तदनन्तर वायुलोक में और वहाँ से क्रमशः सूर्यलोक, वरुण-लोक, इन्द्रलोक तथा प्रजापति के लोक में होता हुआ ब्रह्मलोक में पहुँच जाता है।

वे लोग अर्चि (ज्योति) को प्राप्त होते हैं। वे अर्चि से दिन को, दिन से शुक्ल पक्ष को, शुक्ल पक्ष से उत्तरायण के छः मासों को, इन छः मासों से संवत्सर को और संवत्सर से आदित्य को प्राप्त होते हैं।

जब यह जीवात्मा इस लोक से प्रयाण करता है, तब वह वायु को प्राप्त होता है। वायु उसके लिए रथ-चक्र के छिद्र की भाँति मार्ग दे देता है। वह उस मार्ग से ऊपर चढ़ता है और आदित्य को प्राप्त होता है।

जब वह चन्द्रमा से विद्युत् लोक की ओर जाता है, तब वहाँ एक अमानव पुरुष होता है जो उसे ब्रह्म के समीप पहुँचा देता है।

अर्चि ही ब्रह्मविद्या के उपासकों का देवयान मार्ग है। केवल ब्रह्म के उपासकों के लिए ही यह मार्ग उन्मुक्त रहता है।

(आ) धूम्र मार्ग (पितृयान)

पितृयान मार्ग या धूम्र मार्ग पुनर्जन्म को प्राप्त कराने वाला है। जो लोग फल की कामना से यज्ञ-योगादि क्रियाएँ तथा दानादि कर्म करते हैं वे लोग इस मार्ग से चन्द्रलोक को जाते हैं और वहाँ पर जब उन जीवों का पुण्य कर्म समाप्त हो जाता है, तब वे जीव पुनः इस लोक में वापस आते हैं।

इस सम्पूर्ण मार्ग में धूम्र तथा कृष्ण वर्ण के पदार्थ होते हैं। जब जीव इस मार्ग से चलता है, तब वहाँ किसी प्रकार का प्रकाश नही होता। यह अविद्या के द्वारा प्राप्त होता है। अतः यह धूम्र मार्ग या तामिस्र मार्ग कहलाता है। यह मार्ग पितरों का है। जो लोग फल-प्राप्ति की अभिलाषा से यज्ञ तथा दानादि कर्म करते हैं, उनके लिए यह पितृयान है।

ये दोनों मार्ग सभी लोगों के लिए उन्मुक्त नही होते। उपासको के लिए देवयान मार्ग उन्मुक्त है और कर्मठ लोगों के लिए धूम्रयान का मार्ग उन्मुक्त है। जैसे ससार-प्रवाह नित्य है, वैसे ही ये दोनों मार्ग भी नित्य हैं।

आत्मवेत्ता जीवन्मुक्त महापुरुषों के प्राण उत्क्रमण नही करते। वे ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं। जिन जीवन्मुक्तो को कैवल्य मोक्ष प्राप्त हो गया है, उनके जाने अथवा वापस आने के लिए कोई लोक नही होता। वे सर्वव्यापक ब्रह्म के साथ एक बन जाते हैं।

इन दोनो मार्गों के लक्षणो तथा उनके परिणामों से अवगत हो कर योगी अपनी विवेक-बुद्धि को नही खोता। जो योगी यह जानता है कि देवयान मार्ग मोक्ष की ओर तथा पितृयान मार्ग जन्म-मृत्युमय ससार की ओर ले जाता है, वह योगी मोह को नही प्राप्त होता है। इन दोनों मार्गों का ज्ञान योगी को जीवन के ध्येय की प्राप्ति के लिए प्रत्येक क्षण मार्ग-दर्शक बना रहता है।

●

मृत्यु से पुनरुत्थान तथा न्याय

१. मृत्यु से पुनरुत्थान

कब्रिस्तान में मुर्दों के पुनः उठने का नाम कयामत है। इस्लाम, ईसाई तथा पारसी धर्म के तीन मुख्य सिद्धान्त हैं : मृत्यु से पुनरुत्थान, ईश्वर से न्याय प्राप्त करना तथा पुरस्कार अथवा दण्ड भुगतना।

यहूदी लोगों ने इस सिद्धान्त को पारसी धर्म से ग्रहण किया था। उन्होंने ही इसे ईसाई तथा इस्लाम धर्म को प्रदान किया।

कितने ही लेखकों की ऐसी मान्यता है कि इस प्रकार का पुनरुत्थान केवल आत्मा का ही है, परन्तु इस विषय में सामान्य लोगों का विचार यह है कि कब्रिस्तान में आत्मा और शरीर दोनों ही उठ बैठते हैं। यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि यदि शरीर अलग-विलग हो गया हो तो वह शरीर क्योंकर उठ सकता है? परन्तु मुहम्मद ने शरीर के एक अङ्ग के रक्षण में बड़ी सावधानी रखी है। यह अङ्ग भविष्य में होने के आधार का अथवा उसमें उपयुक्त होने वाले पिण्ड का काम देता है। उनका ऐसा उपदेश है कि पृथ्वी के कारण मानव-शरीर नष्ट हो जाता है; परन्तु उसकी एक ग्रन्थि, जिसे 'अल-अजीब' कहते हैं, नष्ट नहीं होती। मानव-शरीर में सर्वप्रथम इस 'अल-अजीब' की रचना हुई। जिस प्रकार किसी वृक्ष के बीज का नाश नहीं होता और उसमें नया वृक्ष उत्पन्न होता है, 'अल-अजीब' अन्तिम समय तक अविकृत ही रहती है।

मुहम्मद साहब बतलाते हैं कि कयामत का जो दिन आने वाला है, उस दिन ईश्वर चालीस दिनों तक वृष्टि करेंगे, जिससे यह सम्पूर्ण पृथ्वी बारह हाथ ऊपर तक जलमग्न हो जायेगी और जिस प्रकार पौदे का अङ्कुर प्रस्फुटित होता है, वैसे ही उससे सम्पूर्ण शरीर विकसित हो उठेंगे।

यहूदी भी यही बात बतलाते हैं। वे मूल अस्थि को 'लज़' नाम से पुकारते हैं। परन्तु उनका कहना यह है कि पृथ्वी की रज से जा तुषार पैदा होगा, उस-(अल-अजीव) से ही यह शरीर विकसित होगा।

बुन्दहेस के इकतीसवें प्रकरण में ऐसा प्रश्न किया गया है कि जिसे पवन उड़ा ले गया है तथा जिसे तरङ्गों ने आत्मसात् कर लिया है, वह शरीर पुनः क्योंकर बन जायगा ? मृत व्यक्ति का पुनरुत्थान क्योंकर होगा ? इसका उत्तर आरमज्द ने दिया है कि 'जब पृथ्वी में बपन किया हुआ बीज मेरे द्वारा पुनः उगता है और फिर से नवजीवन प्राप्त करता है, जब मैंने वृक्षों को उनकी जाति के अनुसार जीवन दिया है, जब मैंने बालक को माँ के उदर में रखा है, जब मैंने मेघ को बनाया है जो पृथ्वी के जल को शोषण कर लेता है और जहाँ मैं इच्छा करता हूँ वहाँ वह उसे वृष्टि करता है। जब मैंने इस भाँति प्रत्येक वस्तु की रचना की है, तो फिर पुनरुत्थान के कार्य को सम्भव बनाना क्या मेरे लिए दुष्कर है ? स्मरण रखो कि इन सभी वस्तुओं की मैंने एक बार रचना की है और जो वस्तुएँ नष्ट हो गयी हों उनकी रचना क्या मैं पुनः नहीं कर सकता ?'

अन्न के बीज की उपमा दी जाती है। वह इस प्रकार है। उस बीज को पृथ्वी के उदर में समारोपित किया जाता है और तदुपरान्त वह बीज असङ्ख्य अङ्कुरों के रूप में फूट

निकलता है। यह उदाहरण पुनरावर्तन के लिए दिया जाता है। जब गेहूँ का कोरा बीज पृथ्वी के अन्दर दबा दिया जाता है तब वह सन्नद्धावद्ध अङ्कुर-परिधान के साथ प्रस्फुटित हो जाता है, तो जो सदाचारी व्यक्ति अपने परिधानों में दबा दिये गये हैं, वे कितने ही विविध रूपों में प्रकट होंगे ?

परमात्मा के हाथ में जो तीन कुञ्जियाँ हैं, वे किसी दूसरे प्रतिनिधि को नहीं दी गयी हैं। वे हैं : (१) वर्षा की कुञ्जी, (२) जन्म की कुञ्जी तथा (३) पुनरावर्तन की कुञ्जी।

पुनरावर्तन के चिह्न

पुनरावर्तन के लिए जो दिवस निश्चित किया गया है, उस दिन के आगमन के चिह्न-स्वरूप कुछ बातें निश्चित की गयी हैं। वे हैं : (१) सूर्य का पश्चिम दिशा में उदय होना, (२) दजाल का प्रकट होना, यह दजाल एक विकराल राक्षस है जो अरबी भाषा में इस्लाम धर्म के सत्यों की शिक्षा देगा तथा (३) गुर नामक दुन्दुभी (नक्कारे) की ध्वनि—यह स्वर तीन बार बजेगा।

ये सभी विचार न्यूनाधिक रूप से यहूदी धर्म के ही हैं। जिन जीवों का पुनरावर्तन होता है, उन्हें पुनरावर्तन के दिन के अनन्तर तथा न्याय के दिन से पूर्व, अपने मस्तक से कुछ ही गज की ऊँचाई पर स्थित सूर्य के झुलसाने वाले ताप में दीर्घकाल तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

२. न्याय-दिवस

शरीर से अलग हुए जीवात्मा को कुछ काल तक प्रतीक्षा करनी होगी। उसके अनन्तर उसका न्याय करने के लिए परमात्मा प्रकट होंगे। वहाँ मुहम्मद मध्यस्थ के रूप में कार्य

करेंगे। उसके पश्चात् प्रत्येक जीवात्मा की उसके जीवन के कर्मों के आधार पर जाँच होगी। शरीर के प्रत्येक अङ्ग और अवयवों को अपने पाप-कर्मों को स्वीकार करना पड़ेगा। प्रत्येक मनुष्य को एक पुस्तक दी जायेगी, जिसमें उसके सभी कर्म अङ्कित होंगे। हिन्दू धर्म के अनुसार यमराज के अधिकारी चित्रगुप्त की जो पुस्तक कही जाती है, जिसमें कि सभी मनुष्यों के कर्म अङ्कित होते हैं, उसके साथ इसकी तुलना की जा सकती है।

गैब्रीअल के हाथ में एक तुला होगी और वे पुस्तकें इस तुला में तोली जायेंगी। जिनके बुरे कर्मों की तुलना में भले कर्म भारी होंगे, वे स्वर्ग को भेजे जायेंगे और जिनके भले कर्मों की तुलना में बुरे कर्म भारी होंगे, वे नरक में डाले जायेंगे।

मुसलमानों ने यह मान्यता यहूदियों से ली है। अन्तिम दिन पेश की जाने वाली इन पुस्तकों की, जिनमें कि मनुष्यों के कर्मों का हिसाब रहता है तथा उनको तोलने वाली तुला की चर्चा प्राचीन यहूदी लेखकों ने की है।

यहूदियों ने पारसी धर्म के अनुयायियों से यह मन्तव्य स्वीकार किया है। पारसी लोगों की ऐसी मान्यता है कि मेहर तथा सरूश नामक दो देवदूत न्याय के दिन पुल से पार जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति की जाँच करने के लिए पुल के ऊपर खड़े होंगे। मेहर दिव्य दया के प्रतिनिधि हैं। वे अपने हाथ में एक तुला रखेंगे और लोगों के कर्मों को तोलेंगे। मेहर के दिये हुए विवरण के अनुसार प्रभु प्रत्येक व्यक्ति के दण्ड की घोषणा करेंगे। यदि व्यक्ति के सुकर्म की अधिकता हुई और यदि वे पलड़े को बाल बराबर भी झुका सके, तो प्रभु उन लोगों को स्वर्ग में मिलेंगे; परन्तु जिनके सुकर्मों का भार हलका

होगा, उनको दूसरा देवदूत सरुत पुल के ऊपर से नरक में धकेल देगा। यह सरुश प्रभु के न्याय का प्रतिनिधि है।

स्वर्ग के मार्ग में एक पुल होता है, जिसे मुहम्मद 'अल-सिरात' के नाम से पुकारते हैं। यह पुल नरक के प्रदेश से होकर जाता है। यह बाल से भी पतला और तलवार की धार से भी तीक्ष्ण है। जो मुसलमान सुकर्म किये रहते हैं, वे इस पल को सुगमता से पार कर जायेंगे। मुहम्मद साहब उनका नेतृत्व करेंगे। दुष्कर्म करने वाले इस पुल पर लड़खड़ा कर सिर के बल नीचे नरक में जा पड़ेंगे। यह नरक नीचे पापियों के लिए अपना मुख फैलाये रहता है।

यहूदी लोग नरक के पुल की बात करते हैं। यह पुल सूत के धागे से अधिक विस्तृत नहीं है। हिन्दू वैतरणी नदी की बात करते हैं। पारसी लोगों का उपदेश है कि अन्तिम दिन सभी मनुष्यों को 'चिनवत्' नामक पुल से पार होना है।

चतुर्थ प्रकरण

मृत्यूपरान्त-आत्मा

मृत्यूपरान्त-आत्मा

१. मृत्यूपरान्त-आत्मा

(पारसी धर्मानुसार)

मृत्यु के पश्चात् आत्मा 'हेमिस्तिकेन' नाम के एक मध्यम लोक को जाता है। यह लोक ईसाई धर्म के 'परगेटरी' से मिलता-जुलता है। सदाचारी व्यक्ति की आत्मा एक सौन्दर्य-मयी अप्सरा से मिलती है। यह अप्सरा उस आत्मा के पवित्र-विचार, पवित्र वाणी तथा पवित्र कर्मों का प्रतीक है। वह आत्मा न्यायागमन-रूप से प्रसिद्ध 'चिनवत् पुल' को पार करती है और वहाँ से स्वर्ग को जाती है। यह पुल सदाचारी व्यक्ति को सरल मार्ग प्रदान करता है। वह आत्मा 'आहुरमज्द' के स्वर्णासन के रूप में प्रसिद्ध 'अमेश स्पेण्टस' को प्राप्त होता है।

दुराचारी मनुष्य की आत्मा को एक दुष्ट कुरूप वृद्धा स्त्री मिलती है। यह स्त्री उसके बुरे विचार, बुरी वाणी तथा बुरे कर्मों का प्रतीक है। वह दुराचारी आत्मा पुल को पार नहीं कर सकती और उसमें वह अग्नि अथवा नरक में जा गिरती है। यह पुल दुष्ट मनुष्यों के लिए तलवार की धार के समान संकीर्ण बन जाता है।

मृत व्यक्ति की आत्मा तीन दिन तक उस घर में चक्कर काटती रहती है, जहाँ कि उसने आराम के अन्तिम दिन व्यतीत किये थे। जिस खण्ड में उसका मरण हुआ होता है,

उसमें 'उस्तवैती गाथा' गायी जाती है, जिसका भाव यह है कि—'जिसको आहुरमज़्द मुक्ति प्रदान करेंगे, वह आत्मा सुखी है।' उस स्थान में चार दिन तक अन्य बहुत-सी धार्मिक क्रियाएँ भी की जाती हैं। चौथे दिन प्रातः आत्मा को 'चिनवत् पुल' पर उपस्थित होना होता है। जब सदाचारी व्यक्ति की आत्मा आगे बढ़ती है, वहाँ सुरभित पवन प्रवाहित होने लगता है और वहाँ पर एक सुन्दरी नारी प्रकट होती है। जीवात्मा आश्चर्यचकित हो पूछता है—"तू कौन है ?" वह अप्सरा उत्तर देती है, "मैं तुम्हारी आत्म-चेतना हूँ। मैं तुम्हारे पवित्र विचार, पवित्र वाणी तथा पवित्र कर्मों की मूर्त्त रूप हूँ।"

जब दुराचारी व्यक्ति आगे जाता है, तब दुर्गन्धपूर्ण वायु प्रवाहित होने लगता है और जब वह पुल के पास पहुँचता है, तब वहाँ एक कुरूप वृद्धा स्त्री आ उपस्थित होती है। आत्मा उससे पूछता है, "ऐ वृद्धा स्त्री तू कौन है ?" तब वह उत्तर देती है, "मैं तुम्हारी आत्म-चेतना हूँ। मैं तुम्हारे बुरे विचार, बुरी वाणी तथा बुरे कर्मों की मूर्त्त रूप हूँ।"

२. गीता इस विषय में क्या कहती है

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं--"हे अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुत से जन्म बीत चुके हैं। मैं उन सभी को जानता हूँ, परन्तु हे परन्तप ! तू नहीं जानता।

"इस संसार में ये सनातन जीव [illegible] ी अंश हैं। जब यह जीवात्मा इस शरीर से उत्क्रमण [illegible] व वह [illegible]
चक्षु, त्वचा, जिह्वा तथा नासि[illegible]
के साथ छठे मन को अपने [illegible]

इन्द्रियों का स्थान प्रकृति है। इन्द्रियों के निवास-स्थान रूप प्रकृति उस पुरुष से भिन्न है, जिसे परमात्मा के नाम से सम्बोधित करते हैं। जैसे वायु पुष्पादि से गन्ध ले जाता है, वैसे ही यह जीवात्मा शरीर से उत्क्रमण के समय इन ज्ञानेन्द्रिय और मन को आकर्षित कर लेता है और अन्य शरीर में प्रवेश करते समय इनको साथ ले जाता है। शरीर को छोड़ कर जाने वाले, शरीर में रहने वाले अथवा इन्द्रियों के विषयों को भोगने वाले इस जीवात्मा को मूढ़ लोग नहीं देखते, किन्तु ज्ञान-नेत्र-युक्त महात्मागण ही उसको देखते हैं।

"इस लोक में दो प्रकार के पुरुष हैं : क्षर और अक्षर। सब भूतों को क्षर कहते हैं और कूटस्थ अविनाशी को अक्षर कहते हैं। इन दोनों से विलक्षण एक उत्तम पुरुष है, उसे परमात्मा कहते हैं। यह अविनाशी ईश्वर तीनों लोकों में व्यापक हो कर उन सबका धारण-पोषण करता है। मैं ऊपर बतलाये हुए क्षर तथा अक्षर से परे तथा उत्तम हूँ, इसके कारण मैं लोक तथा वेद मे पुरुषोत्तम प्रसिद्ध हूँ।

"हे भरतर्षभ ! जिस काल मे गमन करने से योगी लोग फिर नहीं लौटते और जिस काल में गमन करने से लौटते हैं, मैं उस काल को तुम्हें बतलाऊँगा।

"अग्नि, ज्योति, दिवस, शुक्ल पक्ष तथा उत्तरायण के छः महीनों के समय जो ब्रह्मज्ञानी गमन करते हैं, वे ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं।

"धूम्र, रात्रि, कृष्ण पक्ष तथा दक्षिणायन के छः महीनों के समय जो योगी जन गमन करते हैं वे चन्द्रलोक को प्राप्त होते हैं और फिर लौट आते हैं।

"संसार के शुक्ल तथा कृष्ण ये दोनों ही मार्ग सदा से चले

आ रहे हैं। उनमें से एक पर चलने वाला इस लोक में फिर नहीं लौटता और दूसरे मार्ग पर चलने वाला पुनः वापस आ जाता है।"

३. मृत्यु तथा उसके अनन्तर

देवी लीला ने पूछा : "देवी सरस्वती ! मृत्यु के विषय में मुझे संक्षेप में बतलाइए कि मृत्यु सुखद होती है अथवा दुःखद तथा मरण प्राप्त कर जो लोग इस लोक से परलोक को प्रयाण करते हैं, उन्हें यहाँ से जाने के अनन्तर क्या होता है ?"

देवी सरस्वती ने उत्तर दिया : "मृत्यु प्राप्त कर यहाँ से प्रयाण करने वाले जीव तीन प्रकार के हैं : अज्ञानी, योग के ज्ञाता तथा धार्मिक वृत्ति वाले। उनकी मृत्यु के परिणाम भी भिन्न-भिन्न हैं।

"जो लोग धारणा योग का अभ्यास करते हैं, वे अपने शरीर का त्याग करने के पश्चात् अपनी इच्छानुकूल गति करते हैं और इससे सिद्ध योगी अपनी इच्छानुसार सर्वत्र विचरण करने में स्वतन्त्र होते हैं। (यह विषय मानसिक ध्यान, शारीरिक तप तथा संयम पर आधारित है)।

"जो लोग धारणा योग का अभ्यास नहीं करते तथा जो ज्ञान-प्राप्ति में भी संलग्न नहीं होते और न अपने भविष्य के लिए सद्गुणों का सञ्चय करते हैं, वे लोग अज्ञानी जीव कहलाते हैं। उन लोगों को मृत्यु का दुःख तथा दण्ड भुगतना पड़ता है।

"जिनका मन संयमित नहीं है तथा वह कामनाओं एवं सांसारिक वासनाओं और चिन्ताओं से आपूर्ण होता है, वे लोग इतने अधिक दुःखी होते हैं, जैसे कि कमल अपनी नाल से विलग होने पर होता है। वास्तव में अपनी अपरिमित

यातनाओं पर विजय प्राप्त करने तथा अपनी अनन्त कामनाओं तथा चिन्ताओं को नष्ट कर लेने पर ही हमें वास्तविक सुख प्राप्त होता है।

"जो मन शास्त्रों का अनुसरण नहीं करता और न पुण्य-शालियों की सङ्गति में अपने को पवित्र ही बनाता है, परन्तु वह दुर्जनों की सङ्गति में लगता है, मरणावस्था काल में वह मन अग्नि के समान धधकती कामनाओं से अपने को सन्तप्त बनाता है।

"जिस समय कण्ठ की घरघराहट श्वास-प्रश्वास की गति को अवरुद्ध बनाती है, नेत्र-दृष्टि मन्द हो जाती है तथा मुख की कान्ति म्लान हो जाती है, मृत्यु के उन अन्तिम क्षणों में जीवात्मा भी अपनी बुद्धि की मन्दता अनुभव करता है।"

"क्षीण पड़ी हुई दृष्टि के ऊपर उस समय गहन अन्धकार छा जाता है और दिन के प्रकाश में भी नेत्रों के समक्ष तारे टिमटिमाते हुए दृष्टिगोचर होने लगते हैं। क्षितिज भी मेघा-च्छन्न-सा प्रतीत होता है तथा यह नेत्रों के समक्ष एक नैराश्य-पूर्ण दृश्य उपस्थित करता है।

"इस समय सारे शरीर में तीव्र वेदना का सञ्चार होता है और सम्पूर्ण भूतगण नेत्रों के सामने नाचने लगते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो पृथ्वी वायु का रूप धारण कर नाच रही हो और अन्तरिक्ष मरते हुए व्यक्ति का निवास-स्थान हो।

"सारा आकाश-मण्डल उसके समक्ष घूमता-सा दीख पड़ता है। ऐसा मालूम होता है कि सागर की तरङ्गें उसे दूर लिये जा रही हैं। जैसा कि स्वप्न की दशा में होता है, वह कभी तो अपने को वायु में ऊपर उठाया हुआ और दूसरे ही क्षण नीचे धकेला-सा अनुभव करता है।

"ऐसे समय में उसे ऐसा विचार आता है कि वह एक अन्धकारपूर्ण गर्त्त में गिर रहा है और फिर ऐसा सोचने लगता है कि वह किसी पर्वत की उपत्यका में पड़ा हुआ है; वह अपने इस दुःख को लोगों से कहना चाहता है; परन्तु उसकी वाणी साथ नहीं देती।

"कभी उसे ऐसा लगता है कि वह अभी आकाश से गिर रहा है और फिर सोचता है कि वह वातचक्र में घूम रहा है। कभी उसको ऐसा मालूम होता है कि वह रथ में आरूढ़ हो अति-तीव्र वेग से जा रहा है और फिर वह अपने को हिम की भाँति पिघलता-सा अनुभव करता है।

"वह संसार तथा जीवन के कष्टों के विषय में अपने स्नेही जनों को अवगत कराना चाहता है, परन्तु उसे ऐसा लगता है कि वह इतनी तीव्र गति से अपने स्नेहीजनों से अलग ले जाया जा रहा है, जैसे कि विमान ले जाता है।

"वह चक्कर करने वाले यन्त्र अथवा अलात् चक्र की भाँति चक्कर करता है अथवा जैसे कि पशु को रस्सी से बाँध कर ले जाते हैं वैसे ही वह घसीट कर ले जाया जाता है। वह ऐसी गति करता है मानो भँवर हो और इधर-उधर ऐसे फिराया जाता है जैसे कि इञ्जिन का यन्त्र।

"उसे ऐसा लगता है कि वह आकाश में तृण की भाँति उड़ रहा है और जैसे पवन मेघ को खींच ले जाता है वैसे वह खींचा जा रहा है। तब वाष्प की भाँति ऊपर उठता है और फिर नीचे गिर जाता है जैसे कि भारी बादल समुद्र में बरसता है।

"वह अनन्त आकाश से होता हुआ जाता है और वहाँ चक्कर काटता है जैसे कि वह कोई ऐसा स्थान ढूंढ़ रहा है,

जो पृथ्वी तथा समुद्र पर होने वाले परिवर्त्तनों से मुक्त (शान्ति एवं विश्राम का स्थान) हो।

"इस भांति वह जीव ऊँचे चढ़ता और नीचे गिरता हुआ अविराम भटकता रहता है। यह जीव बड़ी कठिनाई से श्वासोच्छ्‌वास लेता है और इससे उसके शरीर को बहुत पीड़ा एवं कष्ट होता है।

"जिस प्रकार ज्यों-ज्यों सूर्यास्त होता जाता है त्यों-त्यों पृथ्वी का धरातल दृष्टिगोचर होना बन्द होता जाता है, वैसे ही जीव की इन्द्रियों की क्रियाएँ बन्द होने से उन इन्द्रियों के विषयों का ज्ञान भी क्षीण पड़ जाता है।

"इस भांति वह जीवात्मा अपने भूत तथा वर्त्तमान काल की स्मृति खो देता है और जिस प्रकार सन्ध्याकालीन प्रकाश के जाते रहने पर दिशाओं का ज्ञान जाता रहता है, उसी प्रकार उसे दिशा का ज्ञान नहीं रहता।

'मूर्च्छा की दशा में उसका मन अपनी विचार-शक्ति को खो देता है और इस भांति अपने विचार और चेतना की शक्ति के नष्ट हो जाने से वह जीव शून्यता की दशा में पड़ जाता है।

"मूर्च्छा की अचेतावस्था में शरीर के अन्दर प्राण की श्वास-क्रिया बन्द हो जाती है और इस भांति जब प्राण की गति पूर्णतः बन्द हो जाती है, तब प्राण का अवरोध हो जाता है जैसे कि मूर्च्छा में होता है।

"मस्तिष्क के ज्ञान-तन्तुओं के निर्बल पड़ने के साथ ही जब सन्निपात का ज्वर अपनी अन्तिम अवस्था में पहुँच जाता है, तब जड़ता के नियमानुसार शरीर पाषाण के समान कठोर बन जाता है। यह जड़ तत्त्व का नियम चेतन प्राणियों के साथ प्रारम्भ से ही लगा हुआ है।" (योगवाशिष्ठ

४. शोपनहोर का मन्तव्य 'मृत्यूपरान्त की दशा'

विद्यार्थी—मुझे आप एक शब्द में यह बताइए कि मैं अपनी मृत्यु के पश्चात् क्या बनूंगा ? ध्यान रहे कि आपका विचार स्पष्ट एवं सारभूत हो।

दार्शनिक—सर्व तथा शून्य।

विद्यार्थी—मैंने ऐसा ही सोचा था। मैंने आपके समक्ष एक प्रश्न रखा और आपने उसका उत्तर विपरीत ढङ्ग से दिया। यह रीति तो बहुत ही विचित्र है।

दार्शनिक—जी हाँ ! परन्तु प्रश्न तो तुम अलौकिक करते हो और फिर यह आशा रखते हो कि उसका उत्तर ऐसी भाषा में मिले जो कि मर्यादित ज्ञान को ही व्यक्त करती है। इससे यदि उसमें कुछ विरोध उठे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

विद्यार्थी—'अलौकिक प्रश्न तथा मर्यादित ज्ञान'—ऐसा कहने में आपका क्या अभिप्राय है ? इस प्रकार के शब्द मैंने पहले ही सुन रखे हैं। वे मेरे लिए कोई नये नहीं हैं। इस प्रकार के शब्दों के प्रयोग करने में मेरे प्राध्यापक की रुचि थी; परन्तु इन विशेषणों को वे केवल देवों के लिए ही प्रयोग करते थे और वे उसके अतिरिक्त अन्य किसी विषय की चर्चा नहीं करते थे। यह ठीक और उचित ही था। वे अपना मन्तव्य यों व्यक्त करते थे कि 'यदि वह देव स्वयं इस जगत् में है, तो वह मर्यादित बनता है, परन्तु यदि वह देव इस जगत् से बाहर अन्यत्र कहीं है, तो वह अलौकिक बनता है।' इससे अधिक सीधी और स्पष्ट व्याख्या अन्य कोई हो नहीं सकती। 'आप जहाँ हैं, वहीं को आप जानते हैं, उससे अधिक नहीं।' केन्ट की यह अनर्गल मान्यता अब कुछ विशेषता नहीं रखती।

यह बात प्राचीन है और आधुनिक विचारों के साथ सङ्गत नहीं है; क्योंकि अभी तो जर्मनी का ज्ञान रखने वाले श्रेष्ठ पुरुषों का एक दल ही हमारे सामने रहा है।

दार्शनिक—(पार्श्व में) 'यह जर्मन हयग है' ऐसा इसके कहने का अभिप्राय है।

विद्यार्थी—उदाहरण-स्वरूप पूर्व-कालीन शक्तिशाली दार्शनिक मेयर तथा प्रखर मेधावी हेगल को ही लीजिए। परन्तु वर्तमान युग में तो हम इन सब व्यर्थ की बातों को त्याग ही बैठे हैं। यही नहीं वरन् मुझे तो इस विषय में यो कहना चाहिए कि हम इन विषयों में इतना आगे बढ़ चुके हैं कि अब उनके साथ रह सकें, ऐसा सम्भव ही नहीं रहा तो फिर इनका उपयोग ही क्या है? इन सब बातों से हमारा प्रयोजन ही क्या रहा?

दार्शनिक—अलौकिक ज्ञान वह ज्ञान है जो कि सम्भाव्य अनुभव की मर्यादा से परे हो। यह ज्ञान वस्तुओं के उनके वस्तुगत स्वभाव का निर्णय करता है। इसके विपरीत वस्तुओं की मर्यादा के अन्दर रहने वाला ज्ञान मर्यादित ज्ञान है। अतः यह ज्ञान मर्यादित रूप से परे कुछ भी नहीं बतला सकता। इस मर्यादा के विचार से तुम एक व्यक्ति की भांति हो और तदनुसार मृत्यु तुम्हारा अन्त मानी जायेगी। परन्तु तुम्हारा व्यक्तित्व तुम्हारी वास्तविक तथा आन्तरिक सत्ता नहीं है। यह व्यक्तित्व तुम्हारी सत्ता की बाह्य अभिव्यक्ति मात्र है। यह स्वयं वस्तु नहीं, वरन् काल के आकार में अभिव्यक्त होने वाला रूप है, अतः इसका आदि तथा अन्त है। तुम्हारा जो वास्तविक आत्मा है, वह तो काल को जानता भी नहीं। यह व्यक्ति की दी गयी आदि अथवा अन्त की सीमा से

परे है। वह आत्मा तो सर्वत्र है तथा प्रत्येक व्यक्ति में व्याप्त है। उससे पृथक् तो किसी की सत्ता हो नहीं सकती। अतः मृत्यु आने पर एक ओर जहाँ तुम व्यक्ति-रूप से तिरोधान होते हो वहाँ दूसरी ओर तुम अस्तित्व रखते हो तथा सम्पूर्ण वस्तुओं के रूप में तुम विद्यमान रहते हो। 'मृत्यु होने के पश्चात् तुम सर्व तथा शून्य बनते हो'—पहले जो मैंने तुमसे ऐसा कहा था, उस समय मेरा अभिप्राय यही था। तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इससे अधिक संक्षिप्त रूप में दिया जा सके और वह सार पूर्ण भी हो; यह तो अशक्य है। यह मैं स्वीकार करता हूँ कि यह उत्तर उलटे ढङ्ग से दिया गया है; परन्तु ऐसा केवल इसलिए है कि तुम्हारा जीवन तो काल की सीमा में है, परन्तु तुममें रहने वाला अंश अमर है, वह शाश्वत अविनाशी है। तुम इस विषय को यों भी कह सकते हो—कि तुम्हारा जो अमर अंश है, वह काल की मर्यादा में लुप्त नहीं हो जाता और साथ ही वह अविनाशी भी है। परन्तु यहाँ तुम्हारे लिए एक दूसरी उलटी बात उठ खड़ी होती है। तुम देख रहे हो कि यहाँ अलौकिक विषय को मर्यादित ज्ञान की सीमा म लाने का प्रयास किया जा रहा है। मर्यादित ज्ञान जिन उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिए नहीं है, वैसे विषयों में इसका दुरुपयोग करना एक प्रकार से इसके प्रति हिंसात्मक कार्य है।

विद्यार्थी—देखिए, यदि मैं एक विशेष व्यक्ति के रूप में न रह सका तो मैं आपकी अमरता के लिए एक कौड़ी भी देने का नहीं।

दार्शनिक—ठीक है। मैं इस विषय में तुम्हें सन्तुष्ट कर सकूँगा। कल्पना कीजिए कि मैं तुम्हें गारन्टी दूँ कि मरने के पश्चात् तुम एक व्यक्ति के रूप में रह सकोगे; परन्तु इसमें एक

प्रतिबन्ध यह है कि प्रथम तुम तीन मास तक पूर्ण अचेतावस्था में व्यतीत करो।

विद्यार्थी मुझे इसमें कोई भी आपत्ति न होगी।

दार्शनिक—यह स्मरण रहे कि मनुष्य जब पूर्ण रीति से अचेत अवस्था में रहता है, तब उसे समय का पता ही नहीं चलता। इसी भाँति जब तुम मृत हुए होते हो तो तुम्हारे लिए समय तो एक समान ही हुआ होता है। भले ही मृत्यु की मूर्च्छित अवस्था में तीन मास व्यतीत हुए हों या दस सहस्र वर्ष और जब इस मूर्च्छा से तुम उठते हो तो उस समय तुम्हें जो-कुछ भी बतला दिया जाता है, उस पर तुम्हें विश्वास कर लेना होता है। चाहे तीन मास व्यतीत हुए हों या दस सहस्र वर्ष, जब तक तुम्हारा व्यक्तित्व वापस नहीं आता, तब तक तो तुमने उस समय के विषय में ध्यान ही नहीं दिया; उसे तुम स्वयं स्वीकार कर लेते हो।

और, कल्पना कीजिए कि ऐसा संयोग आ जावे कि प्रथम अचेतावस्था के दस हजार वर्ष व्यतीत हो जावें और उसके अनन्तर भी किसी का तुम्हें उठाने का विचार ही न सूझे तो यह तो मेरी समझ में तुम्हारे लिए सबसे बड़ी दुर्भाग्य की बात होगी। इन थोड़े से वर्षों के जीवन के उपरान्त हो आने वाली इस दीर्घकालीन मूर्च्छा का अनुभव करने के पश्चात् तो तुम अपनी शून्यता में पूर्ण अभ्यस्त हो गये होगे। जो-कुछ भी हो, परन्तु इतना तो तुम्हें निश्चित ही है कि तुम मूर्च्छा के विषय में सम्पूर्ण रीति से अनभिज्ञ होगे। अब तुम्हें और इतना समझना है कि जो अज्ञात शक्ति तुम्हें तुम्हारी वर्तमान अवस्था में जीवित रखती है, वह सत्ता पूर्व के दस सहस्र वर्षों में जो अपने कार्य से

आवरित नहीं हुई और जो तुम्हें भिन्न दशा का अनुभव हुआ, ऐसी दशा में भी वह गयी नहीं थी और इससे उस मूर्च्छा की अवस्था में भी वह तुम्हें जीवन प्रदान करती है। यदि तुम्हें ऐसा मालूम हो तो तुम उससे पूर्ण आश्वस्त रहते हो।

विद्यार्थी –निश्चय ही। मालूम होता है कि आप इन पुष्पित वचनों से मुझे अपने व्यक्तित्व को भुला कर दूसरी ओर ले जाना चाहते हैं। परन्तु मैं आपकी युक्तियों से पूर्ण रूप से परिचित हूँ। मैं आपको यह स्पष्ट बतला देना चाहता हूँ कि अपने व्यक्तित्व के बिना रह सकना मेरे लिए सम्भव नहीं है। मैं अज्ञात शक्ति से अपने को, अपने व्यक्तित्व को अपने से अलग होने नहीं दे सकता। आप जिसे अलौकिक घटना कहते हैं, उसके कारण मैं अपने व्यक्तित्व के बिना कुछ न कर सकूँ—यह सम्भव नहीं है और न मैं अपने व्यक्तित्व का परित्याग करने को ही तैयार हूँ।

दार्शनिक—मैं समझता हूँ कि तुम्हारी ऐसी मान्यता है कि तुम्हारा व्यक्तित्व ऐसी रमणीय वस्तु है—ऐसी श्रेष्ठ, ऐसी पूर्ण तथा अनुपम कि उससे श्रेष्ठान्तर किसी वस्तु की तुम कल्पना ही नहीं कर सकते। तुम्हारी वर्त्तमान परिस्थिति से यदि—जैसा कि कहा जाता है उसी प्रकार—कोई वस्तु अधिक अच्छी तथा अधिक टिकाऊ हो तो क्या तुम उस वस्तु के साथ अपनी वर्त्तमान परिस्थिति का विनिमय करने को प्रस्तुत न होंगे ?

विद्यार्थी—आपको पता नहीं कि मेरा व्यक्तित्व, भले ही वह कैसा भी हो, मेरा अपना अस्तित्व ही है। इस जगत् में मेरा अपना व्यक्तित्व मेरे लिए सबसे अधिक महत्त्व की वस्तु है; क्योंकि 'ईश्वर ईश्वर है और मैं मैं हूँ।' मैं मैं ही बना रहना चाहता हूँ। यही एक मुख्य बात है। मुझे शाश्वत सत्ता की

आवश्यकता नहीं। मैं जिस पर विश्वास करूँ, उसके पहले तो मेरा व्यक्तित्व मेरे लिए सिद्ध होता है।

दार्शनिक—तुम इस समय क्या कर रहे हो। जब तुम ऐसा कहते हो कि 'मैं हूँ, मैं बना रहना चाहता हूँ'। इस बात को कहने वाले तुम अकेले ही नहीं हो। प्रत्येक प्राणी, जिसमें चैतन्य का किंचित् भी आभास है, ऐसा ही कहता है। इसका अर्थ यह हुआ कि तुम्हारी जो इच्छा है, वह तुम्हारा एक अंश है, जो स्वयं तुम्हारा व्यक्तित्व नहीं है। वह अंश बिना किसी भेद के सभी प्राणियों में सामान्य रूप से विद्यमान है। वह एक व्यक्ति की इच्छा नहीं है, परन्तु वह स्वयं सत्ता की इच्छा है। जिस किसी भी वस्तु की सत्ता है, उन सबका यह मूलगत तत्त्व है। इतना ही नहीं; यह तो अस्तित्व रखने वाली सभी वस्तुओं का कारण ही है। इस प्रकार की इच्छा एक ही बात के लिए सतृष्ण रहती है। वह किसी दूसरे प्रकार की किसी साधारण वस्तु से सन्तुष्ट नहीं होती; परन्तु सामान्य रीति से वह अपनी सत्ता के लिए सतृष्ण रहती है। यह सामान्य सत्ता कोई विभिन्न की हुई सत्ता नहीं है। नहीं: यह तो उसका लक्ष्य ही नहीं है। फिर भी ऐसा मालूम होता है कि यह इच्छा व्यक्ति के अन्दर ही चैतन्य को प्राप्त होती और इसी से ऐसा मालूम होता है कि इस प्रकार की सत्ता केवल व्यक्ति से ही सम्बन्धित है। यही आभास है। यह आभास है, यह भ्रम है। इस आभास से ही व्यक्ति बन्धन से आबद्ध है। परन्तु यदि वह सोचे तो वह इस शृंखला को तोड़ कर मुक्त हो सकता है। अतः मैं ऐसा कहता हूँ कि यह बात परोक्ष रूप से भी है कि यह प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सत्ता की ही कामना रहती है। जीवित रहने की वह एक ऐसी इच्छा है, जो वास्तविक है।

चारपूर्ण तथा हास्यास्पद हैं। इस भाँति के अबोध व्यक्तियों के साथ मेरी आयु का मनुष्य वार्तालाप में पाव घन्टा समय नष्ट करता है। इसका एक ही कारण है कि इससे मेरा मन-बहलाव होता है तथा समय भी कट जाता है; परन्तु अभी तो विदा माँगता हूँ; क्योंकि मुझे दूसरे आवश्यक कार्य करने हैं।

९. अन्तिम विचार आकार धारण करता है

मनुष्य का अन्तिम विचार उसके भावी भाग्य का निर्माण करता है। मनुष्य का अन्तिम विचार उसके भावी जन्म का निर्णय करता है। भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में बतलाते हैं: "हे कौन्तेय! अन्त समय में जिस-जिस भाव का स्मरण करता हुआ पुरुष शरीर छोड़ता है, वह सदा उस उस भाव से प्रभावित हुआ उसी-उसी भाव को प्राप्त होता है।" (गीता ८-६)

अजामिल अपने अपवित्र जीवन से पतित हो कुत्सित जीवन व्यतीत कर रहा था। पापमयी वृत्तियों के कारण वह दोषों के गहरे गर्त में जा पड़ा था तथा चोरी एवं लूट-पाट इत्यादि जघन्य कर्म करता था। सामान्य वेश्या के सङ्ग में पड़ कर वह उसका दास बन चुका था। वह दस लड़कों का पिता बन गया। उनमें से अन्तिम लड़के का नाम उसने नारायण रखा। जब वह मरणासन्न था तब अपने अन्तिम पुत्र के विचार में निमग्न हो गया। उस समय मृत्यु के तीन भयङ्कर भयङ्कर अजामिल के पास आ धमके। भय-कातर हो अजामिल ने अन्तिम पुत्र 'नारायण' को उच्च स्वर से पुकारा

'नारायण' का नाम लेते ही भगवान् विष्णु के पार्षद द्रुत-गति से वहाँ आ पहुँचे तथा यम के दूतों को उनके कार्य से रोक

प्रत्यक्ष रूप से प्रेरणादायक है और वह सभी वस्तुओं में एक ही रीति तथा समान भाव से रहती है। तत्पश्चात् तो सत्ता का होना एक स्वतन्त्र कार्य है, इतना ही नहीं, वह इच्छा का एक-मात्र प्रतिविम्ब है। जहाँ-जहाँ सत्ता रहती है, वहाँ-वहाँ वह भी रहती है और एक क्षण के लिये तो ऐसा कह सकते हैं कि सत्ता के अन्दर ही इच्छा का एकमात्र सन्तोष रहता है और इससे मेरी धारणा तो यह है कि यह कभी भी विराम नहीं लेती, वरन् सदा उत्तरोत्तर आगे ही बढ़ती रहती है और अन्त में उसके अन्दर सन्तोष को प्राप्त करती है। यह इच्छा व्यक्तित्व की अपेक्षा नहीं रखती। व्यक्तित्व से इसका कोई प्रयोजन नहीं है। परन्तु जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, उसके अनुसार तो यह ऐसी ही मालूम होती है; क्योंकि व्यक्ति का तो अपने तक ही सम्बन्ध होता है, अतः इच्छा के चैतन्य के साथ उसका सीधा सम्बन्ध नहीं होता। इसका परिणाम यह होता है कि प्राणी अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए सावधान रहता है और यदि ऐसा न हो तो प्राणी की भिन्न-भिन्न जातियों का रक्षण निश्चित न रहे। इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि व्यक्तित्व पूर्णता का स्वरूप नहीं है, वरन् वह तो मर्यादा का स्वरूप है, अतः व्यक्ति को मर्यादा से मुक्त करने में कोई हानि नहीं; परन्तु लाभ है। वस्तु के विषय में तुम चिन्तित मत बनो। एक वार भी 'तुम कौन हो' इसे पूर्ण रूप से जान लो; तुम्हारी सत्ता वास्तव में क्या है, उसे समझ लो, अर्थात् विश्व में व्यापक इच्छा को जानो कि सबको जीना है और तब सारा प्रश्न तुम्हें अविचारपूर्ण तथा उपाहासात्मक-सा प्रतीत होगा।

विद्यार्थी—दूसरे दार्शनिकों की भाँति आप स्वयं ही अवि-

चारपूर्ण तथा हास्यास्पद हैं। इस भाँति के अबोध व्यक्तियों के साथ मेरी आयु का मनुष्य वार्त्तालाप में पाव घण्टा समय नष्ट करता है। इसका एक ही कारण है कि इससे मेरा मन-बहलाव होता है तथा समय भी कट जाता है; परन्तु अभी तो विदा माँगता हूँ; क्योंकि मुझे दूसरे आवश्यक कार्य करने हैं।

५. अन्तिम विचार आकार धारण करता है

मनुष्य का अन्तिम विचार उसके भावी भाग्य का निर्माण करता है। मनुष्य का अन्तिम विचार उसके भावी जन्म का निर्णय करता है। भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में बतलाते हैं: "हे कौन्तेय! अन्त समय में जिस-जिस भाव का स्मरण करता हुआ पुरुष शरीर छोड़ता है, वह सदा उस उस भाव से प्रभावित हुआ उसी-उसी भाव को प्राप्त होता है।"(गीता ८-६)

अजामिल अपने अपवित्र जीवन से पतित हो कुत्सित जीवन व्यतीत कर रहा था। पापमयी वृत्तियों के कारण वह दोषों के गहरे गर्त में जा पड़ा था तथा चोरी एवं लूट-पाट इत्यादि जघन्य कर्म करता था। सामान्य वेश्या के सङ्ग मे पड़ कर वह उसका दास बन चुका था। वह दस लड़को का पिता बन गया। उनमें से अन्तिम लड़के का नाम उसने नारायण रखा। जब वह मरणासन्न था तब अपने अन्तिम पुत्र के विचार मे निमग्न हो गया। उस समय मृत्यु के तीन भयङ्कर यमदूत अजामिल के पास आ धमके। भय-कातर हो अजामिल ने अन्तिम पुत्र 'नारायण' को उच्च स्वर से पुकारा

'नारायण' का नाम लेते ही भगवान् विष्णु के पार्षद द्रुतगति से वहाँ आ पहुँचे तथा यम के दूतो को उनके कार्य से रोक

दिया। विष्णु के पार्षदों ने अजामिल को मुक्त कर दिया और उसे वैकुण्ठ लोक ले गये।

जब शिशुपाल मरा तो उसके शरीर से एक दिव्य ज्योति प्रकट हुई और वह भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर में प्रवेश कर गयी। इस दुष्ट शिशुपाल ने अपना सारा जीवन भगवान् श्रीकृष्ण की निन्दा करने में व्यतीत किया था और उससे वह भगवान् श्रीकृष्ण में प्रवेश कर गया।

जिस प्रकार दीवाल पर का कीट भ्रमर से दंशित होने पर भ्रमर का स्मरण करता-करता भ्रमर में ही रूपान्तरित हो जाता है; उसी प्रकार एक मनुष्य, जो अपने घृणादि भावों को भगवान् श्रीकृष्ण पर केन्द्रित करता है, अपने पापों से मुक्त हो जाता है और नियमित भक्ति के द्वारा भगवान् को प्राप्त कर लेता है, जैसे कि गोपिकाओं ने काम-भाव से, कंस ने भय के कारण, शिशुपाल ने घृणा के कारण तथा नारद ने भक्ति के भाव से श्रीकृष्ण को प्राप्त कर लिया था।

भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं—"जो व्यक्ति अनन्य-चित्त होकर निरन्तर प्रतिदिन मेरा स्मरण करता है, उस सदा समाहित चित्त वाले योगी को मैं सुलभ हूँ; और इस प्रकार मुझको प्राप्त कर तथा मुझमें लीन होकर वह दुःख तथा कष्टमय इस अनित्य संसार में पुनः जन्म नहीं ग्रहण करता। हे अर्जुन! ब्रह्मलोक-पर्यन्त सभी लोक काल-परिच्छिन्न हैं तथा वे एक निश्चित समय में लय को प्राप्त होते हैं; परन्तु मुझको प्राप्त कर लेने पर पुनर्जन्म नहीं होता। अतः अपने मन और बुद्धि को मुझ सर्वोत्तम वासुदेव में स्थिर रखते हुए नित्य निरन्तर मेरा ही ध्यान कर।"

(गीता-८-१५, १६)

"यदि मनुष्य सांसारिक सुखभोगों में रत होते हुए भी अपने मन को परमात्मा में लगाने का अभ्यास धीरे-धीरे करता रहता है तो मरण की अन्तिम घड़ी में अपने आन्तरिक ज्ञान की सहायता से परमात्म-विषयक विचार उसमें स्वयमेव जाग्रत हो जाता है।" भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं, 'अभ्यास योग से युक्त किसी दूसरी ओर न जाने वाले (स्थिर) मन से योगी उस दिव्य परम पुरुष को प्राप्त होता है।" (गीता : ८-८) आगे चल कर भगवान् कहते हैं, "अन्त समय में जो व्यक्ति मेरे वास्तविक स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण अथवा नारायण का स्मरण करते-करते शरीर त्याग करता है, वह मेरे स्वरूप को ही प्राप्त होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। मरण-काल में मनुष्य मुझे जिस रूप में स्मरण करता है उस स्वरूप को वह मनुष्य पा लेता है। वे भाव उसके पूर्व-संस्कार तथा सतत चिन्तन के परिणाम-स्वरूप ही होते हैं।' (गीता २-७२)

जिस मनुष्य को अपने जीवन में नस्य सेवन की कुटेव पूरी पूरी पड गयी हो वह मनुष्य जब मरण-काल के पूर्व अचेत बन जाता है तब वह मनुष्य अपनी अङ्गुली नाक पर इस प्रकार रखता है मानो वह नस्य सेवन कर रहा है; क्योंकि उस मनुष्य में नस्य-सेवन की इतनी बुरी आदत पड़ी होती है।

इसी प्रकार लम्पट मनुष्य को मृत्यु-काल में जो विचार आता है, वह विचार उसकी स्त्री के विषय का ही होता है। पुराने मद्यपी का अन्तिम विचार मदिरा-पान के विषय का, लोभी साहूकार का अन्तिम विचार अपने धन के विषय का, युद्ध करते हुए सैनिक का अन्तिम विचार अपने शत्रु को गोली से मार गिराने का तथा अपने इकलौते पुत्र में प्रगाढ़ ममता

रखने वाली माँ का अन्तिम विचार अपने पुत्र के विषय का होता है।

राजा भरत ने दयावश हो एक मृग-शावक का पालन-पोषण किया और अन्त में वे उसमें आसक्त हो गये। मृत्यु के अन्तिम समय में उनका विचार उस मृग के विषय का था, अतः उन्हें मृग की योनि में जन्म लेना पड़ा; परन्तु उनकी आत्मा की स्थिति पर्याप्त ऊँची थी जिससे मृग की योनि में भी उन्हें पूर्व-जन्म की स्मृति बनी रही।

जो मनुष्य आजीवन अपने मन को अनुशासित रखेगा तथा सतत अभ्यास के द्वारा उसे ईश्वर में युक्त कर देगा, उसी व्यक्ति का अन्तिम विचार ईश्वर-विषयक होगा। इस प्रकार का अभ्यास एक या दो दिन के समान्य प्रयत्न से अथवा एकाध सप्ताह या महीने के अभ्यास से नहीं हो सकता। इसके लिए तो यावज्जीवन सतत प्रयत्न तथा संग्राम की आवश्यकता है।

६. व्यक्तित्व तथा व्यक्तिगत सत्ता
(जीवत्व)

व्यक्तित्व तथा व्यक्तिगत सत्ता में अन्तर है। बहुतों को इन दोनों पदों का स्पष्ट बोध नहीं है। वे इन्हें मिला देते हैं और इससे उलझन आ खड़ी होती है। कितने ही लोग ऐसा मानते हैं कि व्यक्तित्व ही व्यक्तिगत सत्ता है और व्यक्तिगत सत्ता ही व्यक्तित्व है। वास्तव में तो जो पदार्थ व्यक्ति को व्यक्ति से अथवा व्यक्ति के इतर पदार्थों से पृथक् करता है, वह व्यक्तित्व कहलाता है। यों साधारण वार्त्तालाप में व्यक्तित्व शरीर का ही वाच्य है। जब एक मनुष्य दीर्घकाय होता है, उसका रूप सौम्य होता है और अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुडौल तथा

मुखाकृति मुन्दर होती है तो हम उसके विषय में यों कहते हैं कि 'अमुक व्यक्ति का व्यक्तित्व आकर्षक है।' जब एक मनुष्य दूसरों को प्रभावित कर सकता है तो लोग यों कहते हैं कि 'अमुक व्यक्ति का व्यक्तित्व बहुत ही प्रबल है।' जब कोई मनुष्य भीरु तथा सङ्कोची होता है तो हम यों कहते हैं कि 'अमुक व्यक्ति का व्यक्तित्व बहुत ही निस्तेज है; अतः उसे अपने व्यक्तित्व का विकास करना चाहिए।' जीवन में सफलता के प्राप्त्यर्थ समाज में व्यक्तित्व का बहुत ही महत्त्वपूर्ण भाग होता है।

पर्सनालिटी (*Personality*) शब्द मूल लेटिन शब्द पर्सना (*Persona*) से बना है, जिसका अर्थ है बाह्य रूप। अतः पर्सनालिटी एक विशेष प्रकार की चेतना है, जिसका सम्बन्ध इस स्थूल शरीर से है। अमुक पुरुष, अमुक स्त्री अथवा अमुक कुमारी—ये व्यक्तित्व के ही अभिव्यञ्जक हैं। क्षुधा, पिपासा, शारीरिक सौन्दर्य, श्याम अथवा गौर वर्ण, ऊँचाई, आकार, क्रोध तथा शरीर के सभी मर्यादित धर्मों को व्यक्तित्व ही कहा जाता है। वह ब्राह्मण है। वह सन्यासी है। वह व्यापारी है। वह डाक्टर है। इन सभी विषयों का समावेश व्यक्तित्व शब्द में है। यह एक प्रकार का बाह्य रूप है, जिसे मनुष्य ने वर्त्तमान परिस्थिति में धारण कर रखा है। मृत्यु मनुष्य के व्यक्तित्व को विनष्ट करती है; परन्तु यह उसकी व्यक्तिगत सत्ता (जीवत्व) को नष्ट नहीं कर सकती। व्यक्तिगत सत्ता एक स्वतन्त्र वस्तु है और अपना पृथक् अस्तित्व रखती है। यह शरीर की सीमाओं से नितान्त परे है तथा आपके व्यक्तित्व के साथ इसका किञ्चित् मात्र भी सम्बन्ध नहीं है। यह आपकी अहं-वृत्ति का विषय है और एक सतत गतिमान प्रवाह के

समान है। यह एक ही प्रकार के विचार का—अहं-भाव का सातत्य है। अन्य सभी विचार इस 'अहं-वृत्ति' के चतुर्दिक् होते हैं। मैं बालक था। मैं पूर्ण वयस्क हो गया। मैं डाक्टर था। मैंने खाया। मैंने पीया। मैंने कहा। मैंने ध्यान किया। मैंने बातचीत की। मैं अमरीका, फ्रांस, इंग्लैण्ड तथा जर्मनी गया था। एक ही 'अहं' इन सभी अनुभवों को प्राप्त हुआ। यह 'अहं' ही इस शरीर का निवासी है तथा यह बाल्य, यौवन तथा वृद्धावस्था में एक-सा स्थित रहता है।

आपके व्यक्तित्व में तो निरन्तरण रूपान्तर होता रहता है; किन्तु आपकी व्यक्तिगत सत्ता में—अहं-भावना में कभी भी परिवर्तन घटित नहीं होता; क्योंकि 'अहं-वृत्ति' का ज्ञान आपके साथ ही लगा रहता है। इस स्थूल शरीर के परित्याग कर देने के अनन्तर भी यह 'अहं-वृत्ति' बनी रहती है। मृत्यू-परान्त भी आप अपनी इस 'अहं-वृत्ति' को अपने साथ ही ले जाते हैं। स्वप्नावस्था में भी आपके अन्दर यह 'अहं-वृत्ति' रहती है। इस प्रगाढ निद्रा में भी आपकी 'अहं-वृत्ति' चालू रहती है। यदि प्रगाढ़ निद्रा में आपको अपनी 'अहं-वृत्ति' की चेतना न होती तो आपको यह स्मृति न होती कि 'मैं सुख से सोया था।'

धारणा, ध्यान तथा निर्विकल्प समाधि के द्वारा आप अपनी इस 'अहं-वृत्ति' को परब्रह्म परमात्मा में एकाकार कर उसे विलुप्त कर सकते हैं। जिस भाँति पात्र के ध्वस्त हो जाने पर पात्र का जल सागर के जल में मिल कर एक बन जाता है; उसी भाँति जब अज्ञान का नाश हो जाता है, जब अविनाशी परब्रह्म का ज्ञान होने पर—ब्रह्मविद्या की प्राप्ति से भेद-भाव नष्ट हो जाता है, तब यह व्यक्तिगत सत्ता (जीवत्व भाव) भी अनन्त एवं विश्वव्यापी परब्रह्म के साथ एक बन जाता है।

अभी तो आपको व्यक्तित्व तथा व्यक्तिगत सत्ता के भेद का स्पष्ट ज्ञान हो ही गया होगा।

७. प्राचीन मिश्रवासियों की मान्यता

मिश्रवासी-छाया शरीर (*Double*) के अस्तित्व को मानते थे। इस छाया-शरीर का आकार स्थूल शरीर की प्रतिच्छाया के समान था। जब तक स्थूल शरीर का अस्तित्व रहता तब तक छाया-शरीर का भी अस्तित्व रहता था। इस भाँति जीवात्मा ही तथाकथित छाया-शरीर था। इसका अपना कोई पृथक् अस्तित्व न था। स्थूल शरीर से सम्बंध-विच्छेद करना इसके लिए कभी भी परिहार्य न था। यदि शरीर के किसी भी अङ्ग को आघात पहुँचता तो छाया-शरीर अथवा जीवात्मा को भी आघात पहुँचता। अत जीवात्मा को अनवच्छिन्न बनाये रखने के लिए वे मृत शरीर को भलीभाँति सुरक्षित रखते थे। शव को 'ममी' बना कर सुरक्षित रखने की क्रिया का वे व्यवहार करते थे। विगत जीवात्मा को अमर बनाने के विचार से वे शव को चिरकाल तक सुरक्षित रखना चाहते थे।

छाया-शरीर स्थूल शरीर के स्थित रहने तक ही अवस्थित रहता। यदि शव नष्ट हो गया तो विगत आत्मा का भी नाश होना अवश्यम्भावी था। मृत्यु के अनन्तर वह जीवात्मा समस्त संसार में स्वच्छन्द रूप से भ्रमण करता तथा तीव्र क्षुधा एव पिपासा से उत्पीडित होने पर अपने शव के पास पुनः आ जाता।

चेल्डियन लोग भी छाया-शरीर में विश्वास रखते थे। उनकी मान्यता थी कि शरीर के नाश होने पर आत्मा भी नष्ट हो जाता है। उन्हें यह आशा थी कि मृत शरीर पुनः पुनर्जीवन प्राप्त करेगा। स्थूल शरीर के अतिरिक्त अन्य किसी दशा की वे कल्पना ही नहीं कर पाये।

प्राचीन मिश्रवासी तथा चेल्डियन लोग मृत व्यक्ति की आत्मा का शरीर से अलग रहने की बात को स्वीकार करने को तैयार न थे। अर्थात् उनकी मान्यता थी कि कब्रिस्तान अथवा जहाँ मृतक का शव रहता है उस स्थान को छोड़ कर आत्मा अन्यत्र नहीं रहती। इसी भाँति कुछ ईसाई लोग भी शव का पुनर्जीवन मानते हैं; अतः वे शव को सुरक्षित रखने के लिए मसाले लगाते तथा उसे दफन करते हैं। जिस प्रकार हिन्दू शव का दाह-संस्कार करते हैं, वैसा वे नहीं करते। उनकी अब भी यह निश्चित धारणा है कि मृत शरीर पुनः जीवित हो उठेगा। हिन्दू यह नहीं चाहते हैं कि शरीर-त्याग के पश्चात् जीवात्मा एक क्षण भी शरीर के आस-पास चक्कर लगाता फिरे।

दिवङ्गत आत्मा जीवन का पुनः उपभोग करने के लिए बहुत ही लालायित रहती है। अपनी कामनाओं की परिपूर्त्ति के वह स्थूल शरीर में प्रवेश करने के लिए उत्कण्ठित रहती है। हिन्दुओं को अभीष्ट नहीं कि मृत व्यक्ति की आत्मा इस लोक से आबद्ध रहे। वे चाहते हैं कि वे आत्माएँ अपने आनन्द-धाम की ओर द्रुतगति से प्रयाण करें। यही कारण है कि वे अविलम्ब ही शव का दाह-संस्कार कर डालते हैं।

पञ्चम प्रकरण

पुनर्जन्म का सिद्धान्त

पुनर्जन्म का सिद्धान्त

१. पुनर्जन्म का सिद्धान्त

इमर्सन, प्लेटो (अफलातून) आदि पुनर्जन्म के सिद्धान्त को पूर्ण रूप में स्वीकार करते थे। पुनर्जन्म का सिद्धान्त हिन्दू तथा बौद्ध धर्म का आधार है। प्राचीन मिश्रवासी भी इसमें विश्वास रखते थे। यूनानी दार्शनिकों ने तो इसे अपने दर्शन के मुख्य सिद्धान्त का ही रूप दे डाला।

मनुष्य इस पार्थिव शरीर से चिमटा रहता है। जीवन के साथ चिमटे रहने की यह आसक्ति भूतकाल के अनुभव तथा अस्तित्व को प्रमाणित करती है। साथ ही यह इस बात का भी प्रमाण है कि भविष्य में जीवन का अस्तित्व रहता है। मनुष्य इस जीवन को अत्यधिक चाहता है तथा भावी जीवन की भी प्रबल आकांक्षा रखता है।

कितने ही जीव जन्म ग्रहण करते हैं और जन्म ग्रहण के पश्चात् कुछ ही सप्ताह, मास अथवा वर्ष में इस लोक से प्रयाण कर जाते हैं। कितने शिशु गर्भाशय में ही काल-कवलित हो जाते हैं। कुछेक व्यक्ति शतायु होते हैं। तो ऐसा होता क्यों है? क्या कारण है कि कुछेक प्राणी इस संसार में आते हैं और स्वल्प काल तक ही रह पाते हैं। इसके विपरीत कुछेक अन्य प्राणी दीर्घकाल तक जीवित रहते हैं? क्या ऐसा अकस्मात् होता ही है? क्या कोई ऐसा नियम है जो जीवन तथा मृत्यु को नियन्त्रित करता है? क्या किसी निश्चित प्रयोजन के बिना ही मानव-प्राणी इस लोक में आते तथा यहाँ से प्रयाण कर जाते हैं। हाँ,

इस विषय में एक नियम है जो कि जीवन और मृत्यु का नियमन करता है। वह नियम है—कार्य-कारण का नियम।

कार्य-कारण का यह नियम सब पर आधिपत्य रखता है। कार्य-कारण का नियम अति-दुर्द्धर्ष तथा सर्वशक्तिसम्पन्न है। यह सम्पूर्ण जगत् इस सर्वोच्च नियम के अन्तर्गत गतिशील है। है। अन्य सारे नियम इस एक नियम के अन्तर्गत हैं। कर्म का नियम ही कार्य-कारण का नियम है। ईश्वर किसी भी प्राणी को दण्ड नहीं देता। मनुष्य अपने ही कर्मों का फल भोगता है। कार्य-कारण का नियम उस पर लागू होता है। मनुष्य सत्कर्म द्वारा सुख की खेती काटता है। इसी भाँति अपने दुष्कर्म से वह दुःख, रोग तथा सम्पत्ति-नाश आदि कष्ट अनुभव करता है।

सहज-ज्ञान अथवा स्वाभाविक प्रवृत्ति भूतकाल के अनुभव का ही परिणाम है। पुनर्जन्म के आधारभूत अनेक प्रमुख सिद्धान्तों में हिन्दुओं ने इस सहज ज्ञान को भी एक सिद्धान्त माना है। भूतकाल में घटित मृत्यु का अनुभव मानव-चित्त में सुषुप्त अथवा अव्यक्त रूप से विद्यमान रहता है, ये अनुभव संस्कार-रूप में उसके चित्त में रहते हैं। संस्कार चेतन मन के अन्तर्भाग में क्रियाशील रहता है। भूतकाल की दुःखानुभूति मानव-चित्त में वर्त्तमान रहती है और इसी कारण मानव-प्राणी मृत्यु से अत्यन्त भयभीत बना रहता है।

किसी के प्रति प्रथम दृष्टि में प्रेम के जागरण का हेतु एक साथ व्यतीत किये हुए उनके पूर्व-जीवन की एक विशेष प्रकार की भावना ही है। इन युग्म आत्माओं में इससे पूर्व भी परस्पर प्रेम था। वे ऐसा सोचते हैं तथा वास्तव में उन्हें ऐसा आभास-सा भी होता है कि 'हम दोनों इससे पूर्व परस्पर कहीं मिले थे।' इस प्रकार का पारस्परिक प्रेम केवल लैङ्गिक

आकर्षण मात्र नहीं है और ऐसे प्रेम का विच्छेद भी कदाचित् ही होता है। भगवान् बुद्ध ने अपनी पत्नी को बतलाया था कि वह पूर्व-जन्म में भी उन पर ममता रखती थी। उन्होंने अन्य प्रसङ्गों पर दूसरे कई लोगों के पूर्व-जीवन की घटनाओं का विवरण भी दिया था।

प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। शून्य में से कोई वस्तु प्रकट नहीं होती और न असत् से सत् की ही उत्पत्ति होती है। वर्तमान विज्ञान-शास्त्र का भी यह मौलिक सिद्धान्त है। दर्शन-शास्त्र का भी यही मूलभूत सिद्धान्त है। आप किसी शून्य से प्रकट नहीं हो गये। इस संसार में आपके अस्तित्व का कोई कारण है। एक जन्मान्ध है। एक मनुष्य मेधावी है। एक मन्द बुद्धि है। एक मनुष्य धनवान् है। एक निर्धन है। एक व्यक्ति स्वस्थ है। एक रोग-ग्रस्त है। इन सबका एक निश्चित कारण है।

कारण कार्य की अव्यक्तावस्था है। कार्य कारण की व्यक्तावस्था है। वृक्ष कारण है और बीज उसका कार्य है। वाष्प कारण है और वृष्टि उसका कार्य है। सम्पूर्ण वृक्ष बीज में मौलिक रूप से अवस्थित रहता है। मनुष्य का अखिलाङ्ग वीर्य के एक बिन्दु में अदृश्य मौलिक दशा में रहता है। वट-बीज वट-वृक्ष को ही उत्पन्न कर सकता है, वह आम्रतरु को उत्पन्न नहीं कर सकता। मनुष्य का वीर्यबिन्दु मानव-प्राणी का ही जनक होता है, अश्व का नहीं। वीर्य की एक लघु कणिका से सम्पूर्ण अवयवों से युक्त विशाल काया का आविर्भाव होता है। कितना महान् आश्चर्य है यह ! एक क्षुद्र बीज से एक दानवाकार सुविशाल वट-वृक्ष प्रकट होता है। क्या ही अद्भुत चमत्कार है ? आप अपने नेत्रों को बन्द कर इस रहस्य

पर तनिक विचार तो करें। आप स्वयं आश्चर्य एवं विस्मय में पड़ जायेंगे।

इस स्थूल देह के अन्तर्गत एक लिङ्ग-देह अथवा सूक्ष्म शरीर होता है। मृत्यु होने पर यह सूक्ष्म शरीर अपने सभी संस्कारों तथा प्रवृत्तियों के साथ स्थूल शरीर से वाहर आ जाता है। उसका आकार वाष्प के सदृश होता है। यह कोरे नेत्रों से दृष्टि-गोचर नहीं हो सकता है। सूक्ष्म शरीर ही परलोक को जाता है। यह सूक्ष्म शरीर पुनः स्थूल शरीर में प्रकट होता है। सूक्ष्म शरीर के आकार का स्थूल शरीर के आकार में पुनः प्रकट होने की क्रिया को पुनर्जन्म का नियम कहते हैं। आप भले ही इस नियम का निषेध करें; परन्तु नियम तो नियम ही है। यह वहुत ही कठोर तथा निर्मम है। यदि आप इस नियम का निषेध करते हैं तो स्पष्ट है कि आप इस नियम से अवगत नहीं हैं। आप इस नियम को स्वीकार करें अथवा न करें, किन्तु यह तो लागू होगा ही। उलूक पक्षी प्रकाश को स्वीकार करे अथवा न करे, किन्तु सूर्य के प्रकाश का अस्तित्व तो रहता ही है।

अनुभव द्वारा ही आपको ज्ञान प्राप्त होता है। एक मनुष्य हारमोनियम वजाता है। प्रारम्भ में वह सावधानीपूर्वक अपनी प्रत्येक अङ्गुली को प्रत्येक चावी पर रखता है और वारम्वार इसकी पुनरावृत्ति करता रहता है। कालान्तर में उँगलियों की यह गति उसके लिए स्वाभाविक-सी हो जाती है। यहाँ तक कि चावी की ओर विशेष ध्यान दिये विना ही वह अमुक प्रकार के राग वजा सकने में सक्षम हो जाता है। इसी भाँति आपका वर्तमान स्वभाव भी भूतकाल में सावधानीपूर्वक किये हुए आपके कर्मों का परिणाम है।

श्री शङ्कराचार्य तथा श्री ज्ञानदेव अपने बाल्यकाल में चारों वेदों तथा अन्यान्य शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिये थे। एक बालक बड़ी ही कुशलता से पिआनो बजाता है। एक बालक गीता पर प्रवचन करता है। जर्मनी का प्रख्यात कवि गोथे सतरह भाषाओं में निपुण था। इन मेधावी महापुरुषों ने अपने इस वर्त्तमान जीवन में इन्हें प्राप्त नहीं किया। उन्हें इनका ज्ञान पूर्व जीवन में ही प्राप्त था।

प्रत्येक बालक अमुक प्रकार की प्रवृत्ति अथवा स्वभाव को ले कर जन्म ग्रहण करता है। यह स्वभाव पूर्व-काल में मनोयोगपूर्वक किये हुए उसके कर्मों से गठित होता है। कोई भी बालक कागज के कोरे पृष्ठ के समान अथवा रेखाहीन श्याम फलक-सा शून्य मन के साथ जन्म नहीं लेता। इसके पूर्व भी हमारा जन्म हुआ रहता है। प्राचीन तथा अर्वाचीन युग के ऋषि, मुनि तथा योगियों का भी यह स्पष्ट उद्घोष है। ईसामसीह भी इसे मानते थे। उन्होंने इन्जील में बतलाया है कि 'इब्राहीम से पूर्व भी मैं था।' आदिकालीन गिरजाघरों में भी पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्थान प्राप्त था। इलीजा ने ही जान वैप्टिस्ट के रूप में पुनः जन्म लिया था।

बौद्धिक विशेषताओं में रहने वाली इस प्रकार की विषमता तथा असमानता के कारण का स्पष्टीकरण आनुवंशिक परम्परा नहीं कर सकती। इन अलौकिक महापुरुषों के माता-पिता तथा भाई-बहन आदि सभी सामान्य कोटि के ही व्यक्ति थे। स्वाभाविक प्रवृत्ति तो भूतकाल के कर्मों का ही परिणाम होतो है। यह वंश-परम्परा से नहीं आती। असाधारण प्रतिभाशाली व्यक्ति अपने पूर्व-जीवन में ही इन गुणों का अर्जन किये होते हैं।

यदि वर्त्तमान परिस्थितियों में आप अपनी इच्छाओं को इस जीवन में सन्तुष्ट न कर सके तो उन अपूर्ण कामनाओं की परितृप्ति के हेतु आपको पुनः इस लोक में आना पड़ेगा। यदि आपको इस जीवन में कुशल सङ्गीतकार बनने की तीव्र इच्छा जाग्रत हो उठी और अपनी इच्छा को आप पूर्ण नहीं कर सके और वह इच्छा अब भी बनी हुई है, तो यह इच्छा आपको पुनः इस संसार-क्षेत्र में लायेगी और आपको उपयुक्त वातावरण तथा तदनुकूल परिस्थिति में रखेगी। एक कुशल सङ्गीतकार बनने की प्रवृत्ति से आप अपने बाल्यकाल में ही सङ्गीत का अभ्यास प्रारम्भ कर देंगे।

पुनर्जन्म के सिद्धान्त के विषय में एक आपत्ति यह उठायी जाती है कि 'हमें अपने पूर्व जीवन की स्मृति क्यों नहीं होती ?' —आपने अपने बाल्यकाल में जो-जो कार्य किये थे—क्या वे अब आपको स्मरण हैं ? - मुझे बाल्यकाल की बातें स्मरण नहीं, अतः मैं बाल्यकाल में नहीं था'—क्या आप ऐसा कह सकेंगे ? निश्चय ही आप ऐसा नहीं कहेंगे। यदि आपकी स्मृति के आधार पर ही आपके अस्तित्व का होना निर्भर करता है तो आपका यह तर्क यह सिद्ध करता है कि आप अपने बाल्यकाल में एक बालक के रूप में स्थित नहीं थे; क्योंकि आपको अपने बालकपन का स्मरण नहीं आता। निश्चय ही बालकपन की विगत घटनाएँ आपके स्मृति-पटल से ओझल हो चुकी हैं; परन्तु आपने अपने अनुभवों के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त किया है, वह तो आपके जीवन का एक अविभाज्य अङ्ग बन चुका है। वे अनुभव अद्यापि आपके चित्त में संस्कार-रूप से विद्यमान हैं।

यदि आपको अपने भूतकालीन जीवन की स्मृति हो तो सम्भवतः आप अपने वर्त्तमान जीवन का दुरुपयोग करेंगे। आपके पूर्व-जीवन में जो आपका कट्टर शत्रु रहा होगा, वही

इस जीवन में आपके पुत्र-रूप में जन्म ले सकता है। अब यदि आप गत जीवन को स्मरण करें तो आप उसके प्राण लेने के लिए तुरन्त ही अपनी खड्ग खींच लेंगे। शत्रुता की भावना आपके हृदय में शीघ्र ही जग उठेगी। जब आप कालेज में प्रविष्ट होते हैं तो पाठशाला में प्राप्त सारे ज्ञान को भी आप अपने साथ ही ले जाते हैं। अब आप उच्चतर अभ्यास में इस ज्ञान की वृद्धि तथा विकास करते हैं। जब आप कालेज में जाते हैं तो पाठशाला में जो-कुछ आपने किया है, उन सबको स्मरण नहीं रखते; परन्तु पाठशाला का अनुभव आपके साथ रहता है। इसी भाँति आपका भूतकालीन जीवन भी आपके साम्प्रतिक जीवन पर प्रभाव डालता है।

प्रकृति माता ने भूतकाल को आपसे गुप्त रख रखा है; क्योंकि भूतकाल की स्मृति वाञ्छनीय नहीं है। थोड़ी देर के लिए आप कल्पना करें कि आप अपने विगत जीवन के विषय में जानते हैं। आपको यह भी पता है कि गत जीवन में आपने एक पाप किया था और अभी आपको उसका दण्ड मिलने वाला है। अब आप सदा ही इस विचार में निमग्न रहेंगे और इसके परिणामस्वरूप अपने को निरन्तर चिन्तातुर बनाये रखेंगे। इसके कारण न तो आपको प्रगाढ़ निद्रा आयेगी और न आपको भोजन ही रुचिकर प्रतीत होगा। इसी कारण ऋषियों ने कहा है : "भूतकाल का चिन्तन न कीजिए। भविष्य की योजना न बनाइए। वर्तमान जीवन का निर्माण कीजिए। ठोस वर्त्तमान में ही जीवन यापन कीजिए। सद्विचारों का पोषण कीजिए। पुण्य कर्म कीजिए। इससे आप अपने भविष्य को सुन्दर बना सकेंगे।"

योगी संस्कारों पर संयम कर अपने पूर्व-जन्म का स्मरण

कर सकता है। वह आपके चित्त में स्थित संस्कारों पर संयम कर आपको भी आपके पूर्व-जीवन के विषय में सब-कुछ बतला सकता है।

आपका वर्त्तमान जीवन आपके भूतकाल के कार्यों का परिणाम है। इसी भाँति आप वर्त्तमान जीवन में जो-कुछ कार्य कर रहे हैं वे आपके भावी जीवन के निर्णायक होंगे। इस कार्य-कारण के नियम को आपने स्वयं परिचालित किया है और इससे आप जन्म-मरण के चक्र में फँस गये हैं। पुनर्जन्म के विषय में भी यही नियम है। यह नियम सभी प्राणियों के लिए बन्धनकारक है। जब आप उस अविनाशी परमात्मा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेंगे, तभी यह चक्र नष्ट होगा और आप मोक्ष तथा पूर्णत्व को प्राप्त करेंगे।

आपके अनुभवों का नाश होना दुष्कर है। आपके कार्य एक अदृश्य शक्ति से सम्पन्न होते हैं, जिसे अदृश्य अथवा अपूर्व कहते हैं। ये फलोत्पादक हैं। कार्य प्रवृत्ति के रूप में पुनः प्रकट होते हैं। यदि आप दया के बहुत से कार्य करें तो आप दयालुता के कार्य करने की सुदृढ़ प्रवृत्ति का विकास करेंगे। जो लोग इस जीवन में बहुत ही दयालु हैं, उन्होंने अपने पूर्वजन्मों में दया के बहुतेरे बड़े-बड़े कार्य किये थे।

इस भाँति पुनर्जन्म कर्म पर आधारित है। यदि मनुष्य पाशविक कार्य करता है तो वह पशुयोनि में जन्म लेगा।

पुनर्जन्म का सिद्धान्त उतना ही पुरातन है जितने कि वेद और हिमालय। पुनर्जन्म का सिद्धान्त जीवन की बहुतेरी समस्याओं का समाधान करता है। आपका प्रत्येक शब्द, विचार तथा कार्य आपके लिए एक भण्डार तैयार करता है। भला बनिए, भले कार्य कीजिए। सद्विचारों को प्रश्रय दीजिए। पुण्य

कार्य कीजिए। हृदय को शुद्ध बनाइए। अमर आत्मा पर नित्यप्रति ध्यान कीजिए। यह आपका ही आत्मा है। ऐसा करने से आप अपने को जन्म-मृत्यु के चक्कर से मुक्त करेंगे और इस जीवन में ही अमरत्व तथा शाश्वत सुख को प्राप्त कर लेंगे।

२. कर्म तथा पुनर्जन्म (२)

आजके युग में भी मानव-जाति का बहुसङ्ख्यक भाग इस पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार करता है। पूर्व के शक्तिशाली राष्ट्रों ने भी इस सिद्धान्त को सत्य के रूप में ग्रहण किया था। मिश्र की प्राचीन सस्कृति का गठन इसी सिद्धान्त के ऊपर हुआ था। पायथागोरस, प्लेटो (अफलातून), वर्जिल और ओविद आदिकों ने इसे स्वीकार कर इटली तक इसका प्रचार किया। प्लेटो के दर्शन का तो यह मूलगत सिद्धान्त है, जबकि वह कहता है कि 'प्रत्येक प्रकार का ज्ञान स्मृति-रूप मे विद्यमान है' प्लेटो के सिद्धान्त के विरोधी प्लोटिनस तथा प्रोकलस आदिको ने भी इस सिद्धान्त को पूर्ण रूप से अङ्गीकार किया था। करोड़ों ही हिन्दुओ, बौद्धो तथा जैनियों ने इस विचार-धारा को अपने दर्शन, धर्म, राज्य तथा सामाजिक सस्थाओं का मौलिक आधार बनाया। फारस के उनागी सम्प्रदाय में इसे मुख्य-सिद्धान्त माना गया था। जीवात्मा के पुनर्जन्म को ड्रूइड मत में एक आवश्यक सिद्धान्त माना जाता था। उसका प्रभाव केल्ट, गाल तथा ब्रिटिश जनता पर पड़ा। रोमन, ड्रूइड तथा हिब्रू लोगो की प्रथा-प्रणाली तथा धार्मिक कृत्यो म इस सिद्धान्त की सुस्पष्ट झलक मिलती है। बेबीलोन के साम्राज्य के आधिपत्य मे आने पर यहूदियों ने भी इस विचार-धारा को स्वीकार किया। बप्टिस्ट जान को वे द्वितीय इलीजा मानते थे। इसी प्रकार ईसा को वे बैप्टिस्ट जान अथवा प्राचीन पैगम्

किसी एक का अवतार मानते थे। रोमन कैथोलिकों का पवित्रता का सिद्धान्त भी इसी का कामचलाऊ रूप-सा प्रतीत होता है, जिसे कि उनलोगों ने इसके स्थान की पूर्त्ति के लिए आविष्कार किया। कैन्ट, शिलिंग, शापनहोर प्रभृति दार्शनिक इस सिद्धान्त के समर्थक थे। जूलियस मुल्लर, डोर्नर तथा एडवर्ड बीचर जैसे धर्म-शास्त्रज्ञ भी इसको स्वीकार करते हैं। आज भी बर्मा, श्याम, चीन, जापान, तुर्किस्तान, तिब्बत, ईस्ट इण्डीज़ तथा लङ्का आदि देशों के निवासियों पर इस सिद्धान्त का साम्राज्य है। इन देशों की जनसङ्ख्या ७५०० लाख है, जो कि सम्पूर्ण मानव-जाति की दो तिहाई भाग है। ईसा संवत् से सहस्रों वष पूर्व से हिन्दू, बौद्ध तथा जैन इस महान् एवं सर्वोत्कृष्ट तत्त्वज्ञान के सिद्धान्त का शिक्षण संसार को प्रदान कर रहे थे; परन्तु पाश्चात्य जगत् तथा यूरोपीय देशों में जो आत्मघाती असङ्गत मान्यताएँ अन्धयुग के कारण प्रचलित हुई हैं—उन विचित्र मान्यताओं के आधार पर पूर्व के वास्तविक सिद्धान्तों का अस्तित्व मिटाया जा रहा है। क्या यह बात विस्मयजनक नहीं है ? ज्ञानी पुरुषों को उत्पीड़ित कर तथा कुस्तुन्तुनियाँ के भव्य पुस्तकालय में संग्रहीत असङ्ख्य ग्रन्थों को नष्ट कर चर्च के धर्माधिकारियों ने समस्त यूरोप को मानसिक अन्धकार में ला पटका है। धार्मिक विचारों के नृशंसतापूर्ण दमन के काले कारनामे जगत् में इसकी ही देन है। इसके परिणाम-जन्य साम्प्रदायिक युद्धों तथा उपद्रवों से लाखों मनुष्यों की प्राण-हानि हुई।

पुनर्जन्म के इस हिन्दू सिद्धान्त में अविश्वास रखने वालों के लिए यहाँ एक विचारणीय उदाहरण है। अभी थोड़े ही समय हुए, दिल्ली में शान्ति देवी नाम की एक छोटी बालिका ने अपने पूर्व-जन्म का विवरण विस्तारपूर्वक दिया था। इससे दिल्ली तथा मथुरा में ही नहीं वरन् सारे उत्तर प्रदेश में बड़ी

सनसनी फैल गयी। उसका बयान सुनने के लिए लोगों का एक बड़ा जमघट एकत्रित हो गया। उस लड़की ने मथुरावासी अपने पूर्व-जन्म के पति तथा पुत्र को पहचान लिया। पूर्व-जन्म में उसने जहाँ धन गाड़ रखा था, उस स्थान को उसने बतला दिया तथा घर के आँगन का वह कुँआ भी बतलाया जो अब बन्द कर दिया गया है। उसके बतलाये हुए विवरण की नियमित जाँच तथा पुष्टि प्रत्यक्षदर्शी माननीय व्यक्तियों द्वारा की गयी। रगून, सीतापुर तथा अन्य अनेक स्थानों मे इस प्रकार की घटनाएँ प्रायः सामान्य-सी हो चली हैं। ऐसी अवस्था में जीवात्मा पहले के स्थूल शरीर को छोड़ कर तुरन्त ही अपने सूक्ष्म शरीर के साथ नवीन जन्म धारण कर लेता है और यही कारण है कि जीवात्मा को अपने पूर्व-जीवन की स्मृति आ जाती है। वह जीवात्मा मानसिक लोक में अधिक काल तक नही रुकता, जहाँ कि उसे जगत् के अपने विभिन्न अनुभवों के अनुसार नये मन तथा सूक्ष्म शरीर का नव-निर्माण करना होता है।

आदि कालीन गिरजाघरों मे पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्थान प्राप्त था। इलीजा ने ही बैप्टिस्ट के रूप मे पुन. जन्म लिया था। क्या अन्धे बालक ने स्वय पाप किया था अथवा उसके पिता ने, जिससे कि वह बालक जन्मान्ध पैदा हुआ? ऐसा उन लोगो ने प्रश्न किया जो कर्म के प्रतिफल मे दूसरों को भी कारण मानते थे। मृत्यु के तुरन्त बाद ही एक चिन्ताजनक घड़ी आ उपस्थित होती है। उस समय पवित्र स्थान की ओर प्रयाण करने वाले जीवात्मा को अपने अधिकार में लेने के लिए देवदूतों का असुरो से सामना होता है।

पायथागोरस तथा दूसरे तत्त्वज्ञानियों ने जन्म-मरण के आवागमन के सिद्धान्त का विश्वास भारत से ही ग्रहण कि ।

पायथागोरस का जन्म छठी शताब्दी में हुआ था। उसने पुनर्जन्म के सिद्धान्त की शिक्षा दी और आश्चर्य तो यह है कि इसके साथ ही उसने मांस-भक्षण का निषेध भी चालू किया।

नवजात शिशु स्वत: ही अपनी माँ का दुग्धपान करने की चेष्टा करता है और बत्तख का बच्चा स्वयमेव तैरना आरम्भ कर देता है। इस प्रकार की स्वाभाविक क्रियाएँ पूर्व-स्मृति का प्रमाण हैं। पूर्व-जन्मों में जो क्रियाएँ की होती हैं, उन क्रियाओं के परिणाम-स्वरूप संस्कार पड़े होते हैं। ये संस्कार अविभेद्य होते हैं और उनके ही परिणाम-स्वरूप इस जीवन की स्मृति है। हमारा प्रत्येक कार्य चित्त पर एक संस्कार डालता है। वह संस्कार ही स्मृति में परिणत हो जाता है। यह स्मृति आगे चल कर अपने अनुरूप नये कर्म तथा नये संस्कारों को उत्पन्न करती है। वृक्ष और बीज के दृष्टान्त के समान ही कर्म और संस्कार का—जन्म और मरण का यह चक्र अनादि काल से चालू है।

कामनाओं के आदि काल का निर्णय नहीं हो सकता, क्योंकि जीवित रहने की कामना शाश्वत है। कामनाओं का आदि-अन्त नहीं है। भौतिक जीवन के उपभोग का आग्रह (अभिनिवेश) प्रत्येक प्राणी में पाया जाता है। जीवित रहने की यह कामना शाश्वत है। इसी प्रकार अनुभव भी अनादि हैं। आप किसी ऐसे समय की कल्पना नहीं कर सकते, जब कि अहं-वृत्ति आपके हृदय में न हो। अहं-भाव की यह वृत्ति बिना किसी अन्तराय के शाश्वत बनी रहती है। इससे हम इस बात का निर्णय सुगमता से कर सकते हैं कि इस जीवन से पूर्व भी हमारे कई जन्म थे।

जिस प्राणी को मृत्यु से होने वाले कष्ट का अनुभव नहीं है तथा उसने प्रथम बार ही जन्म लिया है; उसे कष्ट से बचने

के लिए भला मृत्यु का भय क्यों होगा ? कारण कि ऐसा समझा जाता है कि किसी भी विषय से बचने की इच्छा केवल तभी जाग्रत होती है जबकि उस विषय के संयोग से होने वाले दुःख के अनुभव की स्मृति हो। स्वाभाविक गुण वस्तुत. किसी भी कारण की अपेक्षा नहीं रखता। एक बालक जब माता की गोद से गिरने वाला होता है, तो यह सोच कर कि 'मैं गिर पड़ूँगा'—भय से काँपने लगता है और माता के वक्षस्थल पर लटकते हुए हार को अपने दोनों हाथों से दृढ़ता के साथ पकड़े रखता है। भला उस बालक ने तो अपने जीवन में मृत्युजन्य दु ख का अभी अनुभव भी नहीं किया फिर वह ऐसा क्यों करता है ? *मृत्यु के परिणाम-स्वरूप होने वाले दुःखों की स्मृति ही* मृत्यु से भयभीत होने का एकमात्र सम्भाव्य कारण है तो फिर इतना नन्हा-सा बच्चा मृत्यु से क्योंकर भयभीत होता है जैसा कि बच्चे के कम्प से प्रकट होता है।

अद्भुत मेधावी बालकों के बहुत से उदाहरण देखने मे आते हैं। पाँच वर्ष का एक बालक कुशलतापूर्वक पियानो अथवा वायोलीन बजा लेता है। ज्ञानदेव ने अपनी चौदह वर्ष की वय मे गीता पर 'ज्ञानेश्वरी' टीका लिखी। कितने ही बालक गणित-शास्त्र में निष्णात पाये जाते हैं। मद्रास मे भागवत नाम का एक बालक था। जब वह आठ वर्ष का था, तब वह कथा करता था। आप इस प्रकार की अद्भुत घटनाओं का क्योंकर स्पष्टीकरण करेंगे ? यह प्रकृति की लीला मात्र नहीं है। एकमात्र पुनर्जन्म का सिद्धान्त ही इन सबका स्पष्टीकरण कर सकता है। वर्तमान जीवन मे जब एक व्यक्ति सङ्गीत अथवा गणित का अभ्यास कर अपने मन मे उनके गहरे चिह्न अङ्कित कर लेता है तो वह इन संस्कारो को अपने साथ ही अपने आगामी जीवन में भी ले जाता है और इस प्रकार जब वह एक बालक

ही होता है तभी वह इन शास्त्रों का धुरन्धर विद्वान् बन जाता है

ईसाई धर्म की मान्यतानुसार धार्मिक जीवन का अन्तिम फल शाश्वत जीवन की प्राप्ति तथा पापमय जीवन का अन्तिम फल चिरन्तन अग्नि अथवा शाश्वत नरक-वास है। भला ऐसा क्योंकर हो सकता है ? क्योंकि पापी व्यक्ति को तो इसमें अपने आगामी जन्मों में पाप से मुक्त होने का कोई अवसर ही नहीं प्रदान किया जाता है।

पुनर्जन्म का यह सिद्धान्त हिन्दू, बौद्ध तथा जैन धर्मों में सामान्य रीति से सर्वमान्य है। परन्तु पुनर्जन्म का यह सिद्धान्त है क्या वस्तु ? पनर्जन्म के सिद्धान्त का भाव यह है कि जीवात्मा इस जीवन में नये सर्जन के रूप में प्रवेश नहीं करता है। अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचने से पूर्व उसे अनेक अस्तित्वों के लम्बे मार्ग से होकर आना पड़ता है। बुद्धि में किस विशेष प्रकार की क्रिया के द्वारा इस प्रकार का विचार जाग्रत होता है कि 'मैं हूँ' ?—इस भाँति वास्तविक तत्त्व को बतलाने वाली क्रिया में जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त कोई भी परिवर्त्तन नहीं होता है। शैशव काल से लेकर वृद्धावस्था तक बुद्धि के ज्ञान-तन्तुओं में आमूल परिवर्त्तन सङ्घटित होता रहता है; परन्तु 'मैं हूँ'—यह विचार कभी भी दूर नहीं होता। यह अहङ्कार ही जीवात्मा है। इस जीवात्मा के कारण ही स्मृति सक्षम रहती है। यह जीवात्मा की अपनी निज की चेतना होती है, किसी अन्य की नहीं। अतः यह अद्वय तत्त्व स्वयं अपने-आपमें स्थित रहता है। शक्ति के संग्रह और संरक्षण का नियम भौतिक जगत् में जितना सत्य है उतना ही आध्यात्मिक जगत् में भी। अतः जैसे कोई भी अणु न तो उत्पन्न किया जा सकता है और न नष्ट। तो फिर प्रश्न उठता है कि जिसे हम मृत्यु क

संज्ञा देते हैं, उसके अनन्तर इस जीवात्मा का क्या होता है। इसका एकमात्र यही उत्तर है कि विश्व की कोई भी शक्ति इसे कदापि नष्ट नही कर सकती।

पाप का मूलगत कारण क्या है ? यह आजका बहुत ही विवादास्पद विषय है। एकमात्र पूर्वजन्म का सिद्धान्त ही इसका पूर्ण समाधान करता है। अपने पूर्वजों के अपराध के कारण ही हम आनुवंशिक दुःख भोगते हैं—इस बात को स्वीकार करना संसार में एक ऐसे महान् अन्याय को स्वीकार करना है जिसकी कि कहीं समता नही। अपने पापों के लिए मनचाहा उत्तरदायित्व ठहराना तो धर्माधिकारियों का काम चलाने का एक साधन है। अपने दुष्कृतों के लिए व्यक्ति स्वयं ही दोष का भागी है न कि कोई अन्य। क्या सयुक्त राज्य के न्यायालय न्याय के सिद्धान्त पर आधारित नही हैं ? यदि वहाँ का एक न्यायाधीश न्यायासन पर बैठ कर 'ब' की मृत्यु को —स्वेच्छा से किये हुए उसके आत्मघात को—एक अन्य व्यक्ति 'अ' के द्वारा की हुई किसी प्राणी की हत्या के उचित प्रतीकार के रूप मे स्वीकार करे, तो क्या यह न्यायपूर्ण होगा ? और, यदि वह ऐसा करता है तो क्या वहाँ का उच्चतर न्यायालय उस न्यायाधीश को जानबूझकर 'ब' को आत्महत्या के अपराध के लिए प्रोत्साहित करने का दोषी नही ठहरायेगा ? ऐसा होने पर भी हमे यह विश्वास करने के लिए कहा जाता है कि एक व्यक्ति का पाप दूसरे व्यक्ति के कष्ट सहन करने पर धुल सकता है।

जब हम इस संसार मे असमानता, अन्याय तथा दोष देखते तथा उन सबके सुलझाव का प्रयास करते है तो पुनर्जन्म का यह सिद्धान्त हमे विशेष सहायक सिद्ध होता है। क्यों एक व्यक्ति धनी उत्पन्न होता है और दूसरा निर्धन ? क्यों एक

व्यक्ति मध्य अफ्रीका के नरभक्षी मनुष्यों के मध्य जन्म ग्रहण करता है और दूसरा भारत के शान्त, सात्त्विक वातावरण में ? क्या कारण है कि राजा जार्ज एक ऐसे विशाल भूभाग पर शासन करने को जन्म लिये जिस पर कि सूर्य कभी अस्त ही नहीं होता और क्यों आसाम के एक श्रमिक को एक अंग्रेज के चाय के बगीचे में एक गुलाम की भाँति काम करना पड़ता है ? इस प्रत्यक्ष अन्याय का कारण क्या है ? जो लोग ईश्वर को इस विश्व के स्रष्टा के रूप में मानते हैं, उन्हें भी, ईश्वर को ईर्ष्यादि दोषों से मुक्त रखने के लिए पुनर्जन्म के इस सिद्धान्त को अवश्य-मेव मानना चाहिए।

न्यूटेस्टामेन्ट (बाइबिल का उत्तरार्ध) में पुनर्जन्म के पर्याप्त उदाहरण पाये जाते हैं। सन्त जान (प्रकरण ६-२) में ईसा के अनुयायियों ने उनसे एक प्रश्न किया कि 'यह बालक अन्धा पैदा हुआ; इनमें से किसने पाप किया था—इस बालक ने अथवा इसके माता-पिता ने ?' यह प्रश्न उस युग में इस विषय में प्रच-लित दो लोक-मान्यताओं की ओर निर्देश करता है। उनमें से एक मान्यता थी मूसा के आधार पर। मूसा का यह उपदेश था कि माता-पिता के किये हुए पाप उनके बाद आने वाली तीसरी या चौथी पीढ़ी में उत्पन्न होने वाली उनकी सन्तान में उतर आते हैं। दूसरी मान्यता थी—पुनर्जन्म का यह सिद्धान्त। उस प्रश्न के उत्तर में ईसा ने केवल इतना ही कहा था कि उसके अन्धा पैदा होने में कारण न तो उस बालक का किया हुआ अपना पाप था और न उसके पिता का ही। उन्होंने उस बालक के पूर्व-अस्तित्व का निषेध नहीं किया। भगवान् ईसा यह भी मानते थे कि जान पुनः इलीजा के रूप में उत्पन्न हुए थे।

परन्तु, यहाँ लोग कह सकते हैं कि यदि यह सिद्धान्त ठीक है

तो फिर मनुष्य को अपने पूर्व-जीवन की स्मृति क्यों नही रहती ? ऐसे लोगों से मेरा केवल यह प्रश्न है कि हम अपनी स्मरण-शक्ति का किस ढङ्ग से प्रयोग करते हैं ? यह बात तो निश्चित ही है कि जब तक हम इस शरीर मे जीवित रहते है तब तक हम अपने मस्तिष्क द्वारा ही इस स्मृति को प्रयोग में लाते हैं। परन्तु जीवात्मा जब एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता है तब वह अपने साथ इस पूर्व-मस्तिष्क को इस नये शरीर में नही ले जाता। यही कारण है कि मनुष्य को अपने पूर्व-जीवन की स्मृति नही रहती। इसके अतिरिक्त भला क्या आप अपने इस वर्तमान जीवन मे भी भूतकाल की अपनी सभी क्रियाओं को सदा स्मरण रखते हैं ? क्या कोई भी व्यक्ति अपने शैशव जीवन की—उस विचित्र अवस्था की—सभी बातों को स्मरण रख सकता है ?

यदि आपको सयम (धारणा, ध्यान और समाधि का एकत्र अभ्यास) द्वारा सस्कारों के साक्षात् करने की राजयोग की कला का ज्ञान है तो आप अपने पूर्वकालिक जीवनो को स्मरण कर सकते हैं। महर्षि पतञ्जलि के योगदर्शन मे आप देखेंगे— 'सस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्' (योग सूत्र ३-१८) अर्थात् '(सयम द्वारा) सस्कारो का साक्षात् कर लेने से पूर्व-जन्मों का ज्ञान हो जाता है।' आपने अपने अनेक जन्मो में जो अनुभव प्राप्त किये हैं, वे सब-के-सब आपके अन्त.करण मे अत्यन्त सूक्ष्म रूप मे उसी प्रकार रहते है जैसे कि ग्रामोफोन के रिकार्ड मे ध्वनि सूक्ष्म रूप से रहती है। जब ये सस्कार वृत्ति का रूप धारण करते हैं, तभी आपको भूतकालीन अनुभवों की स्मृति जग पड़ती है। यदि कोई योगी अन्त.करण में स्थित इन भूतकाल के अनुभवों पर सयम कर सकता है तो वह अपने सभी पूर्व-जन्मों का पूर्ण विवरण प्राप्त कर सकता है।

३. पुनर्जन्म — एक नितान्त सत्य (१)

मनुष्य एक ही जन्म में पूर्णता नहीं प्राप्त कर सकता। इसके लिए उसे अपने हृदय, बुद्धि तथा बाहुबल का विकास करना होता है। उसे अपने चरित्र का पूर्ण रीति से गठन करना होता है। दया, तितिक्षा, प्रेम, क्षमा, समदृष्टि तथा साहस आदि विभिन्न सद्‌गुणों का उसे विकास करना होता है। इस विशाल संसार-रूपी पाठशाला में उसे बहुत से पाठ सीखने होते हैं, बहुत से अनुभव प्राप्त करने होते हैं। अतः उसे इस पूर्णता की प्राप्ति के लिए कई जन्म ग्रहण करने पड़ते हैं। पुनर्जन्म का यह सिद्धान्त नितान्त सत्य है। आपका यह लघु जीवन तो आपके सम्मुख तथा पृष्ठभाग में फैले हुए विशाल जीवन-रूपी शृङ्खला की एक कड़ी, एक अंश मात्र है। एक जीवन का तो कुछ भी महत्त्व नहीं। एक जीवन में तो मनुष्य को बहुत ही अल्प अनुभव प्राप्त होते हैं। उसका विकास भी बहुत ही कम हो पाता है। अपने जीवन-काल में मनुष्य अनेक दुष्कर्म करता है; सुकर्म तो वह कम ही करता है। भले मनुष्य के रूप में मरने वालों की सङ्ख्या बहुत ही कम होती है। ईसाई धर्म वाले मानते हैं कि मनुष्य का एक जीवन ही उसका पूर्ण निर्णायक तथा निर्धारक होता है। भला यह क्योंकर सम्भव है? मनुष्य के विशाल तथा असीम भविष्य को उसके एक लघु, अल्प तथा क्षुद्र जीवन पर निर्भर कैसे किया जा सकता है? मनुष्य यदि इस जीवन में ईसा पर विश्वास लाता है तो उसे स्वर्ग में अनन्त सुख-शान्ति प्राप्त होती है; परन्तु यदि वह इस जीवन में ईसा पर विश्वास नहीं लाता तो उसे अनन्त काल तक नरक भोगना पड़ता है। वह सदा के लिए अग्नि-कुण्ड अथवा भयङ्कर नरक में धकेल दिया जाता है। क्या यह सिद्धान्त अन्यायपूर्ण नहीं है? क्या मनुष्य को अपनी भूल सुधारने तथा उन्नति करने का

अवसर नहीं मिलना चाहिए ? पुनर्जन्म का सिद्धान्त इस दृष्टि से बहुत ही न्यायसङ्गत है। यह सिद्धान्त मनुष्य को अपनी भूल सुधारने, उन्नति करने तथा क्रमिक विकास करने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करता है।

४. जीवात्मा का देहान्तर गमन

अंग्रेजी का ट्रांसमाइग्रेशन (*Transmigration*) शब्द का अर्थ है एक जीवन से दूसरे जीवन में गति। चार्वाक तथा भौतिकवादियों के अपवाद के अतिरिक्त भारतीय दर्शन की प्रायः सभी शाखाओं का मुख्य तथा मौलिक सिद्धान्त है—आत्मा की अमरता में उनका विश्वास। पूर्णता की प्राप्ति के लिए जीव अनेक जन्मों से गुजरता है। इसी को विशिष्ट पारिभाषिक शब्दों में 'जीवात्मा का देहान्तर गमन' कहते हैं।

पुनर्जन्म अथवा जीव के आवागमन का यह सिद्धान्त आदिकाल से ही चला आ रहा है। यह विश्वास उतना ही पुरातन है जितना कि आदिम मानव। जीवात्मा की अविनश्वरता तथा मृत्यु के अनन्तर भी प्रकारान्तर से उसकी विद्यमानता—यह एक ऐसा सिद्धान्त है जो मृत्यु के रहस्य को सुलझाता है तथा मृत्यु-विषयक विचार को आश्वस्त करता है। भारत के प्राचीन आर्यों ने युग-युगान्तरव्यापी मानव-दुःख की समस्या का इसमें समाधान पाया और उन्होंने इसे एक विशेष धार्मिक सिद्धान्त के रूप में वरण किया।

जीवात्मा के आवागमन का प्रयोजन न तो उसे पुरस्कृत करने के लिए है और न उसे दण्ड देने के लिए ही; वरन् यह तो उसकी भलाई और पूर्णता के लिए है। यह मानव-जाति को उसके अन्तिम लक्ष्य के साक्षात्कार के लिए तैयार करता है, जिससे कि मनुष्य जन्म-मरण के चक्र से सदा के लिए मुक्त

हो जाता है। जीवन की विपुलता के अभाव में इस पूर्णता तथा पूर्ण स्वतन्त्रता को प्राप्त करना मनुष्य के लिए सम्भव न हो पाता।

मनुष्य अपने विविध जन्मों में अपने संस्कारों एवं गुणों का विकास करता है तथा अन्तिम एक जन्म में वह एक असाधारण मेधावी बनता है। बुद्ध अपने पूर्वगामी अनेक जन्मों में भिन्न-भिन्न अनुभव प्राप्त करते रहे थे। वे केवल अपने अन्तिम जन्म में ही बुद्ध बने। सभी सद्‌गुणों का विकास एक जन्म में नहीं किया जा सकता। क्रमिक उन्नति के द्वारा ही मनुष्य सद्‌गुणों का विकास कर सकता है। मनुष्य का नन्हा बच्चा स्तन-पान करता है और छोटा बत्तख जल में तैरता है। इसकी शिक्षा उन्हें किसने दी ? ये उनके पूर्व-जन्मों के संस्कार हैं।

शान्ति देवी आदि बच्चों के ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं, जिन्होंने अपने पूर्व-जीवन के सम्बन्ध में पूर्ण विवरण प्रस्तुत किये। उनकी बतलायी हुई बातों की पूर्ण रूप से पुष्टि भी हो चुकी है। इन बच्चों ने तो अपने उन घरों के ठीक-ठीक पते भी बतलाये जिनमें कि वे अपने पूर्व-जीवन में रह रहे थे

आत्मा, प्रतीकार, पुनर्जन्म तथा दिव्यता आदि के सिद्धान्त महान् दार्शनिक प्लेटो (अफलातून) को भी मान्य थे। पायथागोरस भी लोगों में पुनर्जन्म के सिद्धान्त की शिक्षा देते थे। इसी प्रकार भगवान् बुद्ध ने भी पुनर्जन्म की शिक्षा दी थी।

प्राचीन मिश्र देशवासी अपने मृत व्यक्ति के शव को मसाले लगाते और तत्पश्चात् उन्हें अपनी सामर्थ्यानुसार सर्वोत्तम कब्र में दफन करते थे। उनकी मान्यतानुसार मृत व्यक्ति के दो

आत्मा होते थे। उनमें से एक आत्मा तो, जब तक शव नष्ट न हो जाता तब तक कब्र में ही रूका रहता था और दूसरा आत्मा अमर देवों से प्रवेश-पत्र प्राप्त करनेके लिए अग्रसर होता था। एक अलौकिक न्यायाधीश इस आत्मा के विषय में आवश्यक सूचनाएँ देता था। उस आत्मा के गुण-दोष तथा प्रारब्ध के विषय मे उस न्यायाधीश के विचार ही अन्तिम माने जाते थे। जो-कुछ भी हो -- मिश्र के पुरोहित पुनर्जन्म के सिद्धान्त को किसी-न किसी अप्रकट रूप मे अङ्गीकार करते थे।

यह मानव-शरीर तो अविनाशी आत्मा का एक परिधान मात्र है अथवा उसका निवास-स्थान है। अपना विकास साधने तथा दैवी योजना एवं उद्देश्य के पूर्वापेक्षा अधिक सुचारु रूपेण साक्षात्कार करने के लिए निश्चय ही जीवात्मा दूसरे स्थान मे निवास कर सकता है अथवा नये वस्त्र धारण कर सकता है। विश्व-स्रष्टा ने ऐसी ही योजना परिकल्पित की है। पतित एव अधम मानव के आत्मा को नयी प्रकार की शिक्षा देने के लिए दूसरे शरीर में डाला जाता है। सभी प्राणियो का विकास उनके भले के लिए ही होता है। सामान्यत: प्रकृति का नियम एवं सिद्धान्त है उत्थान, न कि पतन, परन्तु इस सामान्य नियम के अपवाद भी पाये जाते है।

अपने पूर्व-जीवन-काल मे जीवात्मा ने जो थोड़े गुण एव दिव्यता को प्राप्त किया है, उनसे सुसज्जित हो कर वह अपने इन गुणों को मूल पूंजी में वृद्धि करने, उन्हे विकसित करने तथा उनमे सुधार करने के लिए नये जीवन मे प्रवेश करता है। आत्मा द्वारा नियन्त्रित इस देह मे ईश्वर तथा सत्यता, पवित्रता आदि ईश्वरीय गुणों की ग्राहक-शक्ति अब कही अधिक होती है।

जो पापी जीव हैं, उन्हें अपने पाश्चात्य जन्मों में अपने को सुधारने का अवसर नहीं प्रदान किया जाता है तथा मनुष्य के सीमित पाप, यदि वे किसी प्रकार दूर न किये गये तो मृत्यु होने पर उसे अनन्त दुःखों में धकेल देते हैं। ऐसा कदापि नहीं हो सकता। यह बात विचार-सङ्गत नहीं है। पुनर्जन्म का सिद्धान्त पापी जीवों को भावी जन्मों में अपने को सुधारने तथा शिक्षित करने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करता है। वेदान्त कहता है कि अत्यन्त पापी के लिए भी मोक्ष की आशा है।

पापी जीव अपने दुष्कर्मों का फल एक निश्चित काल तक भोगते हैं। जब वे उन पापों से मुक्त हो जाते हैं तब वे पुनः वुद्धिशील प्राणी के रूप में जन्म ग्रहण करते हैं और इस भाँति उन्हें मुक्ति-साधन के लिए एक नया अवसर प्रदान किया जाता है, जिसमें उन्हें सन्मार्ग तथा कुमार्ग के मध्य चुनाव करने की इच्छा-स्वातन्त्र्य तथा भले-वुरे का अन्तर वतलाने वाला विवेक भी प्राप्त रहता है।

आप अपने सुख-दुःख के, अपने निजी कर्मों के कारण स्वयं ही उत्तरदायी हैं। प्रत्येक व्यक्ति के चरित्र में विभेद का होना, भिन्न-भिन्न संस्कार जो वालकों के जन्म-समय में देखने में आते हैं तथा मानव-जाति के अन्दर वर्त्तमान जो विषमता—इन सबके कारण का निर्देश तथा उनका स्पष्टीकरण एकमात्र कर्म के सिद्धान्त द्वारा ही किया जा सकता है। कर्म का सिद्धान्त मनुष्य को उसके पूर्ण विकास के लिए स्वतन्त्रता एवं छूट प्रदान करता है।

मनुष्य का प्रतिविम्ब एक दर्पण में पड़ता है। मनुष्य की कोई अपनी वस्तु उसके शरीर से निकल कर इस प्रतिविम्ब में नहीं जाती। यह प्रतिविम्ब स्वयं वह मनुष्य तो नहीं है; परन्तु

उससे यह भिन्न भी नही है। पुनर्जन्म भी ठीक इसी प्रकार घटित होता है। नया जन्म प्रतिविम्ब के सदृश्य है और नये जन्म का हेतु जो कर्म है वह दर्पण के तुल्य है, इसके माध्यम से ही मनुष्य की छाया नये जन्म मे प्रतिविम्बित होती है।

योगियों तथा ऋषियों की ज्ञान-प्रभा का, उनके जीवन तथा उपदेशों का नये जीवन में अधिक निखार होता है। ईश्वरीय ज्योति की खोज बढ जाती है तथा ईश्वर की ओर का आकर्षण अधिक दृढ होता जाता है। जीवन ईश्वर के साक्षात्कार करने तथा उसकी वाणी सुनने के लिए और अधिक उपयुक्त बन जाता है। इस भाँति प्रगति एक सत्ता से दूसरी सत्ता की ओर आगे-आगे ही बढ़ती रहती है। यद्यपि हम यह नही कह सकते कि इसके लिए कितने जन्मों की आवश्यकता होती है; परन्तु जब तक पूर्णता की अन्तिम तथा निष्कलङ्क अवस्था की प्राप्ति नही होती तथा जब तक जीवात्मा का परमात्मा में विलय नही हो जाता, तब तक यह प्रगति सतत चालू रहती है।

मैं कहाँ से आया? मुझे कहाँ जाना है? प्रत्येक बुद्धिमान् मनुष्य ऐसे प्रश्न करता है। ये जीवन-सम्बन्धी समस्याएँ है। आपका यह वर्त्तमान जन्म तो आपके असङ्ख्य जन्मों मे से एक है। हाँ, वे सभी जन्म मनुष्य-योनि मे हुए हों, यह आवश्यक नही।

जीवात्मा का किसी देह-विशेष के साथ योग होना जन्म कहलाता है और उससे उसका वियोग हो जाना ही मृत्यु कहलाती है। जब जीवात्मा अपने भौतिक शरीर का परित्याग कर देता है, तब वह दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाता है। अपने गुणों के अनुसार उसे जो यह नया शरीर प्राप्त होता है, वह मनुष्य, पशु अथवा वनस्पति-वर्ग का हो सकता है। कठोपनिषद्

बताती है—"हे नचिकेता ! मृत्यु के अनन्तर जीवात्मा किस प्रकार रहता है, इस विषय का जो शाश्वत एवं दिव्य रहस्य है उसे अब मैं तुम्हें बतलाता हूँ। कितने ही जीवात्मा तो दूसरा शरीर धारण करते हैं, और कितने ही जीवात्मा वनस्पति जैसी अधम योनियों में जा पड़ते हैं। इस विषय में उन जीवात्माओं के कर्म तथा भाव ही कारणभूत हैं।"

(कठोपनिषद् : २-२-६ ,७)

जब तक जीव अपने सम्पूर्ण दोषों से मुक्त होकर तथा योग द्वारा अविनाशी ब्रह्म का सच्चा तथा पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष नहीं प्राप्त कर लेता है अथवा जब तक वह परब्रह्म से योग प्राप्त कर पूर्ण अचिरानन्द का उपभोग नहीं करता तब तक जन्म-मरण का यह प्रवाह सतत गतिशील रहता है।

भारतीय दर्शन के अनुसार इस स्थूल शरीर के अन्दर एक सूक्ष्म शरीर होता है, यह सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर के विनष्ट होने पर विनष्ट नहीं होता, वरन् वह अपने इहलौकिक पुण्य कर्मों के फलोपभोग के लिए स्वर्ग को जाता है। जीव के मुक्त होने पर ही वह नष्ट होता है। संस्कार एवं वासनाएँ इस सूक्ष्म शरीर के साथ भी जाती हैं।

यहाँ वामदेव, ज्ञानदेव, दत्तात्रेय, अष्टावक्र शङ्कराचार्य आदि जैसे कितने ही ऐसे भाग्यशाली आत्मा देखने में आते हैं, जिन्होंने इस संसार में प्रथम बार प्रवेश करते ही, मृत्यु से पूर्व अपने जीवन-काल में ही उच्च कोटि की पूर्णता प्राप्त कर ली थी। ये सब जन्मजात सिद्ध थे। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे जीवात्मा होते हैं जिन्हें अशेष पूर्णता की प्राप्ति करने तथा मोक्ष-लाभ करने के लिए कुछ और अधिक जन्म-ग्रहण करने की आवश्यकता रहती है।

भला जीवात्मा भले शरीर का निर्माण करता है और

जीवात्मा बुरे शरीर का। जीवात्मा के ईश्वर की ओर प्रगति करने में शरीर उसका एक अपरिहार्य साधन है। जीव को प्रगति-पथ पर उन्नयन करने के लिए ही भगवान् ने इस शरीर की रचना की। पेट्रोल तथा वाष्प में महान् शक्ति है; परन्तु वे स्वयं अकेले एक निश्चित पथ से किसी निश्चित लक्ष्य तक नहीं जा सकते। इसके लिए उन्हें किसी यन्त्र, रेलगाड़ी अथवा जल-पोत का आश्रय लेना पड़ता है। विमान-वाहक अथवा यन्त्र-चालक पेट्रोल अथवा वाष्प को अपने परिवहन में डालता है और तब उसे अपने निर्दिष्ट स्थान की ओर चलाता है। अतः जीवात्मा को भी अपने मार्ग को तय करने और अपने परमात्मा तक पहुँचने के लिए एक शरीर का रखना अनिवार्य है।

ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जाने पर जीवात्मा का आवागमन नहीं रह जाता। प्रकृति माता का काम तब समाप्त हो जाता है। प्रकृति जीवात्मा को इस संसार के सभी अनुभव प्राप्त कराती है और जब तक जीवात्मा अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं प्राप्त कर लेता तथा जब तक वह परब्रह्म में लीन नहीं हो जाता, तब तक वह उसे अनेकानेक शरीरों द्वारा अधिकाधिक ऊँचाइयों की ओर ले जाती है।

आध्यात्मिक-संस्कार-सृजन तथा व्यावहारिक योग की अविराम साधना द्वारा अपने जीवन को श्रेष्टतर बनाने का प्रयास प्रत्येक सम्भव उपाय से करते रहें। एकमात्र ब्रह्मज्ञान के द्वारा ही आप इस जन्म-मरण के कष्ट से मुक्त हो सकते हैं।

५. पुनर्जन्म-वाद

मनुष्य की तुलना एक पौदे से की जा सकती है। पौदे की तरह ही वह उत्पन्न होता तथा विकसित होता है और अन्त में मर जाता है; परन्तु वह पूर्णतः मरता नहीं। पौदा भी उगता

और बढ़ता है तथा अन्त में मर जाता है। वह पौदा अपने पीछे ऐसे बीज छोड़ जाता है जो कि नये पौदे उत्पन्न करता है। इसी भाँति मनुष्य भी जब मरता है तब वह अपने भले तथा बुरे कर्मों को पीछे छोड़ जाता है। मनुष्य का स्थूल शरीर भले ही मृत्यु को प्राप्त होता और नष्ट हो जाता है; परन्तु उसके कर्मों के संस्कार नष्ट नहीं होते। इन कर्मों का फल भोगने के लिए उसे पुनः जन्म लेना पड़ता है। कोई भी जीवन प्रथमजात नहीं हो सकता; क्योंकि वह पूर्व-कर्म का परिणाम होता है। इसी प्रकार कोई जीवन अन्तिम भी नहीं हो सकता; क्योंकि उस जीवन के कर्मों का शोधन उससे आगामी जीवन में होता है। यह दृश्यमय अस्थिर जगत् आदि-अन्त-रहित है। परन्तु जो अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में स्थित हैं, उन जीवन्मुक्तों के लिए इस संसार की कोई सत्ता नहीं।

मनुष्य जब मरता है तब वह अपनी साथ अपनी चिरस्थायी लिङ्ग देह को ले जाता है। यह लिङ्ग-शरीर पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पञ्च प्राण, मन, बुद्धि, चित्त तथा अहङ्कार, परिवर्त्तनशील कर्माशय और जीव के कर्म—इन सबसे बना हुआ होता है। यह सूक्ष्म शरीर ही आगामी नये शरीर का निर्माण करता है।

आलन्दी के भूतपूर्व सुप्रसिद्ध योगिराज ज्ञानदेव जी जब चौदह वर्ष की वय के थे—तब उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता पर ज्ञानेश्वरी नाम की टीका लिखी। वे जन्मजात सिद्ध योगी थे। यदि आप उचित रीति से सम्यक् प्रयास करें तो आप भी उन्हीं की तरह सिद्ध पुरुष बन सकते हैं। जिस स्थिति को एक व्यक्ति ने प्राप्त किया हो उस स्थिति को अन्य व्यक्ति भी प्राप्त कर सकता है।

एक नवजात शिशु, जिसने अपने इस जीवन में कोई भी

अनिष्ट कर्म नहीं किया, यदि अत्यन्त कष्ट से पीड़ित हो रहा है तो निश्चय ही यह उस बालक के पूर्व-जन्म में किये हुए दुष्कर्म का परिणाम है। इस पर यदि आप यह प्रश्न करें कि वह व्यक्ति अपने गत जीवन में पाप कर्म करने के लिए क्योंकर प्रवृत्त हुआ तो उसका उत्तर यह है कि यह उससे पूर्व के जन्म में किये हुए दुष्कर्म का परिणाम है और इस भांति यह क्रम निरन्तर आगे बढ़ता जाता है।

बहुत से बुद्धिशाली व्यक्तियों के मुर्ख पुत्र होते हुए पाये जाते हैं। पूर्वजन्म में जब आप क्षुधा से मृतप्राय हो रहे हों, उस समय यदि भेडों के एक चरवाहे ने आपको अन्न-जल दिया हो तो वह चरवाहा आपकी सम्पत्ति का उपभोग करने के लिए इस जीवन में अपनी अल्प बुद्धि के साथ ही आपके पुत्र के रूप में आपके यहाँ जन्म ग्रहण करेगा।

प्राणी जब जन्म लेता है तब तुरन्त ही उसे अपनी माँ के स्तन-पान की इच्छा जाग्रत हो जाती है तथा उसमें भय का सहज-ज्ञान भी दिखायी देता है। इससे सहज ही यह निष्कर्ष निकलता है कि उसे अपने पूर्व-जन्म में अनुभव किये हुए कष्ट की तथा माँ के स्तन-पान की क्रिया का स्मरण होता है। इससे यह प्रकट होता है कि 'पुनर्जन्म है।'

एक नन्हे से बालक में भी हर्ष, शोक, भय, क्रोध, सुख, दुःख आदि की वृत्तियाँ देखी जाती हैं। इसका कारण उसके वर्तमान जीवन के धर्माधर्म के संस्कार नहीं हो सकते। इससे हम सहज ही यह परिणाम निकाल सकते हैं कि जीव पूर्वजन्म में विद्यमान था और यह भी कि वह अनादि है। यदि आप जीव को अनादि स्वीकार नहीं करते तो उस अवस्था में दो दोष उपस्थित होंगे : एक तो कृतनाश दोष और दूसरा अकृताभ्यागम दोष। पूर्वजन्म कृत शुभाशुभ कर्मों के परिणाम स्वरूप

ही जीव को सुख-दुःख प्राप्त होते हैं। वे कर्म यदि अपना फल दिये विना ही समाप्त हो जायँ तो किये हुए कर्म (कृत) का नाश होगा। यह कृतनाश दोप होगा। इसी भाँति जिन शुभाशुभ कर्मों को जीवात्मा ने पूर्वजन्म में किया ही नहीं, उनके फलस्वरूप प्राप्त सुख-दुःख उसे भोगना पड़ेगा। यह अकृताभ्यागम दोप है। इन दोनों दोपों से वचने के लिए यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जीव अनादि है।

योग के कितने ही साधक मुझसे यह प्रश्न करते हैं कि कुण्डलिनी-जागरण के लिए एक योगी को कितने काल तक शीर्पासन, पश्चिमोत्तानासन, कुम्भक अथवा महामुद्रा आदि का अभ्यास करना चाहिए? योग के किसी भी ग्रन्थ में इसका उल्लेख नहीं पाया जाता। एक साधक अपने जीवन में साधना का प्रारम्भ वहाँ से करता है, जहाँ पर कि उसने अपने गत जीवन में उसे छोड़ी थी। यही कारण है कि भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं: "हे कुरुनन्दन! अथवा उसका जन्म बुद्धिमान् योगियों के कुल में होता है। वहाँ वह अपने पूर्व-जन्म की बुद्धि के संस्कारों को प्राप्त करता है और उसके अनन्तर फिर योगसिद्धि के लिए प्रयत्न करता है।" (गीता: ६-४२,४३) यह सव व्यक्ति की शुद्धि की मात्रा, विकास की दशा, नाड़ी-शुद्धि की कक्षा, प्राणायाम, वैराग्य की स्थिति तथा मोक्ष के लिए व्याकुलता पर निर्भर करता है।

कितने ही व्यक्ति आत्म-साक्षात्कार के लिए आवश्यक शुद्धि तथा अन्य साधनों से सम्पन्न होकर जन्म लेते हैं; क्योंकि उन्होंने अपने पूर्व-जीवन में ही आवश्यक अनुशासन का पालन किया होता है। वे जन्मजात सिद्ध होते हैं। गुरु नानक, आलन्दी के ज्ञानदेव, वामदेव तथा अष्टावक्र—ये सभी वाल्यावस्था में ही दक्ष थे। गुरु नानक जी, जव एक वालक ही थे तभी उन्होंने

पाठशाला में अपने अध्यापक से ॐ के महत्त्व के विषय में प्रश्न किया था। श्री वामदेव जी जब माँ के उदर में थे तभी उन्होंने वेदान्त पर प्रवचन किया।

मनुष्य फल-प्राप्ति की इच्छा से कर्म करता है और इस कारण वह नया जन्म लेता है जिससे कि वह अपने कर्म के फल का उपभोग कर सके। उसके पश्चात् जन्म में वह कुछ और अधिक नये कर्म करता है और उसे उनके लिए पुनः दूसरा जन्म लेना पड़ता है। इस भाँति जन्म-मरण का यह संसार-चक्र अनादि काल से अनन्त काल तक चलता रहता है। जब मनुष्य को आत्मज्ञान हो जाता है तभी वह इस जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होता है। कर्म अनादि है और इसी भाँति यह संसार भी अनादि है। मनुष्य जब कर्मफल की आशा से मुक्त हो निष्काम भाव से कर्म करता है तब उसके सभी कर्म-बन्धन शनैः शनैः ढीले पड जाते हैं।

जीने के लिए मर मिटिए। इस छोटे से अहं को विनष्ट कीजिए, इससे आप अमरत्व प्राप्त करेंगे। ब्रह्म में निवास कीजिए, इससे आप अजर-अमर बन जायेंगे। आत्मा को प्राप्त कीजिए, इससे आप शाश्वत जीवन प्राप्त करेंगे। आत्म-भाव को प्राप्त कीजिए, इससे आप ससार-सागर का संतरण कर जायेंगे। अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में स्थित हो, इससे आपको चिरन्तन जीवन प्राप्त होगा।

एक जोंक घास के डण्ठल पर चलती है और उसके छोर पर जा पहुँचती है। अब वह पहले तो अपने शरीर के अगले भाग से दूसरे डण्ठल को पकड़ लेती है और तब अपने पिछले अङ्ग को खींच कर नये डण्ठल पर लाती है। ठीक इसी [illegible] जीवात्मा भी मृत्यु के समय वर्तमान शरीर [illegible]

अपनी भावनाओं द्वारा नये शरीर की रचना करता है और तब वह उसमें प्रवेश कर जाता है।

शुभ और अशुभ कर्म अपने शुभाशुभ फल को अवश्य प्रदान करते हैं। महाभारत में आप देखेंगे, 'जिस भाँति सहस्रों गायों के मध्य में बछड़ा अपनी माँ को ढूँढ़ लेता है, उसी भाँति पूर्व-जन्म-कृत-कर्म अपने कर्त्ता का अनुसरण करते हैं।'

"यादृशं क्रियते कर्म, तादृशं भुज्यते फलम्।
यादृशं वप्यते बीजं तादृशं प्राप्यते फलम्॥"

जिस प्रकार का बीज बोया जाता है तदनुरूप ही फल प्राप्त होता है। इसी भाँति हमारे किये हुए कर्म का फल हमारे किये हुए कर्म के अनुरूप ही होता है। यह प्रकृति का अकाट्य नियम है। आम के वृक्ष का रोपण करने वाला व्यक्ति कटहल के फल की आशा नहीं कर सकता। जिस व्यक्ति ने आजीवन दुष्कर्म ही किया है, वह अपने अगले जीवन में सुख, शान्ति और समृद्धि की आशा नहीं रख सकता।

हमारे जीवन में ऐसे अनेक प्रसङ्ग आये हैं जबकि हम सब भूतकाल में कई बार इकट्ठे रहे और अलग हुए। भविष्य में भी ऐसे प्रसङ्ग आते रहेंगे। जिस भाँति अन्न-राशि को एक अन्नागार से निकाल कर दूसरे अन्नागार में डालने पर उसका गठन और मिश्रण सदा नवीन रूप धारण करता है, ऐसी ही अवस्था इस जीव की इस संसार में है।

६. पुनर्जन्म—एक नितान्त सत्य (२)

गीतामूर्त्ति के नाम से प्रसिद्ध श्री कमलेश कुमारी देवी ने अपने ढाई वर्ष की वय में ही गीता पर प्रवचन करना आरम्भ कर दिया था। सन् १९३९ के दिसम्बर मास की १२ तारीख

को मङ्गलवार के दिन उसका जन्म हुआ। जीवात्मा के आवा-गमन तथा जीव की अमरता का अभिलेख यद्यपि हमारे शास्त्रों में पाया जाता है, परन्तु वे हमारे व्यावहारिक जीवन में सुप्त एवं अव्यक्त से होते हैं।

वह अपने पिता की गोद में बैठ कर अपनी टूटी-फूटी तोतली भाषा में गीता के श्लोकों का उच्चारण करती थी। वह गीता की पुस्तक की ओर देखती भी रहती थी। जब वह ढाई वर्ष की हुई तो एक दिन उसके पिता पण्डित देवीदत्त जी उसे अमृतसर के लोहगढ दरवाजे के बाहर स्थित एक बाग में ले गये। उन दिनों स्वामी कृष्णानन्द जी यहाँ पर गीता पर प्रवचन करते थे। स्वामी जी ने इलाहाबाद की एक अष्ट-वर्षीया बालिका की कहानी सुनायी जो कि गीता के श्लोकों का बहुत ही सुन्दर पाठ करती थी। इसे सुनते ही कमलेश कुमारी कुछ उत्साहित हुई और उसने स्वामी जी तथा श्रोताओं से गीता पर अपना प्रवचन सुनने का आग्रह किया। उसने उस दिन अपना प्रथम भाषण दिया जिसका वहाँ पर उपस्थित जनता पर बहुत ही गम्भीर प्रभाव पडा।

स्वामी कृष्णानन्द जी ने उसे हिन्दू धर्म की कुछ पुस्तकें भेंट की। उसने उन पुस्तकों के कुछ अंश को धारावाहिक रूप से पढ कर स्वामी जी को आश्चर्य में डाल दिया। इस घटना के अनन्तर उस बालिका ने हरिद्वार लुधियाना, जडियाला, गुरु हर सहाय मण्डी, मुकेरियाँ, धर्मकोट, गुजरावाला तथा अन्य स्थानों में प्रवचन किया।

एक दूसरी बालिका महेन्द्रा कुमारी हुई। उसका एक दूसरा नाम चाँदरानी भी था। उसकी मृत्यु १५-१०-१९३९ को बर्मा के टांगु शहर में हुई और मई १९४९ में उसने पुनः जन्म लिया। जब वह साढे तीन वर्ष की हुई तब वह अपने इस जन्म

की माता पर अपने पहले जीवन के माता-पिता के घर ले चलने के लिए जोर देने लगी। वह वार-वार अपनी माँ से आग्रह करती और उससे नित्य-प्रति ही अपने असली घर जाने और वास्तविक भाभी से मिलने के लिए अपने साथ चलने की याचना करती। यह ठीक ही कहा है कि हठ की विजय होती है और इस प्रसङ्ग में तो यह पूर्ण रूप से सच सिद्ध हुआ। अन्त में माँ ने स्वीकार कर लिया। वालिका मार्ग दिखलाते हुए आगे थी और माँ उसके पीछे। दोनों एक अज्ञात स्थान की ओर चल पड़े। उस वालिका ने अपनी माँ को अमृतसर के मुश्की मुहल्ले से ले जा कर विभिन्न गलियों और अन्धकार-पूर्ण मोड़ों से होते हुए कूचा वेरीवाला मुहल्ले के अन्त में एक घर के सामने खड़ा कर दिया और कहने लगी, "यह मेरा घर है।" दरवाजे के खटखटाने की आवाज सुन कर जब उस वालिका की पूर्वजन्म की भाभी साथ वाले घर से आ गयी तब उस वालिका ने अपनी जहाई (भाभी) को पहचान लिया और उसका आलिङ्गन करते हुए उसके पैरों से चिपट गयी। उसने उसके वीस वर्षीय पुत्र शिव को, दूसरे सगे सम्वन्धियों को तथा घर की वस्तुओं को पहचान लिया। उसने अपने स्वर्ण-हार तथा मृत शरीर का फोटो भी पहचाना और वतलाया कि चित्र में वह ही सोयी हुई है। मृत्यु के समय उसके मन में अपने भाई सरदार सुन्दर सिंह तथा उनकी पत्नी से मिलने की तीव्र वासना थी। वे उस समय वहाँ उपस्थित न थे। वर्मा में शरीर त्याग करते समय की इस दृढ़ वासना के कारण ही कदाचित् उस वालिका को अपने भाई और भाभी से मिलने के लिए अमृतसर में पुनः जन्म लेना पड़ा।

वड़ौदा का एक जैन वालक (स्टेट्समैन ५-६-३७)—वड़ौदा के छः वर्षीय एक जैन वालक ने अपने पूर्व-जीवन की कितनी

ही घटनाओं को सुना कर अपनी माता को आश्चर्यचकित कर दिया। उसने बतलाया कि वह पूर्वजन्म में अपने माता-पिता के पास पाटन में रहता था। उसके माता-पिता पाटननगर के निवासी थे। उस समय उसका नाम केवलचन्द्र था और वह पूना में कपड़े की दूकान करता था। पाटन के कितने ही व्यापारियों के साथ उसका व्यावसायिक सम्बन्ध था। उसके छः पुत्र थे जिनमें से एक का नाम रमणलाल था। जब वह बालक और उसकी माता पाटन गये तब ये सभी बातें ठीक प्रमाणित हुईं।

गुरु नानक देव ने गुरु ग्रन्थ साहब में पुनर्जन्म के इस सिद्धान्त की पुष्टि की है। यही नहीं यूनान के दो प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता सुकरात और प्लेटो (अफलातून) भी इस सिद्धान्त का अनुमोदन करते थे। इनका जन्म आजसे लगभग २५०० वर्ष पूर्व हुआ था।

"अपने जन्म लेने से पूर्व जो बातें हम सीखे होते हैं, उनकी स्मृति ही हमारा यह वर्त्तमान ज्ञान है।" (प्लेटो का स्मृति-ज्ञान का सिद्धान्त)

'जब हम जन्म लेते हैं, उससे पूर्व ही हमें सम्पूर्ण विषयों का अपना ज्ञान प्राप्त हुआ होता है।" "मानवी आकृति में आने से पूर्व हमारी जीवात्माएँ हमारे इस शरीर से अलग अपना अस्तित्व रखती हैं। उनमे ज्ञान भी होता है।"

(सुकरात का दर्शन)

यह शरीर जीवात्मा के अलग होने पर मर जाता है; परन्तु जीवात्मा स्वयं नही मरता। इस विषय मे हमे यह ज्ञात है कि यदि एक व्यक्ति किसी काम को अधूरा ही छोड़ कर सो जाता है और जब वह जागता है तब वह स्मरण करता है कि अमुक काम को उसने अधूरा ही छोड दिया था। इसी भाँति हम यह

भी देखते हैं कि प्राणी जब जन्म लेता है, तब जन्म लेने के साथ ही उसे अपनी माँ के स्तन-पान की इच्छा जाग्रत होती है और उसमें भय की भावना भी पायी जाती है। इससे सहज ही यह निष्कर्ष निकलता है कि उसे अपने पूर्व-जन्म में अनुभूत किये हुए कष्टों की तथा माँ के स्तन-पान की क्रिया की स्मृति होती है।

७. निम्न-योनियों में फिर से जन्म

ऐसा देखने में आया है कि अधिकांश जीवात्माओं को निम्न-योनियों में जन्म लेना साधारणतया रुचिकर नहीं। इसका मुख्य कारण यह है कि अपने गत मानव-जीवन में वे अपने शरीर से बहुत से शुभ कर्म किये होते हैं। कोई भी मानव शैतान का पूरा-पूरा अवतार नहीं होता। कुछ विशेष प्रकार के शुभ गुण तथा कर्म जो कि वास्तव में शुभ गुणों के परिणाम होते हैं सारे दुर्गुणों और दुष्कर्मों से ऊपर उठ जाते हैं और इस भाँति मानवप्राणी जीवात्मा के भावी विकास के लिए अपनी ही जाति में से किसी एक ऊँच अथवा नीच जीवन में प्रवेश करता है।

एक मानवजात आत्मा को गीदड़ अथवा शूकर जैसी निम्न-योनि में जन्म लेना पड़े ऐसे उदाहरण बहुत ही कम देखने में आते हैं। इस स्थूल जगत् में ही हम देखते हैं कि एक मनुष्य की हत्या करने वाले खूनी व्यक्ति को फाँसी के तख्ते पर ले जाने तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। ऐसी अवस्था में भी हम धर्म-शास्त्रों में लिखी हुई बातों की सत्यता का निषेध नहीं कर सकते हैं, यद्यपि यह हो सकता है कि उनमें से कुछेक रूपक हों और उनके लिखने का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को बुरे कर्म से अच्छे कर्म की ओर मोड़ना रहा हो।

प्रत्येक जीवात्मा का भावी जन्म उसके भूतकाल के कर्मों का ही परिणाम होता है और इसके निर्णय में कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण काम करते हैं। यह कार्य-कारण का नियम, घात-प्रतिघात का नियम कर्म के विषय में भी लागू होता है। सामान्य रीति से मनुष्य का विकास ऊपर की ओर होता है। प्राणी को उसकी विकास-कक्षा से अधिकाधिक ऊपर की ओर ले जाना विकास का स्वभाव ही है। यह प्राकृतिक जीव-शास्त्र का नियम है; परन्तु इसके कुछ अपवाद भी पाये जाते हैं। यदि एक व्यक्ति मे आसुरी गुण हैं और वह बहुत ही क्रूर कर्म करता है, यदि वह कुत्ते, गधे अथवा बन्दर जैसा वर्ताव करता है, तो वह अपने भविष्य जीवन मे निश्चय ही मनुष्य-जन्म का अधिकारी नही होगा। वह पशु-योनियों मे जन्म लेगा। परन्तु ऐसी बातें वास्तव में बहुत ही कम होती हैं।

यदि मनुष्य घोर पाप करता है तो उसके इस मनुष्य-शरीर में रहते हुए ही उसे अधिक-से-अधिक दण्ड दिया जा सकता है। इसके लिए मनुष्य को पशुयोनि में जन्म लेना आवश्यक नही है। मनुष्य जब अपने मानव-शरीर में रहता है तब वह अपने किये हुये पापो के कारण जितना दुःख अनुभव करता है उतना दुःख वह पशु-योनि में जन्म लेने से नही अनुभव करता है। कुष्ठ, क्षय, गर्मी, सुजाक आदि रोगों से मनुष्य को जो पीड़ा होती है, वह वर्णनातीत है।

यह नियम कितनी कठोर रीति से काम करता है, इसे निम्नाङ्कित घटना बहुत ही प्रभावकारी ढङ्ग से उपस्थित करती है। यह घटना असामान्य होने के साथ-साथ बहुत रोचक भी है। ढेका के कविराज (वैद्य) महेन्द्रनाथ सेन के यहाँ १८ अथवा

१९ वर्ष के तारक नाम के एक कम्पाउण्डर थे। उनके इतना जोरों से उदरशूल उठता था कि उससे वे अचेत हो जाते थे। एक दिन श्रीविद्या के परम्परागत उपासक एक ब्राह्मण ने करुणाभिभूत हो तारक के भाल में सिंदूर का टीका लगाया और मन्त्र पढ़ कर उसने काली माँ से प्रार्थना की तथा यह प्रश्न किया, "माँ, यह तारक इतना कष्ट क्यों भोग रहा है ?"

तारक ने अचेतावस्था में ही गर्जकर कहा, "मैं माँ काली का एक अंश हूँ। क्या मैं तारक को दण्ड न दूँ ? इस तारक ने अपने पिछले जीवन में अपनी माता का अपमान किया था। इसकी माता ने भी तारक के पिता को, जो कि उसका अपना ही पति था, पैरों से ठुकराया था। इस भाँति माँ और पुत्र दोनों को सात जन्म तक दण्ड भोगना पड़ेगा, जिसमें तारक को तो भयङ्कर उदरशूल का कष्ट होगा और उसकी माँ विवाह के चौदह दिन के पश्चात् विधवा हो जायगी। ये दोनों अब तक चार जन्म का कष्ट भोग चुके हैं और तीन जन्मों का कष्ट भोगना अभी शेप है।"

दयालु ब्राह्मण ने प्रश्न किया, 'माँ, उसके उद्धार का क्या कोई उपाय नहीं है ?"

तारक ने अचेतावस्था में उत्तर दिया, "तारक को अपनी माँ का पादोदक और उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करना चाहिए। इस भाँति यदि उसकी माँ उसे औषधि प्रदान करे तो वह इस जन्म में ही स्वस्थ हो सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।"

यह पूछने पर कि तारक की माँ कहाँ है, तारक ने अचेतावस्था में ही उत्तर दिया, "गोपाल सेन की विधवा पत्नी तारक की माँ है।"

इसके अनन्तर तारक को चेतना प्राप्त हुई। ब्राह्मण से सब

बातें सुनी और उसके आदेश का पालन किया। तारक की पूर्वजन्म की माता ने उसे ताम्बूल का एक टुकड़ा दिया जिसे तारक ने ताबीज में रख कर पहन लिया। इससे तारक तुरन्त ही ठीक हो गया।

दूसरे वर्ष वही रोग फिर वापस आ गया, परन्तु तारक की माँ ने जब उसके ऊपर अपना पादोदक छिड़का तो वह ठीक हो गया। बाद में यह पता चला कि तारक ने किसी रजस्वला स्त्री के हाथ से जल ग्रहण किया था और उसके कारण ही उसके ताबीज की शक्ति जाती रही थी।

इस जगत् के कटु एवं कष्टप्रद अनुभवों से मनुष्य बहुत से पाठ सीखता है। मनुष्य कितना ही पापी, कठोर तथा पाशविक क्यों न हो; परन्तु वह दुःख, पीड़ा और शोक से, सङ्कटों, कठिनाइयों और रोगों से, सम्पत्ति-नाश, निर्धनता तथा प्रियजनों की मृत्यु से अपने को सुधारता और प्रशिक्षित करता है। परमेश्वर पापी को रहस्यपूर्ण ढङ्ग से सुधारते और ढालते हैं। दुःख और पीड़ा शिक्षा प्रदान करने वाली शक्ति के रूप में उपयोगी काम करते हैं। वे बुरे कर्म करने वालों की आँखें खोलने का काम देते हैं। वे उन्हें पतन से बचाते और उन्नत करते हैं। इससे पापी लोग सत्कर्म करने में लग जाते हैं और सत्सङ्ग का आश्रय लेते हैं।

कितने ही लोगों की ऐसी मान्यता है कि मनुष्य की आत्मा पशु-योनि में फिर कभी भी अवतरित नहीं हो सकती। इसका कारण यह है कि मानव-जाति में प्रकट हुआ व्यक्तित्व पशु-शरीर में नहीं समा सकता। वह शरीर उसके लिए सर्वथा अपूर्ण एवं अशक्त होता है। पशु-योनि का शरीर अपेक्षाकृत कठोर, विषम तथा अपूर्ण होता है, अतः मनुष्य के उच्चतर

सिद्धान्तों को न तो उनमें प्रश्रय मिल सकता है और न उनकी अभिव्यक्ति ही वहाँ हो सकती है। प्राणी का स्थूल शरीर उसके सूक्ष्म शरीर का एक प्रकार से कोश होता है, अतः उसके सूक्ष्म एवं कारण शरीरों के आकार और गठन उसके स्थूल शरीर के समान ही होते हैं। इस कारण मानव-आत्मा को सदा मानव-शरीर में ही रहना चाहिए। मानव-जीवात्मा की आवश्यकता, माँग तथा आशा के अनुरूप ही उसके शरीर का निर्माण होना चाहिए। उसे विचार और ज्ञान के साधनों से सम्पन्न होना चाहिए जो कि मानव-जीवात्मा के लिए आवश्यक है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि मनुष्य का स्थूल शरीर उसके सूक्ष्म एवं कारण शरीर के साँचे में ढालना चाहिए, क्योंकि साधारणतया इनसे ही उसके स्थूल शरीर की रूपरेखा का निर्माण होता है। इससे यह प्रकट है कि मानव आत्मा मानव-शरीर में ही अवतरित हो सकती है अन्य शरीर में नहीं। प्राचीन शास्त्रकारों के ये सब कथन रूपक मात्र हैं कि क्रूर मनुष्य दूसरे जन्म में भेड़िया होता है, लोभी मनुष्य विषैला नाग होता है, कामी पुरुष कुतिया बनता है, इत्यादि। शास्त्रकार जब ऐसा कहते हैं कि क्रूर मनुष्य भेड़िये के रूप में जन्म लेता है तब उनके ऐसा कहने का तात्पर्य यह होता है कि वे भेड़िये की तरह क्रूर एवं हिंसक व्यक्ति बनेंगे। इसी भाँति दूसरे कथनों का भी तात्पर्य समझना चाहिए।

दूसरे लोगों का अभिप्राय यह है कि मनुष्य अपने को नीचे की ओर ले जाना चाहता है, इतना ही नहीं वरन् वह नीच पाशविक जीवन यापन करने का भी यथासम्भव प्रयास करता है। वह अपने अंतःकरण से सभी उच्चतर एवं श्रेष्ठ संस्कारों को निकाल फेंकने का प्रयत्न करता है और यदि वह वास्तव में अपने को बन्दर जैसा बनाने में सफल हो जाता है, यदि वह

अपनी वासनाओं को पशुओं जैसी निम्न-वासनाओं का रूप देने में कृतकार्य हो जाता है, यदि वह अपने को पशु के समान बना डालता है तो यह निश्चित है कि वह मनुष्य अपने दूसरे जन्म में बन्दर की जाति में जन्म लेगा। परन्तु मनुष्य के लिए ऐसा कर सकना सम्भव नहीं, क्योंकि उसमें कुछ दूसरी शक्तियाँ भी होती हैं जो उसे ऐसा करने से रोकती तथा पकड़ रखती हैं। मनुष्य की ये शक्तियाँ वे ही हैं जिन्हें हम शोक, सङ्कट, कष्ट इत्यादि नाम से पुकारते हैं। मनुष्य को किसी भी प्रकार के पतन से बचाने में ये विश्वसनीय साधन हैं। इनके हाथों में मानव-जाति की प्रगति निश्चित रहती है, क्योंकि वे उसे अधम योनियों में नहीं पड़ने देती।

विकास-साधक जीवन ही प्रगति है और इस प्रगति को बनाये ही रखना चाहिए और इस भाँति निरन्तर सङ्घर्ष एवं अविराम युद्ध मानव-जाति के लिए आवश्यक है।

मानव-जन्म शुभाशुभ कर्मों का परिणाम है। जब शुभ कर्म अशुभ कर्मों से बढ़ जाते हैं तब वह मनुष्य देव, यक्ष, गन्धर्व आदि श्रेष्ठ योनियों में जन्म लेता है और जब अशुभ कर्म शुभ कर्मों से बढ़ जाते हैं तब वह पशु, राक्षस आदि नीच योनियों में जन्म लेता है, वह अधम योनि में पड़ जाता है। परन्तु जब उसके शुभ और अशुभ कर्म समान होते हैं तब वह मानव-जाति में जन्म लेता है। मनुष्य पुण्य कर्म द्वारा स्वर्ग लोक को, पाप कर्म द्वारा नरक को और मिश्र कर्म द्वारा मर्त्यलोक को प्राप्त करता है।

जिस शरीर में जीवात्मा निवास करता होता है, चाहे वह शरीर मनुष्य का हो अथवा पशु का, वह उसी में आसक्त हो जाता है। यह प्रकृति का नियम है। एक चींटी को अपना

चींटी का शरीर उतना ही प्रिय होता है जितना कि हाथी को उसका हाथी का शरीर अथवा मनुष्य को उसका मनुष्य-शरीर प्रिय होता है। शरीर के प्रति इस प्रकार की अद्भुत आसक्ति ही जन्म-मरण के चक्र के प्रवाह को सतत बनाये रखती है। एक प्राणी अपने किसी जन्म-विशेष में जिस प्रकार का शरीर ग्रहण करता है, वह उसे ही और सब जन्मों की अपेक्षा श्रेष्ठ समझता है। मनुष्य को मानव-जीवन रुचिकर है। हाथी अपने हाथी-रूप में जन्म लेने में प्रसन्न है। यही दशा अन्य प्राणियों की भी है; परन्तु ऐसी अवस्था में भी प्रत्येक प्राणी अपने विकास-साधन की तथा विशुद्ध आनन्द के प्राप्ति की आकांक्षा रखता है। सृष्टिजात सभी प्राणियों में यह नियम सामान्य रूप से पाया जाता है।

अन्य योनियों में जन्म लेने की अपेक्षा मानव-जाति में जन्म लेना श्रेयस्कर है, क्योंकि इसमें प्राणी को बुद्धि तथा विवेक प्राप्त रहता है। वह अपने आपको जानता है और साथ ही दूसरों को भी जानता है। इसके अतिरिक्त उसमें प्रेम, विश्वास, लज्जा, शील, अहिंसा आदि सद्गुण प्राप्त रहते हैं। पशु-योनि में बुद्धि, स्मृति और ज्ञान नहीं होते, अतः उसमें जन्म लेना वाञ्छनीय नहीं।

विवेक, आत्म-ज्ञान, स्थूल शरीर और आत्मा के भेद का ज्ञान तथा अपने सहवासियों के प्रति प्रेम तथा विश्वास आदि उत्तम गुणों से जो व्यक्ति सम्पन्न नहीं है, उस मनुष्य का जीवन तो पशु-जीवन के ही समान है।

अज्ञानी मनुष्य के जब तक ज्ञान-चक्षु उन्मीलित नहीं हो जाते तथा जब तक वह उन्नत पथ पर ले जाने वाले किसी गुरु के सम्पर्क में नहीं आता, तब तक वह इस संसार-सागर में डूबता रहता है तथा उसे अनेक माताओं के उदर में जन्म लेना पड़ता

है। अज्ञानी संसारी जीव कुत्ता, साँप, भेड़िया अथवा सिंह की योनि मे जन्म लेता है। इसके लिए कोई विशिष्ट नियम नही है। इस विषय में शास्त्रो के कथन सर्वथा सत्य हैं। शास्त्रों की इन उक्तियों को केवल रूपक अथवा अलङ्कारिक मानना गहरी भूल है।

जिस आध्यात्मिक साधक ने दिव्य जीवन यापन करना प्रारम्भ कर दिया है, उसे निम्न योनि में जन्म लेने का कोई भय नही रहता। एक योगी, योगाभ्यास करते हुए यदि लक्ष्य से च्युत भी हो जाय तो भी वह नष्ट नही होता। वह अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल वातावरण मे जन्म लेता और अपने आध्यात्मिक पथ का अनुसरण करता है। श्रीमद्भगवद्गीता मे आप देखेंगे, "हे पार्थ, उस (योगभ्रष्ट व्यक्ति) का न तो इस लोक में और न ही परलोक मे विनाश होता है। हे तात! शुभ कर्म करने वाला कोई भी व्यक्ति कभी भी दुर्गति को नही प्राप्त होता। पुण्य कर्म करने वाले जिन लोकों को जाते हैं उन्हें योग-भ्रष्ट प्राप्त करता है और वहाँ अनन्त काल तक निवास करके या तो शुभ आचरण करने वाले धनी लोगों के घर जन्म लेता है अथवा उसका जन्म बुद्धिमान् योगियो के कुल मे होता है।"

(गीता ६-४०, ४१ और ४२)

भगवान् ऋषभ देव के पुत्र राजा जड़ भरत ने अपने राज्य को तिलाञ्जलि दे तपस्वी-जीवन वरण किया। एक दिन उन्होंने उस वन में एक मातृ-पितृ-हीन मृग-शावक को देखा। उन्हें उस निरीह प्राणी पर दया आयी। कालान्तर मे तो वे उस मृगशिशु से इतना उत्कट प्रेम करने लगे कि उनका सारा ध्यान उस मृग की ओर ही लगा रहता और परमात्म-विषयक वृत्ति शनैः शनैः क्षीण हो चली। मरण-काल उपस्थित होने पर उन्हे उस नन्हें मृग का विचार बहुत ही उद्विग्न बनाता रहा

और उसके परिणामस्वरूप उन्हें मृग की योनि में जन्म लेना पड़ा।

राजा भरत वेद-पुराण और सभी शास्त्रों में पारङ्गत थे। उन्होंने उग्र तपस्या की थी और भगवान् वासुदेव के चरणों का वे ध्यान भी करते रहे थे; परन्तु मृग शावक में उनकी आसक्ति होने के कारण उन्हें मृग-योनि में जन्म लेना पड़ा। अब भरत की आँखें खुल गयीं और उन्हें अपनी भूल का पता चला। उस मृग शरीर में उन्हें राजा भरत के रूप में अपने गत जीवन की सभी बातें स्मरण हो आयीं। वे मृग-रूप में रहते हुए भी भगवान् का निरन्तर ध्यान करने लगे। वे स्वल्प आहार लेते और अपनी जाति के दूसरे मृगों से बहुत ही कम मिलते-जुलते। वास्तव में तो वे उस निम्न योनि से मुक्ति पाने की आशा लगाये अपनी आयु के दिन गिन रहे थे। भरत ने अपने मृग-शरीर को त्याग कर पुन: एक ब्राह्मण के शरीर में जन्म लिया। जड भरत अब यथेष्ट बुद्धिमान् हो चुके थे, अत: उन्होंने उस भूल को दोहराया नहीं। वे बचपन से ही संसार से अलग रहने लगे। उनका मन राग-द्वेष से सर्वथा मुक्त था। इस भाँति वे माया के पञ्जों से बच निकले और मर्त्य शरीर का परित्याग कर परमात्मा में विलीन हो गये।

गजेन्द्र को यद्यपि हाथी की योनि में जन्म लेना पड़ा था; परन्तु उसने अपने वास्तविक स्वरूप को कभी भी विस्मृत नहीं होने दिया। वह भगवान् हरि का सदा ही ध्यान करता था और इसके द्वारा उसने अपने उस हाथी के जीवन में ही मुक्ति प्राप्त कर लिया। हमारे शास्त्रों में ऐसे अनेक उदाहरणों का उल्लेख है जिनमें कि पशु और पक्षियों की योनि में ही मुक्ति मिली थी। वृत्रासुर एक महान् राक्षस था। वह वासुदेव का

परम भक्त हुआ। वह अपने पूर्व-जीवन में चित्रकेतु नाम का राजा था। उमा देवी के शाप से उसे राक्षस बनना पड़ा।

पूर्वोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि एक सच्चे एवं निष्कपट साधक के लिए पतन की आशङ्का नहीं रहती है। *भागवतजन पूर्ण निर्भय एवं निष्काम होते हैं।* वे ऐसी किसी भी योनि में जन्म ग्रहण करने को तैयार रहते हैं जिसमें कि भगवान् का भजन हो सके।

भगवान् की परा भक्ति ही वास्तव में अभ्यर्थनीय है। इसकी प्राप्ति हो जाने पर, मनुष्य को कैसे भी जीवन में अथवा कैसी भी परिस्थिति में क्यों न रहना पड़े, वह सुखी रहता है। उसे ऐसी अवस्था में एक प्रकार के अलौकिक आनन्द की उपलब्धि होती है, जिससे कि वह संसार के अति-व्यथाप्रद कष्टों को सहन कर सकता है।

पुरातन ऋषियों में दुष्टों को शापित करने और साधुजनों को आशीर्वाद देने की शक्ति होती थी। देवर्षि नारद के शाप से कुबेर-पुत्रों को यमलार्जुन वृक्ष बनना पड़ा था। ऋषि गौतम ने अपनी पत्नी अहल्या को पाषाण-शिला बनने का शाप दिया। शाप देने में उनका प्रयोजन न तो स्वार्थ-भावना होती है और न ही वे क्रोध के वशीभूत हो ऐसा करते हैं वरन् वे तो श्री भगवान् के चरणारविन्द से विमुख हो भटक रहे प्राणियों पर दया कर उनके कल्याण-साधन के लिए ही ऐसा करते हैं। अतः सन्तों का सम्पर्क मनुष्य के भाग्य को पलटने में बहुत ही लाभकर है।

ऋषि भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों के ज्ञाता—त्रिकालज्ञाता थे अतः उन्हें कर्म की रहस्यमयी गति का पूर्ण

ज्ञान था। उन्होंने आत्मज्ञान प्राप्त किया था और उस आत्म-ज्ञान की शक्ति से अन्य सभी बातें भी उन्हें विदित थीं।

हमें किस प्रकार का शरीर प्राप्त है, इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं; परन्तु यह बात अवश्य ही महत्त्वपूर्ण है कि हमारे विचार कैसे हैं। एक उच्च श्रेणी के व्यक्ति में भी पाशविक विचार हो सकते हैं। काम एवं क्रोध से अभिभूत होने पर तो मनुष्य मनुष्य न रह कर पशु से भी निकृष्टतर बन जाता है। जिनमें विवेक-शक्ति नहीं है, जो क्षुद्र विषय-भोगों में ही रत रहते हैं तथा जो साधारण-सी बातों में अपने मन का संयम खो बैठते हैं, ऐसे व्यक्ति की अपेक्षा तो पशु-योनि में उत्पन्न एक गाय सहस्रगुणा श्रेष्ठ है।

आप इस विषय की चिन्ता न करें कि भविष्य में आप कैसा जन्म ग्रहण करेंगे। वर्त्तमान जीवन का सदुपयोग कर अपने को जन्म-मरण से मुक्त बना लें। भगवद्भक्ति को विकसित करें। क्षुद्र एषणाओं का परित्याग करें। परोपकार के लिए सदा प्रयत्नशील रहें। दयालु बनें और सुकर्म करें।

भगवान् हरि त्रिलोकी के रक्षक हैं। सृष्टि के प्रत्येक प्राणी को अपने अमर धाम तक पहुँचाने का उत्तरदायित्व उन भगवान् पर ही है। वे आपको जिस किसी भी पथ से ले जाना चाहें, उसी पथ से ले जाने दीजिए। मनुष्य, पशु अथवा राक्षस—जिस किसी भी योनि में वे आपको मुक्त करना चाहें, मुक्त करने दीजिए। अपने मन को सदा उन पर केन्द्रित रखिए और अपने भ्रमर-रूपी मन को उनके पाद-पद्मों में लीन कर दीजिए। उनके चरण-कमल से निःसृत मकरन्द-सुधा का पान कीजिए। एक बालक की भाँति सरल भाव से उन्हें आत्मार्पण कीजिए।

जिसके कारण प्राणी को अनेकानेक योनियों में अगणित जन्म ग्रहण करने पड़ते है, ऐसे सतत गतिशील कर्मचक्र से आप सब मुक्त बनें और इस जीवन में ही अमरात्मा के सुख का उपभोग करें !

८. बालक की क्रमिक वृद्धि

छान्दोग्योपनिषद् की विद्या में पुण्यशाली जीवों की उत्क्रान्ति का विचार किया गया है। वहाँ यह बतलाया गया है कि जीवात्मा इस लोक से चन्द्रलोक को जाता है। वहाँ से वापस होते हुए वह पर्जन्यलोक को जाता है। वहाँ से वृष्टि द्वारा इस लोक में आता है। वृष्टि से वह जीवात्मा अन्न में और अन्न से पुरुष के वीर्य में जाता है इसके बाद वह सिंचनक्रिया द्वारा स्त्री के उदर में प्रवेश करता है। इस भाँति देवतागण जीवात्मा की इन पञ्चाग्नियों में आहुति देते हैं और तब वह पुरुष बनता है।

इस प्रकार चन्द्रलोक से प्रत्यावर्त्तन करता हुआ अनुशायी जीव अभ्र के साथ मिल कर पृथ्वी पर आता है। वहाँ अन्नादि पदार्थों में उसे दीर्घकाल तक ठहरना पड़ता है।

वहाँ वह चार प्रकार का भोजन—भक्ष्य, पेय, लेह्य तथा चोष्य बनता है। मनुष्य जब उसको खाता है तब वह वीर्य बनता है और ऋतुकाल आने पर पुरुष जब स्त्री-योनि में वीर्य-सेचन करता है तब वह स्त्री के उदर में आता है।

माता के उदर में शुक्र-शोणित के संयोग से वह गर्भ एक दिवस में 'कलल' बन जाता है। पाँच रात्रि के व्यतीत हो जाने पर वह बुद बुद बनता है। सात रात्रि में वह पिण्ड (मांसपेशी) का आकार ग्रहण करता है। एक पक्ष के अनन्तर वह पिण्ड रक्तपूर्ण बन जाता है और पच्चीस रात्रि के पश्चात् वह अङ्कु-

रित होने लगता है। पहले मास में उसमें कण्ठ, शिर, स्कन्ध, मेरुदण्ड तथा पेट बनता है। ये पाँचों एक के बाद एक क्रमिक-रूप से ही बनते हैं। दूसरे मास में क्रमशः हाथ, पैर, पार्श्व, कटि-देश, ऊरु तथा घुटनों का निर्माण होता है। तीसरे मास में शरीर की सन्धियाँ बनती हैं। चौथे मास में धीरे-धीरे उँगलियाँ तैयार होती हैं। पाँचवें मास में मुख, नासिका, नेत्र और श्रोत्र की रचना होती है। दाँतों की पंक्ति, नख तथा गोपनीय अङ्ग भी पाँचवें मास में ही बनते हैं। छठे मास में कर्णरन्ध्र बनता है और उसी मास में मानव-जाति में पुरुष-स्त्री-सम्बन्धी जननेन्द्रिय, गुदा और नाभि भी बनते हैं। सातवें मास में शरीर और शिर में रोम एवं केश निकल आते हैं। आठवें मास में शरीर के सभी अङ्ग अलग-अलग हो जाते हैं। इस भाँति स्त्री के गर्भाशय में गर्भ बढ़ता है। गर्भाशय में स्थित जीव को पाँचवें मास में सभी प्रकार की सूझ-बूझ आ जाती है।

नाभि-नाल के एक सूक्ष्म छिद्र द्वारा गर्भस्थ जीव अपनी माता के खाये आहार के सूक्ष्मांश से अपना पोषण करता है। वह अपने कर्म के प्रभाव से गर्भाशय में जीवित रहता है।

गर्भाशय में स्थित जीव अपने पूर्व-जन्मों को और उनमें किये हुए शुभाशुभ कर्मों को स्मरण कर जठराग्नि की ज्वाला में विदग्ध हो अधोलिखित प्रकार से सोचता है :

"अब तक मैंने नाना प्रकार की योनियों में सहस्रों जन्म लिये और लाखों स्त्री, पुत्र और सम्बन्धियों के साथ रह कर आनन्द लूटा।

"कुटुम्ब के भरण-पोषण में अनुरक्त रह कर मैंने शुभाशुभ साधनों से धनोपार्जन किया। मैं अभागा हूँ कि मैंने स्वप्न में भी विष्णु भगवान् को स्मरण नहीं किया।

"अब मैं उन कर्मों का फल इस गर्भाशय में असह्य पीड़ा के रूप में भोग रहा हूँ। कामनाओं से सन्तप्त हो तथा शरीर को ही सत्य मान कर मैंने वह सब-कुछ किया, जो कि मुझे न करना चाहिए था और जो कार्य मेरे लिए हितकर था, उसे करने मे मैं चूक गया।

"इस भाँति मैं अपने ही कर्मों के द्वारा विविध प्रकार के कष्ट भोग चुका। अब मैं भला इस नरकतुल्य गर्भाशय से कब बाहर निकलूँगा। इसके पश्चात् मैं भगवान् विष्णु के अतिरिक्त अन्य किसी की उपासना नही करूँगा।"

इस प्रकार के अनेक विचार करता हुआ तथा अपनी माँ के आन्तरिक अङ्गों की चपेट से पीड़ित हुआ वह वैसे ही बड़े कष्ट के साथ गर्भ से बाहर आता है जैसे पापी जीव नरक से बाहर निकलता है। जैसे कि विष्ठा से कीट बाहर आता है वैसे ही वह बाहर आता है।

इस जीवन में आने के उपरान्त भी वह बाल्य, यौवन और जरा अवस्थाओं के कष्ट तथा दूसरे कष्ट भी सहन करता है।

षष्ठ प्रकरण

विभिन्न लोक

विभिन्न लोक

१. प्रेतलोक

जिस मनुष्य का मन निम्न कामनाओं तथा इन्द्रिय सुख की तीव्र वासनाओं से आपूरित होता है तथा जो इस लोक में रह कर इन्द्रिय के विषय-भोगों में मग्न रहता है, ऐसा विषयी मनुष्य अपनी मृत्यु के अनन्तर प्रेतलोक में प्रवेश करता है। मृत्यु के पश्चात् वह जीवात्मा कुछ काल तक अचेतावस्था मे, निद्रा की-सी दशा में रहता है। जब वह उस निद्रा से जागता है तब अपने को प्रेतलोक में पहुँचा हुआ पाता है।

इस लोक में जीवात्मा के जगने के साथ ही उसकी कामनाएँ, वासनाएं और तृष्णाएँ उसे बहुत ही व्यथित करने लगती हैं। वह खाना-पीना और स्त्री के साथ प्रसङ्ग करना चाहता है; परन्तु उस लोक में प्राप्त हुए शरीर से अपनी उन वासनाओं को वह तृप्त नही कर सकता है। वहां वह कारागार में पड़े हुए बन्दी की भांति रखा जाता है और अपनी भोग-वासनाओं को तृप्त न कर सकने के कारण बहुत ही दु:खित तथा पीड़ित रहता है। इस दशा मे उसकी इन्द्रियाँ भी बहुत शक्तिशाली होती हैं; परन्तु उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए उस लोक में उसके पास साधन कहां ? इस भांति उसे अकथनीय दुःख होता है; क्योंकि वह अपनी कामनाओं, वासनाओं और तृष्णाओं को तृप्त नही कर सकता है। वहाँ उसकी दशा ठीक एक क्षुघार्त्त प्राणी की-सी होती है।

इन वासनाओं का मूल केन्द्र मन के अन्दर है—स्थूल शरीर में नहीं। यह स्थूल शरीर तो मन और इन्द्रियों का एक उपकरण मात्र है, जिसके माध्यम से उन्हें तृप्ति प्राप्त होती है।

श्राद्धक्रिया के द्वारा आप प्रेतलोक में पीड़ित जीवात्मा की सहायता कर सकते हैं। श्राद्धक्रिया जीवात्मा को कष्ट से मुक्ति प्रदान करती है और उसे वहाँ से स्वर्गलोक जाने में सहायता प्रदान करती है। उस अवसर पर पढ़े जाने वाले मन्त्र बहुत ही शक्तिशाली स्पन्दनों का सृजन करते हैं। ये स्पन्दन जीवात्मा को बद्ध बनाये रखने वाले शरीर से टकरा कर उसे ध्वस्त कर डालते हैं।

अभी तो आपने श्राद्धक्रिया का महत्त्व समझ लिया होगा। जिन लोगों ने अज्ञान, कुसंस्कारजन्य बुद्धि-विकार, कुसङ्ग अथवा कुशिक्षा—इनमें से जिस किसी भी कारण से श्राद्ध करना छोड़ दिया है, उन्हें चाहिए कि कम-से-कम अभी से श्राद्धक्रिया करना आरम्भ कर दें। जिस भाँति दयालु माँ अपनी सन्तति की सँभाल रखती है वैसे ही ऋषि और शास्त्र आपकी सँभाल रखते हैं।

यदि आप प्रेतलोक में प्रवेश करना और वहाँ के कष्ट सहन करना नहीं चाहते तो बुद्धिमान् बनना सीखिए। इन्द्रियों का दमन कीजिए। नियमित तथा अनुशासित जीवन यापन करना सीखिए। इन्द्रियों को उपद्रवी न बनने दीजिए। अति-आहार का परित्याग कीजिए। 'शरीर ही सर्वस्व है'—इस दर्शन को न अपनाइए। मृत्यु-काल में काम और तृष्णा आपको व्यथित करेंगे। यदि आप आत्म-संयम का अभ्यास करते हैं तो आनन्द के राज्य में प्रवेश करेंगे।

२. प्रेतों के अनुभव

वशिष्ठ महर्षि योगवाशिष्ठ में वतलाते हैं :

"प्रेत छः प्रकार के होते हैं, साधारण पापी, मध्यम पापी, महापापी, सामान्य धर्मात्मा, मध्यम धर्मात्मा और उत्तम धर्मात्मा।

"इन महापातकी प्रेतों में से कई तो एक वर्ष पर्यन्त घन-पाषाण के तुल्य मृत्यु की मूर्च्छा की जड़ता का अनुभव करते रहते हैं। चेतना प्राप्त होने पर वे अपनी वासनाओं द्वारा प्राप्त अक्षय नारकीय दुःखों को चिरकाल तक भोगने के लिए वाध्य-सा अनुभव करते हैं; तव वे सैकड़ों योनियों के भोग तब तक भोगते रहते हैं जब तक कि वे इस भ्रान्त जगत् से मुक्त हो कर अपने अन्त.करण में शान्ति नही प्राप्त कर लेते।

"इसी श्रेणी में कुछ दूसरे प्रकार के होते हैं जो कि मरण-मूर्च्छा के समाप्त होते ही अपने अन्तःकरण मे वृक्षादि स्थावर योनियों की जड़ता का अकथनीय दुःख अनुभव करने लगते हैं और फिर चिरकाल तक नरक की यातना भोग कर अपनी-अपनी वासना के अनुरूप भूतल पर नाना योनियों में जन्म लेते हैं।

"जो मध्यम पापी होते हैं वे मृत्युकालिक मूर्च्छा के अनन्तर कुछ काल तक पाषाण-तुल्य जडता का अनुभव करते हैं। उन्हें जब चेतना प्राप्त होती है तब वे कुछ काल के पश्चात् अथवा उसी क्षण खग, मृग, सर्पादि तिर्यक् योनियों को भोग कर इस संसार में सामान्य मानव-जीवन को प्राप्त होते हैं।

"जो साधारण पापी होते हैं, वे प्रायः मृत्यु-मूर्च्छा के तुरन्त बाद ही अपनी पूर्व-वासना के अनुसार सासारिक जीवन को

चालू रखने के लिए मानव-शरीर धारण करते हैं। मृत्यु के पश्चात् शीघ्र ही उनकी पूर्व-स्मृति उदित हो उठती है। उनकी पूर्व-वासनाएँ और कल्पनाएँ उनके अनुभव-जगत् में स्वप्न-राज्य की भाँति एक नये संसार की सृष्टि करती हैं।

"जो महान् धर्मात्मा होते हैं वे मरण-मूर्च्छा के दूर होते ही देवलोकों के सुख का उपभोग करते हैं। स्वर्गलोक में देव शरीर से अपने पुण्यफल भोग के अनन्तर वे इस मर्त्यलोक में धनी सत्पुरुषों के कुटुम्ब में पुनः जन्म लेते हैं।

"जो मध्यम पुण्यात्मा होते हैं, वे मृत्युजनित मूर्च्छा के पश्चात् ऐसा अनुभव करते हैं कि वायु उनके सूक्ष्म शरीर को लिए जा रहा है और फिर वे वृक्ष और वनस्पति-वर्ग की योनि में डाल दिये गये हैं। कुछ काल तक इस अवस्था में रहने के पश्चात् वे आहार के रूप में मानव-शरीर में प्रवेश करते हैं और वहाँ वीर्य का रूप धारण कर माताओं के गर्भाशय में प्रवेश कर जाते हैं।"

३. पितृलोक

यह लोक चन्द्रलोक के नाम से भी प्रसिद्ध है। यहीं पर पितृगण निवास करते हैं। यह स्वर्गलोक भी कहलाता है। जो यज्ञ करते हैं तथा जनता के लिए कूप-वापी खुदवाते, धर्मशाला बनवाते और उद्यान लगवाते हैं, जो सकाम भाव से इष्टा-पूर्त्त कर्म करते हैं, वे इस लोक में प्रवेश करते हैं। उन जीवात्माओं के सुकृत फल जब वहाँ समाप्त हो जाते हैं तब वे इस मानवलोक में पुनः वापस आ जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं: "धूम्र रात्रि, कृष्ण पक्ष, दक्षिणायन के छः मास—इस समय चन्द्र की किरणों के द्वारा योगी चन्द्रलोक को जाता है और वहाँ से पुनरावर्त्तन करता है।" (गीता ८-२५)

अर्थात् वे पुण्यशाली जीवात्माएँ शरीर-त्याग करती हैं तब प्रथम तो धूम्र द्वारा प्रयाण करती हैं और धूम्र से रात्रि में, रात्रि से कृष्ण पक्ष में और कृष्णपक्ष से दक्षिणायन काल में होकर पितृलोक में जाती हैं। यह मार्ग पितृयान कहलाता है।

पितृगण के वंशज जब उनके लिए श्राद्ध-तर्पण करते हैं तब वे बहुत ही प्रसन्न होते हैं और संवत्सरी के दिन जब उनके वंशज श्राद्धक्रिया करते हैं तब वे अपने वंशजों को आशीर्वाद देते हैं।

जीव इस चन्द्रलोक में देव-तुल्य सुन्दर दिव्य शरीर प्राप्त करते हैं। वे यहाँ अपने पितरों के साथ निवास करते हैं और देव बन कर चिरकाल तक यहाँ के स्वर्गीय सुख का आनन्द लूटते हैं। तत्पश्चात् वे आकाश तथा मेघ के मार्ग से नीचे आते हैं और वर्षा के जल-बिन्दुओं द्वारा इस लोक में पहुँचते हैं। यहाँ के अन्न में प्रवेश कर किसी एक ऐसे पुरुष का आहार बनते हैं जो उन्हें नव-शरीर निर्माण के लिए आवश्यक सामग्री प्रदान कर सके। जिन जीवों के पूर्वकृत कर्म बहुत ही भले होते हैं, वे अच्छे परिवार में जन्म लेते हैं।

पितरों का यह स्वर्ग, जिसे पितृलोक अथवा चन्द्रलोक कहते हैं, शाश्वत सत्य का सर्वोत्तम धाम नहीं है। यह एक दृश्यमान जगत् है। उस लोक के निवासी कर्म के नियम से, कार्य-कारण के नियम से, घात-प्रतिघात के नियम से बँधे रहते हैं। भले ही वे वहाँ सहस्रों वर्ष निवास करें, परन्तु वहाँ का निवास अस्थायी ही होता है।

पितरों को ब्रह्मविद्या अथवा अमरात्मा का ज्ञान नहीं होता है। वे कामनाओं से बद्ध रहते हैं। उन्हें स्वयं ब्रह्मविद्या का

ज्ञान नहीं होता है अतः वे दूसरों को भी इस विद्या में शिक्षित नहीं कर सकते।

भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं :

"वेदत्रयी के ज्ञाता, सोमपान करने वाले तथा निष्पाप लोग यज्ञों द्वारा मेरा पूजन कर स्वर्ग-प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं। वे पवित्र देवलोक को प्राप्त कर स्वर्ग में उत्तम दिव्य भोगों को भोगते हैं।"

(गीता ९-२०)

"वे उस विशाल स्वर्ग के सुख को भोग कर पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में आते हैं। इस प्रकार वेदों में कहे हुए कर्मों का अनुष्ठान करने वाले कामना-परायण लोग आवागमन को प्राप्त होते हैं।"

(गीता ९-२१)

'देवताओं की उपासना करने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं, पितृपूजक व्यक्ति पितरों को प्राप्त होते हैं, भूतों की पूजा करने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं और मेरे उपासक मुझे ही प्राप्त होते हैं।"

(गीता ९-२५)

ब्रह्मलोक में निवास करने वाले जीव भी पुनर्जन्म तथा आवागमन के नियमानुवर्ती हैं। केवल वही व्यक्ति जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होता है और दृश्य जगत् का अतिक्रमण कर जाता है, जिसने कि परम सत्य का ज्ञान प्राप्त कर, परमात्मा का साक्षात्कार कर ब्रह्म के साथ एकत्वभाव प्राप्त कर लिया है।

४. स्वर्ग

स्वर्ग के विषय में हिन्दुओं की मान्यता ईसाइयों और मुसलमानों की मान्यता से भिन्न है। हिन्दुओं के लिए स्वर्ग

वह स्थान है जहाँ जीवात्मा अपने पुण्य कर्मों के फल भोगने के लिए जाता है। जब तक उसके सुकृतों के फल समाप्त नहीं हो जाते तब तक वह वहाँ निवास करता है और उसके पश्चात् वह इस मर्त्यलोक को वापस आ जाता है। पुण्यशाली जीवात्माएँ स्वर्ग में दिव्य भोगों को भोगती और स्वर्गीय विमानों में विचरण करती हैं। इन्द्र इस स्वर्गलोक का अधिपति है। इस लोक में अनेक देवगण निवास करते हैं। उर्वशी, रम्भा आदि अप्सराएँ यहाँ नृत्य करती हैं और गन्धर्वगण नाच करते हैं। यहाँ किसी प्रकार के रोग-व्याधि का कष्ट नहीं, क्षुधा-तृष्णा की पीड़ा नहीं। यहाँ के निवासियों के तेजस् शरीर होते हैं। वे दिव्य वस्त्राभरणों से अलंकृत होते हैं। स्वर्ग एक मानसिक लोक है। जीवात्मा यहाँ जिस भोग की कामना करता है, वह भोग-पदार्थ उसे तुरन्त मिल जाता है। स्वर्गलोक भूलोक की अपेक्षा अधिक सुखद है।

ईसाई, मुसलमान तथा पारसी लोगों के अनुसार स्वर्ग इन्द्रियों के सभी प्रकार का भोगप्रदायक स्थान है। जीवात्मा को 'अलसीरात' नामक सेतु पार करना पड़ता है। श्रद्धालु जीवात्माएँ, जिन्होंने सुकृत किया होता है, आकाश-स्थित स्वर्गलोक को प्राप्त होती है। मुसलमानों की मान्यता में स्वर्ग एक रमणीय उद्यान है और उसमे जलस्रोत, निर्झर और सरिताएँ प्रवाहित हो रही हैं। इनमे जल,दूध, मधु तथा स्निग्ध हिना सदा बहता रहता है। यहाँ सुस्वादु फल उत्पन्न करने वाले सोने के वृक्ष होते हैं। यहाँ विशाल श्याम नेत्रों वाली मनोहर कुमारियाँ रहती है जिन्हें हूरुल अयू कहते है। यहूदी और पारसियों की भी स्वर्ग के विषय में ऐसी ही धारणा है।

पारसी लोगों के स्वर्ग के नाम 'बिहिश्त' और 'मिनू' है। अपने इहलौकिक जीवन मे जिन्होने पुण्यार्जन किया होता है,

वे लोग देवदूत जामियत के रक्षण में यहाँ रहने वाली 'हूराने विहिश्त' के नाम से प्रसिद्ध स्वर्गिक अप्सराओं के साथ भोग-विलास करते हैं। उनके स्वर्ग का नाम गरोडेमन (फारसी–गरोत्मन) है; जिसका अर्थ है, सूक्तों का धाम। जिस भाँति हिन्दुओं के स्वर्ग में गन्धर्वगण गान करते हैं, उसी भाँति यहाँ देवदूत स्तोत्रा गान करते हैं।

यहूदी और पारसी लोग सात आसमान (स्वर्ग) को मानते हैं। एडेन का स्वर्ग मूल्यवान् हीरों से जटित है। एडेन के उद्यान और पारसियों के स्वर्ग के मध्य बहुत-कुछ समता है। एडेन के दो वृक्ष ज्ञान-तरु और जीवन-तरु श्वेत रोमा को उत्पन्न करने वाले गाओ–करेना और दुःख-रहित (अशोक) वृक्ष के अनुरूप हैं।

पारसी, ईसाई और मुसलमान मानते हैं की स्वर्ग शाश्वत एवं नित्य है तथा वहाँ के निवासियों को सभी प्रकार के भोग-साधन विना किसी प्रकार के विघ्न-वाधा अथवा कष्ट के सदा उपलब्ध रहते हैं।

स्वर्ग भी ऐन्द्रिक सुख-भोग का एक स्थान है। हाँ, यह सच है कि स्वर्ग क भोग अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशील, सूक्ष्म और संस्कृत होते हैं, फिर भी वे चिरस्थायी शान्ति अथवा सच्चा सुख प्रदान नहीं कर सकते हैं। वे इन्द्रियों की शक्ति को क्षीण करते हैं। विवेक-वैराग्य से सम्पन्न प्रवुद्ध जन तो स्वर्ग-सुख की कदापि आकांक्षा नहीं रखते। वे स्वर्ग में निवास करने की स्वप्न में भी कल्पना नहीं करते। स्वर्ग में भी ईर्ष्या, राग, द्वेपादि पाये जाते हैं तथा देवताओं और असुरों का संग्राम तो छिड़ा ही रहता है। अतः सच्चे साधकों को स्वर्ग के प्रति सर्वदा उदासीन रह एकमात्र मोक्ष की ही उत्कट अभिलापा करनी चाहिए।

अपनी व्यक्तिगत वासनाओं और कल्पनाओं के अनुरूप ही त्येक मानव निज के स्वर्ग की रचना करता है। सुख-भोग की ह कल्पना भी प्रत्येक व्यक्ति की अपनी ही होती है। ये सुख-ोग नित्य ही परिवर्तित होते रहते हैं। एक मद्यपी ऐसे स्वर्ग के वप्न देखता है जिसमें सुरावाही सरिताएँ हों; परन्तु एक संयमी ुदाचारी व्यक्ति के लिए ऐसा सुरा-प्लावित स्वर्ग नरक ही ुल्य होगा। एक तरुण स्त्रैण व्यक्ति के स्वप्निल स्वर्ग में देवाङ्ग-ाओं की, दिव्य-विमान तथा ललित नृत्य एवं संगीत के ायोजन की परिकल्पना रहती है; परन्तु वही तरुण व्यक्ति ब वृद्ध हो जाता है तब उसे स्त्री की इच्छा नहीं होती है। आपकी आवश्यकताएँ और वासनाएँ ही आपके स्वर्ग का सृजन करती हैं।

आत्मा में उपलब्ध सच्चे शाश्वत आनन्द का आपको कुछ भी पता नहीं है; क्योंकि आपका मन इन्द्रिय के विषय-भोगों में उलझ गया है और यही कारण है कि आप स्वर्ग की विलास-तरङ्गों से आलोड़ित रहते हैं। आत्मा के वास्तविक स्वरूप का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त कीजिए, तदनन्तर आपको स्वर्ग-सुख-भोग की लालसा नहीं रह जायेगी। आत्मा तो आनन्द का सागर है। यह आनन्द-सागर, यह आनन्द-निर्झर आपके अन्तस्तल में ही है। इन्द्रियों को अन्दर की ओर समेट लीजिए, अन्दर की ओर देखिए और अपने मन को आत्मा में लगाइए। इससे आपकी सभी प्रकार की इन्द्रिय-वासनाएँ विगलित हो जायेंगी और आप आनन्द-सागर में निमग्न हो जायेंगे।

आप स्वर्ग में कितने काल तक निवास करेंगे यह आपके किये हुए पुण्य कर्मों की मात्रा पर निर्भर करता है। यदि आप चाहें तो आप स्वर्गाधिपति इन्द्र बन सकते हैं। इन्द्र एक पदवी

है। पहले वाले इन्द्र वर्तमान कालीन इन्द्र नहीं हैं। असंख्य इन्द्र आये और चले गये।

क्लेश, शोक, निराशा, विफलता, सम्पत्तिनाश, रोग, प्रिय-जनों की मृत्यु इत्यादि सांसारिक परिस्थितियाँ मनुष्य को चारों ओर से घेर लेती हैं और उनसे मनुष्य जब क्लान्त-सा हो जाता है, तब वह एक ऐसे स्थान में जाने की सोचता है जहाँ पर दुःख और क्लेश का लेशमात्र भी न हो, जहाँ पर सदा सब प्रकार का सुख-ही-सुख विद्यमान हो, जहाँ वह अपने पितरों के साथ अविकल शरीर के साथ रह सके। इस भाँति वह मनुष्य स्वर्ग की रचना करता है। परन्तु देशकालावच्छिन्न इस सीमित जगत् में शाश्वत आनन्द भला कहाँ ? इस शाश्वत आनन्द और अमरता को आप केवल अपनी अन्तरात्मा में ही पा सकते हैं।

आप यहाँ पर जैसा जीवन व्यतीत कर रहे हैं, स्वर्ग का जीवन भी बहुत-कुछ वैसा ही है; हाँ अन्तर केवल इतना ही है कि स्वर्ग में सुख की मात्रा किञ्चित् अधिक होती है। आपकी वहाँ की जिन्दगी भले ही अधिक सुख-सुविधामय हो; परन्तु वह शाश्वत आनन्दमय अविनाशी जीवन तो नहीं है। इसके अतिरिक्त आपके पुण्य कर्मों के फल जब समाप्त हो जायेंगे तब आपको पुनः इस लोक में आना ही पड़ेगा। स्वर्ग शाश्वत धाम नहीं है। नाम-रूप विशिष्ट सभी पदार्थों का विनाश अवश्य-म्भावी है। आत्मा ही अमर एवं शाश्वत है और यही कारण है कि ऋषि और सत्यान्वेषी साधक स्वर्ग-सुख की कामना नहीं रखते।

वेदान्त का सिद्धान्त स्वर्ग को कोई विशेष महत्त्व नहीं देता है। वेदान्त हमें शिक्षा देता है कि स्वर्ग दृश्यमात्र एवं क्षण-

भङ्गुर है। कल्पना कीजिए कि एक पुण्यशाली जीव स्वर्ग में लाखों वर्ष तक निवास करता है; परन्तु वे लाखों वर्ष अनन्त काल के समक्ष कुछ भी मूल्य नहीं रखते।

प्रभु ईसा मसीह ने कहा था, "स्वर्ग का साम्राज्य आपके अन्दर है।" वेदान्त भी यही बात कहता है। अपनी अमर आत्मा के साक्षात्कार से सत्य एवं शाश्वत आनन्द प्राप्त किया जा सकता है। शाश्वत सुख आपके अन्दर है। आपकी अन्तरात्मा में ही अनवच्छिन्न आनन्द है। विषय पदार्थों से जो आनन्द आपको प्राप्त होता है, वह उस आत्मानन्द का आभासमात्र है, आत्मा के सत्य सनातन आनन्द का एक अंश है।

मनुष्य भगवान् का साक्षात् दर्शन करता है। वह भगवान् में रहता है। उसके और भगवान् के मध्य कोई अन्तराय, कोई विभेद नहीं रहता है। वह भगवान् के साथ परम पूर्ण एकताभाव से निवास करता है। वह सदा आनन्दमय रहता है। यही स्वर्ग है।

पारमार्थिक दृष्टि से न तो स्वर्ग है और न नरक। वे मन की सृष्टिमात्र हैं। आपका मन यदि सत्त्व गुण से सम्पन्न है तो आप स्वर्ग में ही हैं और यदि आपका मन तमोगुण और रजोगुण से अभिभूत है तो आप नरक में ही रह रहे हैं।

पुण्यशाली व्यक्ति, प्राणोत्सर्ग करने के अनन्तर, देवता बन कर स्वर्ग में निवास करता है और वहाँ नाना प्रकार के सुख भोगता है। स्वर्ग के अपने उस आवास-काल में वह वहाँ कोई नये कर्म नहीं करता है। स्वर्ग का निवास तो उसके पूर्वकृत पुण्य कर्मों का पारितोषिक है। देव-शरीर में वह जीवात्मा किसी भी नये प्रकार के कर्म नहीं करता है।

स्वर्ग की कल्पना को छोड़िए। स्वर्ग में शाश्वत सुख प्राप्त करने का विचार तो निरर्थक स्वप्न-सा है। यह तो

की-सी भोली बातें हैं। निदिध्यासन के द्वारा अपनी आत्मा में ही शाश्वत आनन्द को ढूँढ़िए। आप स्वयं नित्य-मुक्त अमर आत्मा हैं। आप स्वयं नित्य-शुद्ध, नित्य-आनन्द रूप हैं। अपने इस जन्म-सिद्ध अधिकार की माँग कीजिए। अपने मुक्त-स्वरूप की घोषणा कीजिए। आपका प्रकृत रूप नित्य-शुद्ध और नित्य-आनन्द है; वही आप बने रहें। देश, काल और कारण विशिष्ट सभी पदार्थ सीमित होते हैं। आत्मा सभी देश, काल और कारण से परे है। हे तात ! तुम वही (आत्मा) हो—'तत्त्वमसि'। इसका अनुभव प्राप्त कर सदा के लिए सुखी बनिए।

भगवान् बुद्ध कहते हैं : "यहाँ पर करोड़ों लोक हैं और इन सब से आगे सुखवती नाम का एक आनन्द लोक आता है। यह लोक क्रमशः अर्गला, प्राचीर और झूमते हुए वृक्षों की सात-सात पंक्तियों से आवृत है। अर्हतों के इस लोक में तथागत शासन करते हैं और बोधिसत्व यहाँ के निवासी हैं। इसमें सात सरोवर हैं जिनमें स्फटिक के समान निर्मल जल प्रवाहित होता रहता है। इन सब के जल में सात प्रकार के द्रव्य एवं गुण हैं; परन्तु प्रत्येक में एक अपना विशेष गुण भी होता है। हे सारि पुत्र ! यह देवयान है। इस लोक में अवस्थित उदम्बर वृक्ष का पुष्प सम्पूर्ण जगत् में छाया हुआ है वह, उन सबको सुगन्धि प्रदान करता है जो कि उसके पास तक पहुँचते हैं।"

५. नरक

वेद-वेदान्त में नरक का कोई उल्लेख नहीं है। केवल पुराण ही नरक की—यातना लोक की—चर्चा करते हैं। पारमार्थिक दृष्टि से तो न स्वर्ग है और न नरक। यह सब केवल

मन की कल्पना है; परन्तु सापेक्षिक दृष्टि से तो नरक उतना ही सत्य है जितना कि यह भौतिक जगत्। विवेकी व्यक्ति के लिए तो यह संसार भी नरक ही है।

ईसाई और मुसलमान शाश्वत नरक की बातें करते हैं; परन्तु अनन्त कालीन यातना के दण्ड का विधान सम्भव नहीं है। शाश्वत जीवन की तुलना में तो एक दुराचारी व्यक्ति के इहलौकिक जीवन की कोई गणना ही नही। 'पापी को अनन्त-कालीन नरकाग्नि की ज्वाला की यातना सहनी पड़ती है'—ऐसा यदि हम स्वीकार करें तो सीमित कारण मे असीम फल की प्रतिपत्ति होगी; परन्तु ऐसा होना सम्भव नही है।

नरक की विविध यातनाएँ, नरक तथा कथित सात विभाग-स्वर्ग और नरक को विभाजित करने वाला अल-हिरात आदि मुसलमानों की ये मान्यताएं यहूदियो की नकल-सी प्रतीत होती है।

स्वर्ग और नरक के विषय मे हिन्दू पौराणिको के विचार बहुत ही स्पष्ट हैं। याज्ञवल्क्य और विष्णु आदि स्मृतियों के स्मृतिकारों ने विविध नरकों का तथा स्वर्ग के विविध सुख-भोगों का बहुत ही गम्भीर विवेचन किया है। याज्ञवल्क्य ने अपनी स्मृति में रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, तामिस्र, अन्धतामिस्र इत्यादि इक्कीस नरकों के नाम दिये हैं। विष्णु—स्मृतिकार ने भी इन्ही की चर्चा की है। नरक लोक में तीक्ष्ण, उग्र तथा अन्य यातनाएँ हैं। यहाँ पापी जन एक निश्चित अवधि तक कष्ट भोगते हैं। इस भाँति यहाँ रह कर दुष्कर्मों के फल भोगे जाते हैं और तत्पश्चात् पापीजन भूलोक में पुनः आते हैं। उन्हें पुनः एक नया अवसर प्राप्त होता है।

नरक के शासक यमराज हैं। चित्रगुप्त इनके सहायक हैं। नरक एक स्थान-विशेष को कहते हैं जिसे यमदूतों ने एक दीवाल द्वारा इसके चारों ओर के प्रदेश से अलग कर रखा है। पापियों को यहाँ पर दण्ड-भोग के समय 'यातना-देह' प्राप्त होती है। जीवात्मा जब पुनः भूलोक में जन्म लेता है, तब उसे नरक-यातना की स्मृति नहीं रहती है। यह नरक की यातना जीवात्मा को सुधारने तथा उसे शिक्षा देने के लिए ही होती है। इसका शिक्षणात्मक प्रभाव अन्तःकरण में स्थायी रूप से बना रहता है। पाप-कर्म करते समय कितने ही व्यक्तियों के अन्दर जो एक भय-सा उत्पन्न होता है उसका कारण उनकी उत्कृष्ट चेतना है जो कि नरकाग्निकुण्ड में तप्त होकर विकसित हुई होती है। जीवात्मा को इससे यही चिरस्थायी लाभ प्राप्त होता है। नरकाग्नि में परिशुद्ध होने के अनन्तर जीवात्मा पूर्वापेक्षाकृत अधिक संवेदनशील चेतना के साथ जन्म लेता है। वह अपनी योग्यताओं को अब अपने आगामी जीवन में अधिक सदुपयोग कर सकेगा।

स्वर्ग अथवा नरक में भविष्य जीवन के विषय में यहूदियों की मान्यता सम्पूर्ण रीति से वैसी ही है जैसी कि हम ज़ेंद-अवेस्ता में पाते हैं। यह वहीं से अपनायी गयी है। यहूदियों और पारसियों के नरक और उसके सात उपविभागों के विवरण में समानता है। अनन्त कालीन उपहार अथवा अनन्त दण्ड के सिद्धान्त के विषय में यहूदियों की मान्यता भी ज़ेंदअवेस्ता से ही अपनायी गयी है। उष्टवैती की गाथा कहती है: "पुण्य-शाली पुरुष की जीवात्मा अमरत्व प्राप्त करती है; परन्तु पापी पुरुष की जीवात्मा दण्ड भोगती है।" आहुरमज़्द का ऐसा ही नियम है। ये सभी प्राणी उसी के हैं।

यदि मन रजोगुण और तमोगुण से आपूरित है, तो यह नरक ही है। यह स्थूल शरीर कारागार अथवा नरक है। जप और ध्यान के अभ्यास बिना इस मांस-पिञ्जर में निवास करना नरक है।

शोकार्त्त हृदय से अपने पापों के लिए पश्चात्ताप करना सर्वोत्तम प्रायश्चित्त है। पश्चात्ताप से पाप के कुप्रभाव जाते रहते हैं। उपवास, दान, तप, जप, ध्यान और कीर्त्तन—ये सभी पापों को विनष्ट कर डालते हैं। इस भाँति मनुष्य नरक के दुःख से परित्राण पा सकता है।

भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं: "आत्मा के नाश (पतन) करने वाले काम, क्रोध और लोभ—ये नरक की प्राप्ति के तीन द्वार हैं। अत. इन तीनों को छोड़ देना चाहिए।"

(गीता १६-२१)

काम, क्रोध और लोभ के वशीभूत हो आप अनेक बुरे कर्म कर बैठते हैं। यदि आप इन तीनों बुरी वृत्तियों का दमन कर लें तो आप शाश्वत शान्ति का उपभोग करेंगे। इनकी विरोधी वृत्तियों का—शुचिता, क्षमा और उदारता का अर्जन कीजिए। इससे ये बुरी वृत्तियाँ स्वय ही समाप्त हो जायेंगी।

६. कर्म और नरक

अविद्या तथा काम के वशीभूत होकर जीव जो निषिद्ध कर्म करता है, उनके परिणामों को भोगने के लिए अनेक तरह के नरक हैं। श्रीमद्भागवत में अट्ठाईस प्रकार के नरकों का वर्णन है, जिन्हें जीव अपने कर्मों की गति के अनुसार प्राप्त करता है।

इनमें एक तामिस्र नामक नरक है। जो पुरुष दूसरों के धन, सन्तान अथवा स्त्रियों का अपहरण करता है, वह इस नरक में पड़ता है। कालपाश से बाँध कर बलात्कार से अन्धकारमय नरक में गिरा दिया जाने से जीव को यहाँ असह्य वेदना होती है। यहाँ उसे अन्न-जल नहीं मिलता है। उस पर डण्डों की मार पड़ती है और भय दिखाया जाता है। इससे अत्यन्त दुःखी होने के कारण वह मूर्च्छित हो कर गिर पड़ता है।

दूसरे नरक को अन्ध-तामिस्र कहते हैं। जो पुरुष दूसरे को धोखा दे कर उसकी स्त्री तथा अन्य सम्पत्ति को भोगता है, वह यातनाओं को भोगने के लिए इस नरक में डाला जाता है। यहाँ अतीव पीड़ा के कारण जीव अपनी चेतना और सूझबूझ को खो बैठता है और जड़ से कटे वृक्ष की भाँति दुःखी होता है।

जो पुरुष 'यह शरीर मैं हूँ और संसार की सम्पत्ति मेरी सम्पत्ति है'—ऐसा सोचते हैं, वे रौरव नरक में पड़ते हैं। जो इस लोक में प्राणियों को कष्ट पहुँचाते हैं, वे इस भयावह रौरव लोक में रुरु नामक विषैले जीव से पीड़ित होते हैं।

महारौरव नरक भी ऐसा ही है। जो लोग विषय-भोग में लीन रहते हैं, उन्हें यहाँ माँसाहारी हिंसक पशु खाते हैं।

जो क्रूर और निर्दयी पुरुष जीवित पशु अथवा पक्षियों को पकाता और खाता है, उसे भयङ्कर यमदूत कुम्भीपाक नरक में ले जा कर खौलते हुए तेल में उबालते हैं।

जो मनुष्य धर्मात्मा, ब्राह्मण और माता-पिता की अवज्ञा करता है, वह कालसूत्र नरक में डाला जाता है। वह एक ऐसे तप्त ताँबे के तवे के ऊपर रखा जाता है जिसका घेरा चालीस हजार मील है और जो ऊपर से सूर्य और नीचे से अग्नि के

दाह से झुलसता रहता है। यहाँ भूख-प्यास से व्याकुल हो वह अकथनीय कष्ट झेलता है।

असिपत्रवन नाम का एक नरक है। इस वन के वृक्षों की पत्तियाँ तलवार के समान पैनी होती हैं। जीव को इस वन से भगाया जाता है और पशु की तरह आहत होता है। जो अपने वैदिक धर्म को छोड़ कर पाखण्डपूर्ण धर्मों का आश्रय लेता है, उसे इस नरक में डाला जाता है। कितनी दयनीय अवस्था है! वह इधर-उधर भागता है जिससे उसके अङ्ग तलवार के समान तीक्ष्ण पत्तों से क्षत-विक्षत होने लगते हैं। जीव चिल्लाता है, 'हाय मैं मरा' और वेदना से मूर्च्छित हो गिर पड़ता है।

जो राजा किसी निरपराध मनुष्य को दण्ड देता है अथवा ब्राह्मण को शरीर-दण्ड देता है, वह सूकरमुख नरक में गिरता है। वहाँ उस पापी के अङ्गों को कोल्हू में पेरे जाते हुए गन्ने के समान कुचलते हैं। वह आर्तस्वर में चिल्लाता है; किन्तु कोई उसकी सहायता नहीं करता है।

जो पुरुष समाज में सम्मान्य पद पा कर दूसरे व्यक्तियों को उत्पीडित करता है, वह अन्धकूप नरक में पडता है। वहाँ अनेक प्रकार के भयङ्कर पशु, सर्प आदि उस जीव को अन्धकार में चारों ओर से काटते हैं। यहाँ उसे भविष्य में ऐसे कुत्सित कर्म न करने की शिक्षा मिल जाती है।

जो द्विजाति पञ्चमहायज्ञ का नित्य अनुष्ठान नहीं करता, जो-कुछ मिले उसे बिना दूसरों को दिये स्वयं ही उपभोग करता है, उसे कौआ ही कहना चाहिए। वह कृमिभोजन नामक नरक में गिरता है जहाँ वह कीड़ों को खाता है। वह कीड़ों के एक बहुत बड़े विस्तृत कुण्ड में गिरता है और वे कीड़े जीव को चारों ओर से तङ्ग करते हैं।

जो पुरुष किसी ब्राह्मण अथवा निर्धन का धन आदि अपहरण करता है और इस भाँति अकारण ही उसे कष्ट पहुँचाता है, वह सन्दंश नरक में पड़ता है। वहाँ उसे तपायी हुई सँड़सी से नोचते हैं और धधकते हुए लोहे के गोलों से उसे मारते हैं।

जो पुरुष अथवा स्त्री अपने आश्रित निरपराध सेवकों और श्रमिकों की दयनीय अवस्था पर दया नहीं करता है और न उनकी सहायता करता है, बार-बार उन्हें गाली देता है, वह तप्तसूर्मि नाम नरक में पड़ता है। वहाँ वह बड़ी ही क्रूरता से पीटा जाता है तथा उसे पुरुष अथवा स्त्री की तपायी हुई प्रतिमा से आलिङ्गन कराते हैं। जो पराये पुरुष अथवा स्त्री से व्यभिचार करता है, उसे भी यही दण्ड मिलता है।

जो पुरुष काम के वश हो कर पशु आदि सभी प्राणियों के साथ व्यभिचार करता है, उसे वज्रकण्टक शाल्मली नरक में डाला जाता है। उसे उस नरक-प्रदेश में घसीटते हैं।

जो राजा या राजपुरुष धर्म की मर्यादा का अतिक्रमण करता है, वह मरने पर वैतरणी नदी में पड़ता है। वहाँ गिरने पर जल के जीव उसे काटते हैं, किन्तु इससे उसका शरीर नहीं छूटता। पाप कर्म के कारण प्राण उसे वहन किये रहते हैं। यह नदी मल, मूत्र, पीव, रक्त, केश, नख, हड्डी, चर्बी, मांस, मज्जा आदि से भरी हुई है।

जो पुरुष श्रेष्ठ कुल में जन्म लेकर शूद्रा स्त्री के साथ सम्बन्ध कर, लज्जा को तिलाञ्जलि दे पशुवत् जीवन व्यतीत करता है, वह मरने के पश्चात् पीव, विष्ठा, मूत्र, कफ से भरे हुए पूयोद नामक नरक में पड़ता है और उन अत्यन्त घृणित वस्तुओं को ही खाता है।

जो ब्राह्मण और अन्य वर्ण के लोग कुत्ते या गधे पालते हैं

और शास्त्र की मर्यादा का उच्छेद कर पशुओं का आमेट करने में आमोद मानते हैं, वे मरने के बाद प्राणरोध नरक में पड़ते हैं। यमदूत उन्हें अपने बाणों का लक्ष्य बना कर बींधते हैं।

जो पुरुष क्रूरता से पशुओं का वध करते हैं, वे विशसन नरक में पशु की तरह जन्म लेते हैं। वहाँ उनके साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जाता है।

जो द्विज कामातुर हो कर अपनी सवर्णा पत्नी को वीर्य पान कराता है, उस पापी को लालाभक्ष नामक वीर्य की नदी में डाल कर वीर्य पिलाया जाता है।

जो कोई व्यक्ति, राजा अथवा राजपुरुष किसी के घर में आग लगाता है, किसी को विष देता है अथवा गाँव या व्यापारियों की टोलियों को लूटता है, मरने के पश्चात् वह सारमेयादन नरक मे पडता है। वहाँ भयङ्कर दाँत वाले सात सौ बीस कुत्ते उसे वेग से काटते है।

जो पुरुष किसी की गवाही देने में अथवा दान के समय झूठ बोलता है, वह अवीचिमान नरक मे पडता है। यहाँ खड़े होने के लिए कोई आधार नही है। वहाँ जीव को चार सौ मील ऊँचे पर्वत-शिखर से सिर के बल धकेला जाता है। इस नरक मे कठोर पत्थर की भूमि भी जल के समान जान पड़ती है। इस भाँति जीव और भी अधिक भ्रम में पडता है। यद्यपि उसके शरीर के टुकड़े-टुकडे हो जाते हैं, फिर भी प्राण नही निकलते। उसे बार-बार ऊपर ले जा कर पटका जाता है।

जो ब्राह्मण मद्यपान करता है अथवा अविहित भोजन करता है, उसे अय.पान नरक मे गलाया हुआ लोहा पान करना पड़ता है। जो वर्णाश्रम-धर्म का उल्लङ्घन करता है, उसे यहाँ उचित दण्ड मिलता है।

जो पुरुष निम्न श्रेणी का होकर भी अपने को बड़ा मानता है, किन्तु जन्म, आश्रम अथवा विद्या में अपने से जो वास्तव में बड़े हैं उनका आदर-सत्कार नहीं करता, वह जीते ही मरे के समान है। उसे मरने पर अनन्त पीड़ाएँ भोगने के लिए क्षारकर्दम में नीचे सिर करके गिराया जाता है।

जो पुरुष नरमेध के द्वारा देवताओं का योजन करते हैं, वे रक्षोगण भोजन नामक नरक में डाले जाते हैं। वहाँ उन्हें राक्षसगण टुकड़-टुकड़े करके काटते और खाते हैं। फिर भी वे मरते नहीं, यातनाएँ ही भोगते रहते हैं।

जो दुष्ट पुरुष अपने शरणागतों को, उनकी शरण में पड़े रहने के कारण तरह-तरह की पीड़ाएँ देते हैं, मरने पर वे शूलप्रेत नामक नरक में पड़ते हैं। वहाँ वे भूख-प्यास से पीड़ित होते हैं। चारों ओर से तीखे अस्त्रों से वे बींधे जाते हैं जिससे उन्हें अपने किये हुए सारे पाप याद आ जाते हैं।

जो लोग सर्पों के समान उग्र स्वभाव वाले होते हैं और दूसरे जीवों को पीड़ा पहुँचाते हैं, वे मरने पर दन्दशूक नाम के नरक में पड़ते हैं। वहाँ पाँच-पाँच और सात-सात फण वाले सर्प उन पर आक्रमण करते हैं और भय से उन्हें मृतप्राय बना देते हैं, फिर भी वे मरते नहीं।

जो पुरुष दूसरे प्राणियों को अँधेरी कोठरियों और गुफाओं में डाल देते हैं, वे मरने पर आग और धूँएँ से भरे हुए वैसे ही अन्धकारपूर्ण अवट-निरोधन नरक में जाते हैं।

जो गृहस्थ अपने अतिथि-अभ्यागतों की ओर क्रोधभरी ऐसी कुटिल दृष्टि से देखते हैं, मानो उन्हें भस्म कर देंगे, मरने के

बाद पर्यावर्तन नरक में वज्र के समान चोंचों वाले गृद्ध उनके नेत्रों को निकाल लेते हैं।

जो धनवान् होकर सभी पर चोर होने का सन्देह रखता है और जो सदा चिन्तित मन से यक्ष के समान धन की रक्षा करता है, वह मरने पर अन्धकार और विष्ठा से पूर्ण, जल-रहित सूचीमुख नाम के नरक में गिरता है।

यमलोक में इसी प्रकार के सैकड़ों-हजारों नरक हैं, जिनका वर्णन यहाँ सुगमता से नहीं किया जा सकता। जिनका यहाँ उल्लेख हुआ है, वे तो अधर्म-परायण जीवों की यातनाओं के कुछ नमूने हैं।

जो पुरुष अपनी इन्द्रियों का संयम करता है, जो निवृत्ति मार्ग अनुसरण करता है, जो भगवद्-ध्यान में लीन रहता है, जो सदाचारी, दयालु और उदार है, जो विषय-जगत् की रञ्च-मात्र भी इच्छा नहीं करता, जो मोक्ष साधन में तत्पर है, वह फिर जन्म नहीं लेता। धर्मात्मा पुरुष स्वर्ग लोक को जाते हैं और अन्य लोग, यदि इस लोक में जन्म नहीं लेते तो इन नरकों में से किसी एक में पड़ते हैं।

७. असूर्य लोक

नरक एक ऐसी अवस्था है जिसमें मनुष्य भगवान् से परम वियोग का अनुभव करता है, जिसमें वह भगवान् के प्रेम, पवित्रता और सत्यता की ज्योति का अनुभव नहीं कर पाता है। यह असूर्य, सूर्य-रहित, लोक है। मनुष्य जानबूझ कर, दौर्मनस्य तथा पश्चात्ताप की भावना से रहित होकर जो पाप करता है, उनकी प्रतिक्रिया तथा प्रतिकार-स्वरूप वह यहाँ पूर्ण अव्यवस्था, अन्धकार तथा दुःख को प्राप्त होता है।

पापियों के लिए अनन्त कालीन दण्ड अथवा अनन्त कालीन

अग्नि जैसी कोई वस्तु नहीं है। ऐसा कदापि नहीं हो सकता है। इस सिद्धान्त का बहुत पहले ही भण्डाफोड़ हो चुका है। अनन्त कालीन दण्ड एक अनीश्वरीय सिद्धान्त है। यह युग-युगान्तरों से लोगों के लिए भयजनक तथा दुःस्वप्न-सा बना रहा है। मनुष्य को पापकर्म से उपरत करने के लिए ही नरक का इतना भयावह चित्रण किया गया है। नरक एक भयानक शब्द है।

ईश्वर ने मनुष्य की रचना इस हेतु से नहीं की कि वह निरन्तर नरकाग्नि का ईंधन बना रहे। निश्चय ही इस सृष्टि के रचने में भगवान् का ऐसा कोई प्रयोजन नहीं है। यदि भगवान् ऐसा हो तो भला कौन उसे अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करे? भला तब कौन व्यक्ति बच सकता है? इस संसार में निष्कलङ्क व्यक्ति कितने हैं? ऐसा कौन निर्दोष चरित्र का व्यक्ति है जिसे स्वर्ग में सीधे प्रवेश करने का पार-पत्रक मिल सके?

यदि यह सत्य है तो सभी पण्डित, शास्त्री, आचार्य, पुरोहित, धर्मोपदेशक, पोप, पादरी—यहाँ तक कि सारे संसार के सभी मनुष्यों को नरकाग्नि में झुलसना पड़ेगा।

८. यमलोक का मार्ग

सबसे नीच एवं अधम कोटि के पापियों के सम्मुख विकराल रूप धारण किये हुए यम के दो दूत आ धमकते हैं और पापी जीवात्मा को यमपाश में बाँध लेते हैं। उनके भय से त्रस्त हो उसके मूत्र निकल पड़ता है। यम-मार्ग का कष्ट भोगने के लिए उसे एक विशेष शरीर—यातना-देह—मिलता है। यमदूत रस्सियों से जकड़ कर उसे बाँध लेते हैं और सुदूर पथ से बलपूर्वक घसीटते हुए उसे संयमनी नगर की ओर ले चलते हैं।

इस मार्ग में वृक्ष की छाया नहीं होती है। न तो यहाँ आहार है और न जल ही। यहाँ पर नित्य द्वादश सूर्य तपते रहते हैं। पापी जीव जब इस मार्ग मे चलता है तो कहीं तो उसका शरीर शीत-वायु से विद्ध होता है और कहीं पर पथ के कण्टकों से विदीर्ण होता है। एक स्थान मे वह अत्यन्त विषैले सर्पों और विच्छुओं से दंशित होता है और किसी एक अन्य स्थान में वह अग्नि से जलता है।

भग्नहृदय वह जीवात्मा मार्ग में क्रूर यमदूत की धमकियों से कम्पायमान होता है। निर्दयी कुत्ते उसे काट खाते हैं। उसे भूतकाल में किये हुए अपने पाप कर्मों की स्मृति होती है। वह तृषा और क्षुधा से व्यथित होता और प्रचण्ड सूर्य से तप्यमान होता है। उसे तप्त अरुण बालुका मे चलना पड़ता है। पीठ पर कठोरता से आघात किये जाने पर जब वह अर्द्ध मूर्च्छित-सा हो गिरने लगता है तब यमदूत उसे पुन उठने के लिए विवश करते हैं और उसे यमराज के धाम की ओर घसीट ले जाते हैं। वहाँ उसे चिरकाल तक कष्ट-भोग का दण्ड मिलता है। इसके अनन्तर वह जीव क्षुद्रतम योनियों मे जाता है और उनमें विकास-क्रम के अनुसार उन्नत होता हुआ सूअर, कुत्ता आदि योनियों मे आता है। इस भाँति इन योनियों के कष्ट-ताप क्रिया से वह क्रमिक रूप से शनैः शनैः शुद्ध होकर अन्ततः मानव योनि को प्राप्त होता है।

इस नरक में पापी जीव कहीं अन्ध कूप मे गिरता है तो कहीं पर्वत के उच्च शिखर से नीचे आ पड़ता है। कहीं पर वह तलवार की तीक्ष्ण धार पर अथवा शूल के पैने नोंक पर चलता है। किसी स्थान में वह घोर अन्धकार मे लडखडा कर जल में जा गिरता है। कहीं पर वह जोंकों से भरे हुए कीचड़ में, कहीं पर तप्त करेली मिट्टी मे, कहीं पर पिघले हुए शीशे

के तप्त रेत में और कहीं पर धधकते हुए अङ्गारों में चलता है। कहीं उस पर अङ्गारे बरसते हैं तो कहीं पर शिला, वज्र, अस्त्र-शस्त्र अथवा खौलते हुए जल की उसके ऊपर वृष्टि होती है।

मार्ग में रुधिर तथा पूय से परिपूर्ण अति-भयावह वैतरणी नदी पड़ती है। इसे पार करना बहुत ही दुष्कर है।

यमदूत पापीजन पर हथौड़ों से प्रहार करते हैं और यम-पाश में बाँध कर उसे घसीटते हैं। उसके पुत्र प्रतिमास जो पिण्डदान करते हैं, वही उसे वहाँ खाने को मिलता है। उसका पुत्र यदि गो-दान करता है तो उसे वैतरणी नदी पार करने के लिए एक नौका मिल जाती है।

एक वर्ष के अन्त में वह यम के धाम में पहुँच जाता है। यम-राज चित्रगुप्त से उसके पाप के विषय में पूछते हैं और चित्र-गुप्त ब्रह्मा के पुत्र श्रवणों से उसके पाप के विषय में पता करते हैं; क्योंकि इन श्रवणों को सभी पुरुषों के कर्म का ज्ञान होता है। श्रवणों की पत्नियों को स्त्रियों के सभी पाप-कर्मों का ठीक-ठीक पता होता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अन्तः-करण, यम, दिवा-रात्रि, दोनों सन्ध्याएँ, धम, सूर्य और चन्द्रमा—ये मनुष्य के कर्मों को जानते हैं।

धर्मराज यम पापियों को समुचित दण्ड निर्धारित करते हैं और तब यम के दूत उन्हें तदनुरूप नरक में ले जा कर यातना देते हैं। यहाँ यम के दूत इन पापियों पर बारम्बार अपने शूल, गदा, मूसल आदि अस्त्रों से प्रहार करते हैं।

अपने जीवन-काल में जो व्यक्ति पुण्यार्जन करते हैं, वे पुण्यात्मा जन दिव्य विमान में बैठ कर स्वर्ग के उद्यान में जा पहुँचते हैं, परन्तु पापीजन को उनके पापों के दण्ड-स्वरूप कण्टक, शूल तथा झाड़-झङ्खार से आकीर्ण पथ द्वारा जाना

यहाँ पर न शोक है न जरा, न क्षुधा है न तृषा, न अरोचकता है और न दुःख आदि ही हैं। इस सभा में किसी प्रकार का क्लेश नहीं है। यहाँ दिव्य अथवा लौकिक, सभी प्रकार के काम्य पदार्थ तथा मधुर, रसीला, रुचिकर, स्वादिष्ट पदार्थ तथा खाद्य, लेह्य, चोष्य, पेय इत्यादि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। यहाँ पर धारण किये जाने वाले पुष्प-हारों में बहुत ही भीनी सुगन्ध होती है। यहाँ के वृक्ष सभी प्रकार के ऐच्छिक फल उत्पन्न करते हैं।

यहाँ पर शीत और उष्ण दोनों प्रकार का जल है जो कि मधुर और अनुकूल है। उस सभा में पवित्र राजर्षिगण और निष्पाप ब्रह्मर्षिगण रहते हैं। त्रसदस्यु, कृतवीर्य, श्रुतश्रवा, ध्रुव इत्यादि राजर्षिगण यहाँ होते हैं। इनके अतिरिक्त मात्स्य-वंश के एक सौ, नेप वंश के सौ, हुय वंश के सौ, धृतराष्ट्र नाम के सौ, जनमेजय नाम के अस्सी, ब्रह्मदत्त नाम के सौ, इरी और अरी नाम के सौ, भीष्म नाम के दो सौ, भीम नाम के सौ, प्रतिविन्द नाम के सौ, नाग नाम के सौ और हय नाम के सौ राजा रहते हैं। ये सभी प्रसन्न मुद्रा से यमराज की सेवा में उपस्थित रहते हैं।

ये राजर्षिगण सभी सिद्धियों में तथा शास्त्रों में निपुण होते हैं और वे यमराज की सभा में विद्यमान रहते हैं। अगस्त्य, मलङ्ग, काल, यज्ञयागादि क्रिया करने वाले, साध्य, योगी, जीवन्त पितरगण, काल-चक्र, यज्ञाहुति-वाहक अग्नि इत्यादि वहाँ होते हैं। इनके अतिरिक्त पापी जन, दक्षिणायन में मरने वाले सभी प्राणी, सभी प्राणियों की निश्चित आयु की गणना रखने वाले यमराज के कर्मचारी, कश और कुश वृक्ष तथा सभी वृक्ष और वनस्पति अपने दिव्य रूप में यमराज की सभा

में रहते है। ऊपर बतलाये हुए ये सब लोग तथा और भी कई अन्य लोग यमराज की सभा में रहते है। उनकी सङ्ख्या इतनी अधिक है कि उन सबका उल्लेख यहाँ नहीं हो सकता है। यह सभा अपनी इच्छा से कहीं भी जा सकती है। यह बहुत ही विशाल और सुन्दर है। दीर्घकाल तक तपश्चर्या करने के पश्चात् विश्वकर्मा ने इसकी रचना की थी। यह अपनी आभा से स्वयं प्रकाशमान है। उग्र तपस्या करने वाले तपस्वी, उत्तम व्रती, सत्यवादी, पवित्र तथा शान्त मन वाले तथा पवित्र कर्म-सम्पादन द्वारा शुद्ध-हृदय वाले व्यक्ति यहाँ पर रहते है। इन सबके शरीर देदीप्यमान होते है। निर्मल वेशभूषा धारण करते तथा भुजबन्द एव रत्नहार से सुसज्जित होते है। उनके पुण्य कर्म उनके साथ होते है तथा वे अपनी श्रेणी को प्रकट करने वाले चिह्न धारण करते हैं।

अनेक प्रख्यात गन्धर्वों तथा अप्सराओ के नृत्य वाद्य, सङ्गीत तथा हास-परिहास से सभा का कोना-कोना झकृत रहता है। दिव्य सुगन्ध, मधुर शब्द तथा दिव्य पुष्प-मालाओं की यहाँ पर प्रचुरता है यहाँ पर सृष्टिजात सभी प्राणियो के आराध्यदेव यमराज के पास दिव्य सौन्दर्य और महान् प्रतिभासम्पन्न सहस्रों पुण्यशाली व्यक्ति उपस्थित रह कर उनका पूजन करते रहते है।

११· इन्द्रलोक

शक्र की दिव्य सभा प्रकाशमान है। यह इन्द्र को उनके पुण्यकर्मों के परिणाम स्वरूप प्राप्त हुई है। इस सभा को स्वयं इन्द्र ने सूर्य के समान प्रकाशमान बनाया है। इसकी लम्बाई डेढ़ सौ योजन, चौड़ाई एक सौ योजन और ऊँचाई पाँच योजन है। यह इच्छानुसार कही भी जा सकती है।

यहाँ से जरा, शोक, भय और क्लेश दूर रहते हैं। यह सुखकर तथा शुभकर है। इसमें विशाल खण्ड और आसन बने हुए हैं। यह दिव्य वृक्षों से सुशोभित है और बहुत ही रमणीय प्रतीत होती है। इस सभा में एक उच्चासन पर देवराज इन्द्र सौन्दर्य और लक्ष्मी-रूपा अपनी पत्नी शची के साथ विराजते हैं। उनका रूप अवर्णनीय तथा अद्भुत है। उनके शिर पर मुकुट और बाहों में भुजबन्ध हैं। वे शरीर पर शुद्ध शुभ्र वस्त्र धारण करते हैं तथा अनेक रङ्गों की पुष्पमालाओं से वे अलंकृत हैं। इन्द्र के वाम पार्श्व में सौन्दर्य, कीर्त्ति और विनय की मूर्त्ति शची देवी विराजती हैं।

शतक्रतु इन्द्र की सेवा में मरुतगण, सिद्ध, देवर्षि, साध्य तथा देव रहते हैं। सुन्दर रूप वाले ये मरुतगण सोने का हार धारण करते हैं। ये तथा इनके अनुचर दिव्य वस्त्रालङ्कारों से सुसज्जित हो शत्रु-पीड़क देवराज इन्द्र की नित्य-प्रति सेवा-पूजा करते हैं।

शुद्धात्मा देवर्षिगण, जो अग्नि के समान तेजस्वी हैं, जिनके सभी पाप पूर्णतः धुल चुके हैं, जो ओज-शक्ति से पूर्ण हैं, जो शोक तथा भय से मुक्त हैं, जो सोमयज्ञ करते हैं—ये सभी तथा पराशर, पर्वत, सावर्णि, दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, उद्दालक इत्यादि ऋषि इन्द्र की स्तुति करते हैं। इनमें से कईएक तो माता के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं और कईएक स्त्री के गर्भ से न उत्पन्न हो कर मानस-पुत्र हैं। इनमें से कुछेक वायु के ऊपर और कुछेक तैजस् पदार्थ के ऊपर जीवन निर्वाह करते हैं। ये ऋषि वज्रायुध-धारी लोक-पाल इन्द्र की स्तुति करते रहते हैं। सहदेव, सुनीथ, शमिक, हिरण्यगर्भ, गर्ग इत्यादि मुनिगण दिव्य जल तथा वनस्पति, श्रद्धा, धी, सरस्वती आदि देवियाँ धर्म, अर्थ तथा काम, विद्युत्, मेघ, पवन, घनघोष, प्राची दिशा, हव्य-

वाहक सत्ताईस अग्नियाँ, अनल, सोम, इन्द्राग्नि, मित्र, सविता, अर्यमा, भग, ग्रह, नक्षत्र और तारागण, यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले मन्त्र—ये सभी इन्द्र की सेवा में सदा उपस्थित रहते हैं।

बहुत-सी रमणीय अप्सराएँ तथा गन्धर्व गण अपने-अपने विविध प्रकार के नाच-गान, कण्ठ तथा वाद्य के सङ्गीत तथा अन्य अनेक प्रकार के कला-कौशल प्रदर्शित कर स्वर्गाधिप इन्द्र को प्रसन्न रखते हैं। राजर्षि, ब्रह्मर्षि तथा देवर्षिगण विविध प्रकार के दिव्य वाहनों पर आसीन हो तथा पुष्पमालाओं और अलङ्कारों से सुसज्जित हो इन्द्र-सभा में आते-जाते रहते हैं।

बृहस्पति तथा शुक्राचार्य भी यहाँ सभी अवसरों पर उपस्थित रहते हैं। इनके अतिरिक्त अनेक दृढ़व्रती महर्षिगण तथा ब्रह्मा के समान तेजस्वी भृगु और सप्तर्षिगण सोम-रथ के समान अलौकिक विमानों में बैठ कर इन्द्र की सभा में आते-जाते रहते हैं। इस सभा का नाम पुष्करमालिनी है।

१२ वरुणलोक

वरुण की दिव्य सभा अद्वितीय है। यम-सभा के बराबर ही इस सभा का विस्तार है। यह स्फटिक की धवल दीवालों और वृत्तखण्डों से सुशोभित है। विश्वकर्मा ने इस नगर की रचना जल के अन्दर की है। इसके चतुर्दिक हीरे और मणियों के दिव्य वृक्ष लगे हुए हैं, जिनमें बहुत ही सुन्दर फल-फूल उत्पन्न होते हैं। नील,पीत, श्याम, श्वेत तथा अरुण पुष्प वाले पौदों के परस्पर मिलने से कुञ्जें बन गये हैं जिनमें सैंकड़ों और सहस्रों जाति के रङ्ग-विरङ्गे पक्षी मधुर कलरव करते रहते हैं।

यह सभा बहुत ही आह्लादकारी है। यहाँ पर न तो शीत है और न उष्णता ही। इसका शासन वरुण देव करते हैं। इस सभा में कई खण्ड हैं जिनमें सुन्दर आसनों की व्यवस्था की

गयी है। यहाँ पर वरुण देव अपनी रानी (वारुणी) के साथ दिव्य वस्त्रालङ्कारों से सुसज्जित हो विराजते हैं। आदित्यगण वरुण की सेवा में उपस्थित रहते हैं। उनके शरीर पर दिव्य सुगन्धित द्रव्य और चन्दन का लेप लगा रहता है।

वासुकी, तक्षक, जन्मेजय इत्यादि नाग धैर्यपूर्वक वरुण देव की सेवा में उपस्थित रहते हैं। ये नाग सुन्दर चिह्न धारण करते हैं और इनके मण्डल और विशाल फण भली प्रकार शोभायमान होते हैं। विरोचन के पुत्र वलि, संग्रोध, कलकपञ्ज नाम वाले दानव, सुहनु, पितर, दशग्रीव इत्यादि पाशधारी वरुण देव की सेवा में उपस्थित रहते हैं। ये सब कानों में कुण्डल, गले में पुष्पहार, शिर पर मुकुट और शरीर पर दिव्य वस्त्र धारण किये होते हैं। इन्हें वर-प्राप्त हुआ होता है। इनमें महान् शौर्य तथा अमरत्व होता है। ये सब शुद्धाचार धर्मात्मा तथा सुव्रती होते हैं। चारों महासागर, भागीरथी, कालिन्दी, विदिशा, वेणु, वेगवती, नर्मदा, चन्द्रभागा, सरस्वती, इरावदी, सिन्धु, गोदावरी, कावेरी, वैतरणी, सोन, सरयू, अरुणवर्णा महानदी, गोमती तथा अन्य सरिताएँ, तीर्थ, सरोवर कूप, वापी, प्रपात—ये सब जलाशय मूर्त्तरूप से वहाँ विद्यमान होते हैं। स्वर्ग की दिशाएं, पृथ्वी, सभी पर्वत तथा सभी प्रकार के जलचर वरुण देव की सेवा में उपस्थित रहते हैं। वाद्य और गीत कलानिपुण अप्सरा और गन्धर्व वरुण देव की स्तुति करते हुए उनकी सेवा में उपस्थित रहते हैं। रत्न तथा हीरों से सम्पन्न सभी पर्वत वहाँ उपस्थित होकर सुन्दर वार्त्तालाप में संलग्न रहते हैं। वरुण का मन्त्री सुनव अपने पुत्र-पौत्रों के साथ तथा गो नाम से प्रसिद्ध पुष्करतीर्थ के साथ वरुण देव की सेवा में उपस्थित रहते हैं। ये सब दिव्य रूप धारण कर वरुण देव की पूजा करते हैं।

१३. कुवेर लोक

वैश्रवण (कुवेर) के दिव्य सभामण्डप की लम्बाई एक सौ योजन और चौड़ाई सत्तर योजन है। अपने तप के प्रभाव से कुवेर ने स्वयं इस सभा की रचना की थी। वह कुवेर लोक कैलास के शिखर-सा प्रतीत होता है। यह चन्द्रमा से भी बढ़ कर प्रकाशमान है। गुह्यक लोग इसे इस प्रकार धारण किये हुए हैं; मानो यह आकाश में लटक रहा है। इसमें स्वर्ण-निर्मित अनेक दिव्य विशाल राजभवन हैं जिससे यह अत्यन्त सुन्दर लगता है।

यह कुवेर-सभा बहुत ही रमणीक है। यह दिव्य सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित तथा अनेक बहुमूल्य मणियों से सुशोभित है। श्वेताभ्र-खण्डशिखर के समान यह सभा गगन-मण्डल में हिलोरें-सी लेती हुई प्रतीत होती है। दिव्य स्वर्णिम रङ्गों से रञ्जित यह ऐसी दृष्टिगोचर होती है मानो तड़ित-रेखाओं से इसका शृङ्गार किया गया है। यहाँ पर सूर्य के समान देदीप्यमान एक भव्य सिंहासन है, जिस पर दिव्य चादरें बिछी हुई हैं और उसके नीचे सुन्दर पाद-पीठ रखे हुए हैं। सुन्दर बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित तथा कानों में चमकते हुए कुण्डल धारण किये हुए परम सौन्दयशाली राजा कुवेर अपनी एक सहस्र पत्नियों के साथ इस आसन पर विराजते हैं।

मन्दार-वृक्ष के सघन उपवनों से बहता हुआ शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु मल्लिका की क्यारियों से अलका नदी के क्रोड में उत्पन्न नीरज पुष्पों से तथा नन्दन वन की पारिजात-कलिकाओं से सुगन्ध लाकर कुवेर भगवान् की अर्चना करता है।

देवता गण यहाँ पर अनेक प्रकार की अप्सराओं से परिवृत गन्धर्वों के साथ दिव्य मधुर राग अलापते हैं। मिश्रकेशी, रम्भा

उर्वशी, लता तथा नृत्य-गान में कुशल अन्य सहस्रों अप्सराएँ धनपति कुबेर की सेवा में उपस्थित रहती हैं। वाद्य-सङ्गीत की मधुर राग-रागिनी तथा अनेक गन्धर्वों तथा अप्सराओं के नाच से यह सभा बहुत ही मनोरम तथा सुहावनी लगती है।

सहस्रों की सङ्ख्या में गन्धर्व, किन्नर तथा यक्ष और हंसचूड़ एवं वृक्षवस्प कुबेर की सेवा में नित्यप्रति उपस्थित रहते हैं। श्री लक्ष्मी देवी तथा नल कुबेर भी इस सभा में उपस्थित रहते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से लोग भी यहाँ प्रायः आते-जाते रहते हैं। अनेक राजर्षि और महर्षि भी यहाँ आते हैं। कई राक्षस और गन्धर्व कुबेर की सेवा में उपस्थित रहते हैं। सर्वभूतेश्वर त्रिनेत्रधारी भगवान् महादेव सदा प्रसन्न मुद्रा और अखिन्न भाव से अपनी पत्नी उमादेवी के साथ वहाँ पर अपने सखा कुबेर के पास निवास करते हैं। इनके साथ असङ्ख्य भूत-प्रेत रहते हैं। उनमें से कितने ही बौने होते हैं और कितनों के नेत्र शोणित वण के होते हैं। इनमें से कई एक मांसाहारी होते हैं। वे सब-के-सब नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होते हैं। इनकी गति वायु के समान तीव्र होती है।

सैकड़ों गन्धर्व-नायक अपने-अपने वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हो प्रसन्न हृदय से कुबेर की सेवा में उपस्थित रहते हैं। विद्या-धरों के प्रमुख नायक चक्रधमन अपने अनुचरों के साथ कुबेर की सेवा में उपस्थित रहते हैं। बहुत से किन्नर अपने प्रधान, भगदत्त के नेतृत्व में अनेक राजा, किम्पुरुषों के प्रधान द्रुम तथा राक्षसों के प्रधान महेन्द्र भी कुबेर की सेवा में उपस्थित रहते हैं।

धर्मात्मा विशन अपने अग्रज कुबेर की सेवा में वहाँ उप-स्थित रहते हैं। हिमालय, पारिपात्र, विन्ध्य, कैलास, सुनव

इत्यादि पर्वत पुरुष-रूप धारण कर अपने प्रधान मेरु के साथ कुवेर के पास उपस्थित रहते हैं।

प्रसिद्ध नन्दीश्वर, महाकाल, गम्भीर नाद करने वाला भगवान् शिव का वाहन वृषभ, शर के समान तीक्ष्ण कान तथा नुकीले मुख वाले भूत-प्रेत तथा अनेक राक्षस और पिशाच कुवेर के पास उपस्थित रहते है। पूर्वकाल में कुवेर का पुत्र अपने पिता की आज्ञा प्राप्त कर अपने अनुचरों के साथ त्रिलोकीनाथ भगवान् शिव की नत-मस्तक हो नित्य पूजा करता था। उदारात्मा भव ने एक दिन कुवेर से मैत्री कर ली और तव से वे कुवेर की सभा में सदा उपस्थित रहते है।

कुवेर की यह सभा आकाश में सञ्चरण करने की क्षमता रखती है।

१४. गोलोक

गाय सभी प्राणियों का आधार हैं। गाय सब प्राणियों का निवास है। गाय धर्म की मूर्त्ति है। गाय पवित्र है और सबको पवित्र बनाती है। उसके रूप और गुण सर्वोत्तम है।

गाय मे महान् शक्ति है। गोदान की महिमा कही गयी है : मान-मुक्त हो जो सज्जन गोदान करते हैं, वे पुण्यशाली तथा सभी वस्तुओं के दान करने वाले माने जाते हैं। ऐसे पुण्यात्मा जन परम पावन गोलोक के धाम को प्राप्त होते हैं।

गोलोक के वृक्ष मधुर फल प्रदान करते है। ये फल सदैव सुन्दर पुष्पों तथा फलों से सुशोभित रहते है। उनके पुष्पों में दिव्य सुगन्ध होती है।

इस गोलोक की सम्पूर्ण भूमि मणियों से वनी हुई है, इसकी रेती सोने की है, वहां की जलवायु मे सभी ऋतुओं की सौम्यता

होती है। वहाँ न तो कीच है और न धूल। निःसन्देह यह बहुत ही पावन धाम है। यहाँ की सरिताओं के वक्षस्थल पर अरुणाभ पद्म-पुष्प विकसित रहते हैं और उनके कूल-प्रदेश में हीरे, मणि और स्वर्ण पाये जाते हैं जिनके कारण ये सरिताएँ प्रातःकालीन अंशुमाली की दिव्य छटा की भाँति जगमगाती रहती हैं।

यहाँ पर बहुत से सरोवर भी हैं जिनमें बहुत से कमल खिले हुए हैं, इन पुष्पों की पङ्खुड़ियाँ रत्नों से बनी हुई हैं और इनके पराग केशर स्वर्ण रङ्ग के हैं। इन सरोवरों के तट पर कुसुमित वृक्षों से लताएँ लिपटी हुई हैं। यहाँ पर सन्तानक वृक्ष के वन भी हैं। ये वृक्ष फूलों से लदे हुए हैं।

यहाँ पर बहुत-सी ऐसी नदियाँ हैं जिनके तट अनेक प्रकार के सुन्दर मोती, चमकीले हीरे और सोने के द्वारा चित्र-विचित्र से बने हुए हैं।

यह प्रदेश भाँति-भाँति के हीरे-मोतियों से सजे हुए सुन्दर वृक्षों से आच्छादित है। इनमें से तो कितने ही वृक्ष अग्नि के समान प्रकाशमान हैं।

इस गोलोक में अनेक पर्वत स्वर्ण के बने हुए हैं और अनेक पहाड़ियाँ रत्न और मणियों से बनी हुई हैं, इनके उच्च शिखर अनेक प्रकार के रत्नों से जटित होने के कारण सौन्दर्य से चमकते हैं।

इस प्रदेश में उगे हुए वृक्ष सभी ऋतुओं में फूलते फलते रहते हैं और सदैव सघन पत्रावलियों से आच्छादित रहते हैं। ये पुष्प सदा ही दिव्य सुगन्ध विकीर्ण करते हैं। इन वृक्षों में लगे फल अति-मधुर होते हैं।

पुण्यशाली जन इस प्रदेश में सुख से विहार करते हैं। ये लोग दुःख और शोक से मुक्त होते हैं, उनकी प्रत्येक कामनाएँ

वहाँ परिपूर्ण होती है; अतः वे वहाँ सन्तोष से समय व्यतीत करते हैं।

परम सुखदायी सुन्दर विमानों में बैठ कर ये पुण्यशाली तथा तेजस्वी लोग एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हैं और खूब आनन्द-क्रीड़ा करते हैं।

अप्सराओं की मण्डलियाँ इन पुण्यशाली लोगों को सदा अपने नृत्य-गान से प्रमुदित करती रहती है। मनुष्य निश्चय ही अपने गोदान के पुण्य के फल-स्वरूप इस प्रदेश में प्रवेश पाता है।

जो प्रदेश परम शौर्यशाली पूषण और मरुत गणों के अधिकार में है उस प्रदेश को गोदान करने वाला पा लेता है। समृद्धिशालियो में वरुण देव सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। गाय के दान करने वाले को वरुण देव के समान समृद्धि प्राप्त होती है।

जो पुण्यशाली-मानव आदर भाव से गाय की सेवा करते हैं और जो विनीत भाव से उनका आश्रय ग्रहण करते है, गोमाता उन पर प्रसन्न होती है और वे उससे अनेक अमूल्य वरदान प्राप्त करते हैं।

मनुष्य को हृदय से भी गाय को आघात नही पहुँचाना चाहिए। उन्हे सदा सुख पहुँचाना चाहिए। मनुष्य को गाय का आदर-सत्कार करना चाहिए और नतमस्तक हो उनकी पूजा करनी चाहिए।

१५. वैकुण्ठ लोक

वैकुण्ठ लोक के सभी निवासियो का स्वरूप विष्णु भगवान् की तरह होता है। वे सब निष्काम धर्माचरण द्वारा विष्णु भगवान् की उपासना करत है।

इस लोक में वेदज्ञेय महामहिम परमाद्य पुरुष विराजते हैं। वे रजोगुण से असंस्पृष्ट अपने शुद्ध सत्त्वगुण विग्रह में स्थित हो हम भक्तों को प्रमुदित करने के लिए अपने शुभाशीर्वाद की वर्षा हम पर करते हैं।

इस लोक में परमानन्द धाम के नाम से प्रसिद्ध एक उपवन है जो कि काम्य फल प्रदान करने वाले वृक्षों से भरा पड़ा है। यह मोक्ष-धाम की तरह शोभायमान है।

इस वैकुण्ठ लोक में मुक्त पुरुष अपनी प्रेयसी अप्सराओं के साथ विमान में बैठ कर विहार करते हैं। वे वहाँ की सुरभित वायु से सर्वथा उदासीन रहते हैं। जल के मध्य में मधु टपकाते हुए माधुरी लता के कुसुमों की सुगन्ध से चलायमान चित्त वाले ये मुक्तजन संसार के मल को विदूरित करने वाली भगवान् हरि की लीलाओं का सदा गान करते हैं।

इस वैकुण्ठ लोक में भगवान् हरि की लीलाओं का गान-सा करता हुआ भ्रमरराज गुञ्जार करने लगता है तब कपोत, कोकिला, क्रौञ्च, सारस, कलहंस, चातक, शुक, तित्तर तथा मयूर का कलरव एक क्षण के लिए शान्त हो जाता है।

इस वैकुण्ठ लोक के उद्यान में मन्दार, कुन्द, कुरवक, उत्पल, चम्पक, अर्ण, पुन्नाग, नाग, बकुल, अम्बुज तथा पारिजात वृक्ष हैं। उनके पुष्प सुगन्ध से पूर्ण हैं। ये पुष्प तुलसी की तपश्चर्या को बहुत ही आदरणीय समझते हैं; क्योंकि उसकी सुगन्धि की प्रशंसा कर तथा मूल्यवान् समझ कर श्रीहरि ने तुलसी की माला को आभूषण के रूप में अपने कण्ठ में धारण कर रखा है।

यह वैकुण्ठ लोक वैडूर्य, मरकत तथा स्वर्ण के विमानों से भरा हुआ है। जिनके मस्तक भगवान् के चरणों में नत रहते हैं वे ही इन विमानों को देख सकते हैं। स्थूल नितम्ब तथा

स्मित मुख वाली अप्सराएँ अपने मनोन्मत्तकारी मन्द हास्यों तथा अन्य काम-कलाओं से मुक्त पुरुषों को मोहित करती है; परन्तु जिन्होने अपना हृदय भगवान् श्रीकृष्ण को अर्पित कर दिया है ऐसे मुक्त पुरुषों में कामभाव जाग्रत नही होता।

जिनकी कृपा-कोर की ब्रह्मादि सभी प्राणी याचना करते हैं वे ही निष्कलङ्क लक्षणों वाली महालक्ष्मी देवी श्रीहरि के इस धाम मे अपने सौम्य रूप में विराजती है। उनके हाथ स्वाभाविक रूप से लटक रहे है। उनके चरण-कमल मे नूपुर झंकृत होते रहते हैं। सोने के चौखट से मण्डित स्फटिक की दीवालों पर पड़ते हुए उनके प्रतिविम्ब से ऐसा प्रतीत होता है मानो वे गृह-परिष्कार के कार्यो मे सलग्न है।

यहाँ पर लक्ष्मी जी का अपना उद्यान है। उस उद्यान में विद्रुम की दीवालों से निर्मित एक वापी है जिसका जल अमृत के सदृश है। यहाँ पर तुलसी-पुष्प से भगवान् विष्णु की पूजा करते समय अपने सुन्दर चितवन और उन्नत नासिकायुक्त मुख का प्रतिविम्ब भगवान् विष्णु के मुख के प्रतिविम्ब के साथ इस वापी के जल मे पड़ा देख कर लक्ष्मी जी को ऐसा लगता है कि भगवान् ने उनके मुख का चुम्बन किया है।

मन को विकृत बनाने वाली कथाओं के जो रसिक है वे पापी जन इस विष्णु लोक में नही जाते है; क्योंकि उन कथाओं में भक्तों के पापनाशक भगवान् हरि की लीलाओं की चर्चा नही होती है। इन लौकिक कथाओं के सुनने से उन अभागे मनुष्यो के सभी गुण विलीन हो जाते है और वे ऐसे घोर अन्धकारपूर्ण नरक मे जा पड़ते हैं जहाँ किसी प्रकार की सहायता पहुँचना सम्भव नही होता।

जिसमें जन्म लेने से श्रेष्ठ धर्माचरण के द्वारा प्राणी सनातन सत्य का साक्षात्कार कर सकता है ऐसे देव-याचित मानवपन

को पा कर भी कितने ही प्राणी ऐसे हैं जो सर्वव्यापी माया के भ्रमजाल में पड़ कर परम कारुणिक भगवान् विष्णु का भजन-पूजन नहीं करते हैं।

जिनके गुण और आचार स्पृहणीय हैं, जो हम साधारण मानवों से बहुत ऊपर उठ चुके हैं जिनके पास यमराज भी नहीं फटकते (अथवा जो यम नियमों का अतिक्रमण कर चुके हैं) तथा भगवान् की सुखद महिमा की परस्पर चर्चा करते समय जिनके शरीर में रोमाञ्च हो उठता है, जिनके नेत्रों से अश्रुजल प्रवाहित होने लगता है तथा जिनके हृदय और मन में भगवान् का प्रगाढ़ प्रेम उमड़ पड़ता है, वे ही पुण्यशाली जीव यहाँ पर जाते हैं।

वैकुण्ठ लोक सभी लोकों में विशेप प्रशंमनीय है। देवताओं और ज्ञानीजनों के परम सुन्दर और अलौकिक अट्टालिकाओं के कारण यह भव्य रूप से जगमगाता रहता है। संक्षेप में कहें तो यह एक दिव्य लोक है। यहाँ पर त्रिलोकीपति विष्णु-भगवान् निवास करते हैं।

वैकुण्ठ में प्रवेश करने के लिए सात प्रवेश-द्वार हैं। प्रत्येक द्वार पर एक ही वय और रूप के दो पार्षद खड़े रहते हैं। उनके करों में गदा होती है। वे बहुमूल्य केयूर, कुण्डल और किरीट से सुशोभित होते हैं। वे अपनी चारों भुजाओं और कण्ठ में वन-माला धारण करते हैं। इन वनमालाओं पर प्रफुल्ल भ्रमर मँडराते रहते हैं। इनके मुख श्याम, भृकुटी कुटिल, नासिका मोटी और नेत्र अरुण होते हैं, जिससे वे भयङ्कर प्रतीत होते हैं।

१६. सप्त लोक

लोक सात हैं: भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक,

जनलोक, तपलोक और सत्यलोक। तपस्वीजन तपोलोक में निवास करते हैं। यदि आप एक ही कमरे में मिट्टी के तेल से जलने वाली लालटेन, सरसों के तेल से जलने वाला दीपक, गैस से जलने वाला पेट्रोमेक्स, मोमवत्ती, बिजली आदि विभिन्न प्रकार के प्रकाश-साधनों को एक ही समय में जलायें तो ये भिन्न-भिन्न प्रकाश कमरे में परस्पर अन्तर्स्थित होते हैं। ठीक इसी भांति ऊपर के ये सातों लोक एक-दूसरे में अन्तर्व्याप्त हैं। प्रत्येक लोक के अपने विशेष द्रव्य (तत्व) होते हैं। इन द्रव्यों की घनता या स्थूलता का स्तर उन लोकों के उपयुक्त होता है। ये द्रव्य अपने से निम्नतर लोक के द्रव्यों मे अन्तर्स्थित होते हैं।

भुवर्लोक भूलोक मे अन्तर्व्याप्त है और इससे कुछ दूर आगे तक फैला हुआ है। इसी भांति स्वर्ग लोक भुवर्लोक मे अन्तर्स्थित है और अन्तरिक्ष मे उससे आगे तक फैला हुआ है। भुवर्लोक के स्पन्दन भूलोक के स्पन्दन से अधिक वेगवान् तथा चपल होते हैं। स्वर्गलोक के स्पन्दन भुवर्लोक के स्पन्दन से अधिक वेगवान् तथा चपल होते हैं। इसी भांति सत्यलोक के स्पन्दन स्वर्गलोक के स्पन्दन की अपेक्षा अधिक वेगवान् तथा चपल होते हैं। प्रत्येक लोक में जीवात्मा नवीन तथा उच्चतर चेतना का अधिकाधिक विकास करता है।

जब आप एक लोक से दूसरे लोक मे जाते हैं तब आपको आकाश में चलना नही होता है। आप केवल अपनी चेतना को परिवर्तित करते हैं। आप अपनी चेतना के लक्ष्य को बदलते हैं। जिस भांति भिन्न भिन्न शक्ति वाले भिन्न-भिन्न शीशों के प्रयोग से अथवा दूरवीक्षण तथा अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार के दृश्य देख सकते हैं उसी प्रकार आपके अन्दर इन भिन्न-भिन्न लोको के अनुरूप भिन्न-भिन्न शरीर है जो कि उन लोकों में कार्यकर होते हैं।

जब आप स्वप्नावस्था में होते हैं तब आपका सूक्ष्म शरीर कार्य करता है और जब आप सुषुप्ति-अवस्था में होते हैं तब आपका कारण शरीर काम करता है; इसी भाँति भुवर्लोक में आपका प्राणमय शरीर काम करता है, स्वर्गलोक में आपका मनोमय शरीर काम करता है, और ब्रह्मलोक में आपका कारण-शरीर कार्य करता है। ये लोक विभिन्न श्रेणी की घनता वाले पदार्थों से बने हैं। स्वर्गलोक के तत्त्व भुवर्लोक तत्त्वों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्मतर हैं। ब्रह्मलोक के द्रव्य स्वर्ग-लोक के द्रव्यों से अधिक सूक्ष्म हैं। सभी लोक आकाश में एक ही स्थान में स्थित हैं। इस भाँति स्वर्ग भी यहीं है और ब्रह्मलोक भी यहीं है। प्रत्येक लोक के लिए भिन्न प्रकार का सूक्ष्मतर शरीर और भिन्न प्रकार के सूक्ष्मतर नेत्र चाहिए। यदि आप इन्हें प्राप्त कर लें तो आप किसी भी लोक में रह सकते हैं।

इस भूलोक में मनुष्य नेत्र, कर्ण, नासिका, जिह्वा तथा त्वचा आदि ज्ञानेन्द्रियों से पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करता है; परन्तु स्वर्ग में पृथक्-पृथक् रहने वाले इन सीमित ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से वह न देखता है, न सुनता है और न अनुभव ही करता है। वहाँ उसे दिव्य चक्षु प्राप्त होते हैं जिनमें असा-धारण क्रियाशक्ति होती है। वह इस नवीन मानसिक दिव्य दृष्टि के द्वारा एक ही समय में सभी पदार्थों को देख और सुन सकता है तथा उनके विषय में कुछ जान भी सकता है। उसे सभी पदार्थों का ठीक तथा पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। किसी भी बाह्य रूप से उसे भ्रान्ति अथवा पथ-विभ्रम नहीं होता। उस व्यक्ति में किसी प्रकार की भ्रान्त धारणा नहीं होती है।

अपने मन के अन्दर सभी ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति केन्द्रित है। मन ही सभी ज्ञानेन्द्रियों का मिश्रण अथवा योग है। इस

भाँति मन देख सकता है, सुन सकता है, चल सकता है, सूँघ सकता है तथा स्पर्शानुभव कर सकता है।

यहाँ मानव अपने सङ्कल्प अथवा इच्छा मात्र से सब-कुछ पा सकता है। यदि वह दिव्य विमान का विचार करता है, तो वह विमान तुरन्त उसके सामने आ उपस्थित होता है। यदि वह किसी स्थान का विचार करता है, वह तुरन्त उस स्थान में जा पहुँचता है। यदि वह किसी व्यक्ति का विचार करता है तो वह व्यक्ति अविलम्ब ही उसके सामने आ खड़ा होता है। उसके लिए कोई दूरी नही है। उसे किसी प्रकार के वियोग का अनुभव नही होता है। वह दूसरों के विचारो को पढ लेता है; अतः स्वर्ग लोक मे प्रश्नोत्तर की आवश्यकता नही रहती है। विचारों का आदान-प्रदान यहाँ बहुत शीघ्र होता है।

यहाँ के प्राणियों को भूत तथा भविष्यत् का भी ज्ञान होता है। उनमे दूर-दृष्टि और दूर-श्रवण की क्षमता होती है। वे एक ही समय अनेक रूप धारण कर सकते हैं।

स्वर्ग आनन्द भोग के लिए एक लोक है। भूलोक में किये हुए पुण्यकर्मो का फल भोगने के लिए यह स्वर्गलोक एक स्थान है। यहाँ पर कोई नये कर्म नही कर सकता है। यहाँ से कोई भी मोक्ष प्राप्त नही कर सकता है। मोक्ष-साधन के लिए प्राणी को वहाँ से मर्त्यलोक मे पुन: आना पड़ता है।

इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि देव है। इनके अतिरिक्त यहाँ पर कुछ कर्म-देव भी रहते हैं, जिन्होने इस भूलोक पर शुभ कर्म के सम्पादन द्वारा देवत्वपद प्राप्त किया है। देवों के तेजस् शरीर होते हैं। उनके शरीर मे अग्नि-तत्त्व की प्रधानता होती है। देवताओं ने जो प्रगति की होती है, उस प्रगति की कक्षा के

अनुरूप ही उनकी प्रतिभा तथा ज्योति भी भिन्न-भिन्न कक्षा की होती है।

देवताओं तथा स्वर्ग के अधिवासियों के लिए न दिन है और न रात्रि। वे न तो सोते हैं और न जागते ही हैं। जब वे स्वर्ग में प्रवेश करते हैं तब वे अमित सुख अनुभव करते हैं; यही उनकी जाग्रतावस्था है। जब स्वर्ग के जीवन की अवधि समाप्त हो जाती है तब वे अचेत अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

ब्रह्मलोक ब्रह्म अथवा हिरण्यगर्भ का लोक है। यह सत्य-लोक के नाम से भी प्रसिद्ध है। जो लोग देवयान मार्ग से प्रयाण करते हैं, वे इस सत्यलोक को प्राप्त होते हैं। जो निष्काम भाव से पुण्य-कार्य करते हैं, जो शुद्ध सदाचारमय जीवन व्यतीत करते हैं, जो हिरण्यगर्भ की उपासना करते हैं वे तथा साक्षात्कार प्राप्त भक्तजन इस लोक को प्राप्त करते हैं।

ये लोग क्रम-मुक्ति को प्राप्त करते हैं। भगवान् के सभी दिव्य ऐश्वर्यों को ये लोग भोगते हैं और प्रलय-काल आने पर ब्रह्मा के साथ परम ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं।

जो भगवान् हरि के भक्त हैं, उन्हें यह ब्रह्मलोक वैकुण्ठ-लोक-सा प्रतीत होता है; उसी भाँति जो भगवान् सदाशिव जी के भक्त हैं, उन्हें, यह ब्रह्मलोक कैलास अथवा शिवलोक-सा प्रतीत होता है। अतः भाव ही मुख्य है।

१७. अपार्थिव लोकों में निवास

मृत्यु तथा पुनर्जन्म के बीच का समय

लोग ठीक-ठीक यह जानना चाहते हैं कि शरीर छोड़ने के अनन्तर दूसरा शरीर धारण करने म कितना समय लग जा

जाता है। क्या यह जीवात्मा एक वर्ष में नया शरीर धारण करता है ? क्या नया शरीर धारण करने में उसे दश वर्ष लग जाते है ? इस पृथ्वी लोक में पुनः आ कर स्थूल शरीर धारण से पूर्व, ऊपर के सूक्ष्म लोकों मे जीवात्मा कितना समय लगाता है ? ये उनमे से कुछेक प्रश्न हैं। अस्तु, इस विषय में कोई निश्चित अवधि नहीं है। इस विषय के निर्णय करने में दो बातें देखनी होती हैं :—एक तो है व्यक्ति के किये हुए कर्म का स्वरूप और दूसरा है मरण-काल में उस व्यक्ति की अन्तिम भावना। यह अवधि सहस्रों वर्ष तक के दीर्घ काल से लेकर कुछ महीनों के अल्पकाल तक हो सकती है। जो लोग अपने इहलौकिक कर्म के फल ऊपर के सूक्ष्म लोकों में भोगते हैं, वे इस भूलोक पर जन्म लेने से पूर्व सुदीर्घ काल लगा देते हैं, यह बीच का समय बहुत ही लम्बा होता है; इसका कारण यह है कि इस जगत् का एक वर्ष देवलोक के एक दिन के बराबर होता है।

इस विषय में एक गाथा उद्धृत की जाती है। एक बार प्राचीन अवशेष के दर्शनार्थ कुछ विदेशी यात्री पधारे। वे जब उस ध्वसावशेष को देख कर आश्चर्य व्यक्त कर रहे थे और उसकी खूब प्रशंसा कर रहे थे, तब पास ही बैठे हुए एक सन्त पुरुष ने बतलाया कि अभी जो लोग इस अवशेष को देख कर आश्चर्य प्रकट कर रहे हैं, उनमें से ही कुछ लोगों ने शताब्दियों पूर्व इस अवशेष-रूप में दृश्यमान् भवनों की रचना की थी और अब वे अपने ही हाथ की कलाओं को देख कर आश्चर्यचकित हो रहे हैं।

प्रबल वासना वाले इन्द्रिय-लोलुप व्यक्ति तथा अत्यन्त आसक्ति वाले व्यक्ति कभी-कभी बहुत शीघ्र ही जन्म ले लेते हैं। इनके अतिरिक्त जिनका जीवन-सूत्र अपमृत्यु अथवा किसी अप्रत्याशित आकस्मिक दुर्घटना के कारण भङ्ग हो [illegible]ता है,

वे जीव भी अपने उस भङ्ग जीवन-सूत्र को पुनः तत्काल ही पकड़ लेते हैं। इस प्रकार की घटना अमृतसर की बालिका महेन्द्रा कुमारी के साथ हुई। सन् १६३६ के अक्तूबर मास में मृत्यु होने के पश्चात् सात महीने में ही उस बालिका ने दूसरा जन्म धारण किया। मृत्यु के समय उसकी अपने भाई से मिलने की इच्छा बहुत ही प्रबल थी। मृत्यु के अनन्तर शीघ्र ही पुनर्जन्म की जब ऐसी घटनाएँ होती हैं तब ही जीव को प्रायः अपने पूर्व-जीवन के बहुत से प्रसङ्गों की स्मृति बनी रहती है। वह अपने पूर्व-जन्म के सम्बन्धियों तथा मित्रों को पहचानता है तथा पुराने घर एवं परिचित वस्तुओं को भी बतलाता है। इससे कभी-कभी बहुत ही विचित्र स्थिति उत्पन्न हो जाती है। कुछ उदाहरण ऐसे पाये गये हैं जबकि हत्या किये हुए व्यक्ति ने पुनः जन्म लेने पर बतलाया कि निकट भूतकाल में ही वह किस प्रकार मारा गया था और साथ ही उसने उस हत्यारे की पहचान भी बतलायी।

उदाहरण-स्वरूप दिनाङ्क २३-३-१६३६ के 'धर्म राज्य' में इस प्रकार की एक घटना प्रकाशित हुई थी। ग्वालियर के एक ग्राम में उस ग्राम के पटवारी (लेखपाल) ने उसी ग्राम के एक ठाकुर छोटेलाल जी के हित-विरोधी कुछ विवरण ग्राम के सरकारी कागजों में लिखे। पटवारी के इस व्यवहार से ठाकुर बहुत ही क्रोधित हुए और उससे इस अन्याय का प्रतिशोध लेने के लिए वे उसके घात में छुप रहे। उन्होंने पटवारी की छाती में गोली मारी और उसके दाहिने हाथ की उँगलियाँ काट डाली। इस हत्याकाण्ड के कुछ काल पश्चात् यहाँ से लगभग १४ मील की दूरी पर एक व्यक्ति के यहाँ एक बालक उत्पन्न हुआ। उस बालक की छाती में बन्दूक की गोली के आघात

का चिह्न था तथा उसके दाँये हाथ की उँगलियाँ नही थी। जब वह बालक बोलने लगा तब उसके पिता ने उससे एक दिन पूछा —"क्या भगवान् उँगलियाँ बनाना भूल गया था ?" बालक ने तुरन्त ही उत्तर दिया—"नही, छोटेलाल ठाकुर ने उसकी छाती में गोली मारी थी तथा उसकी उँगलियाँ काट डाली थी।" उस बालक ने उस घटना का पूरा विवरण बतलाया जो कि जाँच करने पर ठीक निकला।

कितनी ही बार ऐसा पाया गया है कि पुनर्जन्म धारण करने वाले जीव अपने पहले के छुपाये हुए धन के पास ठीक-ठीक जाकर उसे निकाल लाये हैं। परन्तु अधिकांश जीवात्माओं में यह स्मृति नहीं रहती है। ऐसी स्मृति का न होना सर्वज्ञ परमात्मा का वरदान ही है। ऐसी स्मृति हमारे वर्तमान जीवन में बहुत-सी उलझनें ला देगी। जब तक भूतकाल की स्मृति आपके लिए भली तथा लाभदायक नहीं तभी तक वह आपसे ओझल रहती है। जब आप पूर्णता प्राप्त कर लेंगे, जब आप जन्ममरण के चक्र का अन्त पा लेंगे तब आप इन सभी जीवनों को पुष्पमाला की भाँति एक ही व्यक्तित्व-सूत्र में गुँथे हुए पायेंगे।

मृत्यु के पश्चात् तुरन्त जन्म लेनेकी ऐसी घटनाएं सामान्य नहीं हैं। एक मध्यम श्रेणी की जीवात्मा के मृत्यु के पश्चात् उसे पुनः जन्म लेने मे इस मर्त्य-लोक की काल-गणना के अनुसार साधारणतया बहुत ही अधिक समय लग जाता है। जो लोग प्रचुर मात्रा में पुण्य कर्म किये होते हैं, वे इस भूलोक में पुनः जन्म ग्रहण करने के पूर्व सुदीर्घकाल तक देवलोक में निवास करते हैं। महान्-आत्माएँ, आध्यात्मिक भूमिका मे उन्नत जीव पुनर्जन्म के पूर्व चिरकाल तक प्रतीक्षा [illegible] हैं।

मृत्यु और पुनर्जन्म के बीच के समय में जीव—विशेषकर वे जीव जो मानसिक एवं आध्यात्मिक विषय में उन्नत हैं—आवश्यकतानुसार समय-समय पर भूलोक में मूर्त्तरूप धारण कर सकते हैं। वे मनुष्य का आकार धारण कर बातचीत करते तथा शरीर के साथ स्पर्श करते हैं। इस प्रकार प्रकट किये हुए उनके उस रूप का फोटो भी लिया जा सकता है।

सूक्ष्म शरीर से उनका यह मूर्त्तरूप भिन्न प्रकार का होता है। सूक्ष्म शरीर सामान्य नेत्रों से दृष्टिगोचर नहीं होता है। यह स्थूल शरीर का ठीक प्रतिरूप—उसका एक सूक्ष्म द्वित्व है। मृत्यु के अनन्तर जीवात्मा इस अन्तवाहक शरीर में ही प्रयाण करता है।

अस्तु, इतना तो निश्चित ही है कि यह प्राणमय चेतना आपको जन्म-मरण के चक्र से मुक्त कराने का निश्चित आश्वासन नहीं दे सकती है। तन्त्र-ज्ञान और प्रेतात्म-विद्या आपको मोक्ष प्रदान नहीं कर सकते हैं और न जीवन के उस पार का पूर्ण रहस्योद्घाटन ही कर सकते हैं। आत्म-साक्षात्कार तथा आत्म-ज्ञान ही जीवन तथा मृत्यु की तथा मृत्यूपरान्त जीवन की गूढ़ पहेली को सुलझा सकते हैं।

सप्तम प्रकरण

प्रेतात्म-विद्या

प्रेतात्म-विद्या

प्रेतात्म-विद्या

प्रकृति में होने वाली घटनाओं में मृत्यु यद्यपि एक अत्यन्त सामान्य दृश्य है; तथापि इसका रहस्य अभी तक बहुत ही कम समझा गया है। यह दर्शनशास्त्र के अत्यन्त कठिन प्रश्नों में से एक है; क्योंकि मृत्यु के समय तथा मृत्यूपरान्त वास्तव में होता क्या है ? इस विषय का कोई अनुभूत प्रमाण प्रायः नहीं है।

योगी पुरुष योगाभ्यास द्वारा प्राप्त अपने दिव्य चक्षु से मृत्यु की घटना को भली प्रकार देख सकते हैं। महर्षि वशिष्ठ का यह दृढ़तापूर्वक कथन है कि उन्होंने सभी वस्तुओं का ज्ञान प्रत्यक्ष रूप से ही प्राप्त किया था और उन्होंने मृत्यु के विषय मे जो-कुछ कहा है, उसे अपनो अपरोक्षानुभूति के आधार पर ही कहा है।

साम्प्रतिक काल में मृत्यु-सम्बन्धी समस्याओं के अध्ययन करने का प्रयास पाश्चात्य जगत् में वहाँ की 'दी साइकिकल रिसर्च सोसाइटी'-नाम की सस्था कर रही है। यहाँ पर संग्रहीत तथ्यों के आधार पर कितने ही विचारकों को अब यह विश्वास हो चला है कि मृत्यु मनुष्य के व्यक्तित्व का अन्त नहीं करती है।

सर ओलीवर लाज ने इस विषय मे बहुत से वैज्ञानिक प्रयोग किये। इससे उन्हे अब यह निश्चय हो गया है कि मृत्यु के अनन्तर भी जीवन बना रहता है। वे कहते हैं :

"मैं अभी जो कहने जा रहा हूँ, बहुत सम्भव है कि उससे यहाँ उपस्थित श्रोताओं की भावनाओं को आघात पहुँचे और वे मुझसे क्षुब्ध हो उठें। इस आशङ्का के होने पर भी मैं अपने साथियों तथा अपने प्रति न्याय करते हुए अपने इस विश्वास का लिपिबद्ध प्रमाण छोड़ जाता हूँ कि जिन चमत्कारी घटनाओं को अभी तक हम रहस्यमयी समझते रहे हैं, उनकी अब वैज्ञानिक पद्धति के सावधानी तथा दृढ़तापूर्वक प्रयोग से छानबीन की जा सकती है तथा उन्हें क्रमबद्ध भी बनाया जा सकता है। इतना ही नहीं इससे आगे बढ़ कर बहुत संक्षेप में मैं इस विषय में यह भी कहता हूँ कि इस दशा में की गयी अब तक की खोजों ने मुझे यह निश्चय दिला दिया है कि स्मृति और प्रेम जिन तत्त्वों के सम्पर्क में आने पर ही यहाँ और इस समय अपने को अभिव्यक्त कर सकते हैं, वे उन्हीं तक सीमित नहीं हैं, और मेरा निश्चय यह भी है कि शारीरिक मृत्यु के पश्चात् भी व्यक्ति का जीवन बना रहता है। मेरा मन इस तथ्य को स्वीकार करता रहता है कि असङ्ग बुद्धि, किन्हीं निश्चित संयोगों में हमारे साथ भौतिक क्षेत्र में कार्य कर सकती है और इस भाँति गौण रूप से यह विषय विज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत आ जाता है।"

प्रेतात्मा के साथ बातचीत, मेज का झुकना, प्रेतों का खटखटाना, प्रेतात्मा का प्रकाश, प्रेतों के लेख, स्लेट के लेख, मूर्त्तरूप धारण करने वाला हाथ, ताश का उठाना, टिन का बजाना, प्लानशेट लेख (पहियेदार लकड़ी का एक छोटा टुकड़ा होता है, जिसमें पेंसिल लगी रहती है और नीचे कागज रखा रहता है। इस पर हाथ रखने से मन की सोची हुई बात कागज पर लिख जाती है), ओझा सङ्घ की हस्तकला तथा माध्यम के द्वारा बातचीत—इन सबके संसार में आविर्भाव

होने के पश्चात् आधुनिक मनुष्य की प्रवृत्ति मृत्यूपरान्त जीवन के विषय में अधिकाधिक सोचने लग गयी है। प्राच्य तथा पाश्चात्य, दोनों ही देशों मे इस विषय मे बहुत से लेख स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित हो रहे हैं। पश्चिमी देशों मे मन और आत्मा के विषय पर शोध करने के लिए बहुत-सी सस्थाएँ स्थापित हैं। इन सब शोधों का शुभ परिणाम यह हुआ कि पश्चिम के लोगों को अब यह दृढ़ विश्वास हो चुका है कि मृत्यु के उपरान्त भी आत्मा सजीव बनी रहती है।

पाश्चात्य वैज्ञानिक आज आध्यात्मिक प्रगति मे जहाँ तक पहुँच चुके हैं तथा प्रत्येक दृश्य पदार्थ को वैज्ञानिक ढङ्ग से प्रयोग कर खोज निकालने की उनकी जो जिज्ञासा है, उसको देखते हुए यह कहा जा सकता है कि वे प्रमाण और प्रयोग की जो रीति प्रस्तुत करते हैं, उनसे वे आत्मा के अस्तित्व का ज्ञान तथा उसकी खोज पा लेंगे। पवित्र भारतीय शास्त्रों के वातावरण मे उत्पन्न तथा पले हुए प्राच्य दर्शन के एक जिज्ञासु के लिए तो जीवात्मा का अस्तित्व तथा उसका आवागमन उसके दर्शन के अभ्यास का प्रथम पाठ है, परन्तु पाश्चात्य विचारकों के लिए तो यह सिद्धान्त उनकी आज तक की सभी गवेषणाओं के प्रायः अन्तिम परिणाम-स्वरूप प्राप्त हुआ है।

अध्यात्मवाद की विचारधारा के अनुसार मृत्यु के अनन्तर हमें जहाँ जाना है उस परलोक में बहुत से प्रदेश हैं। हमारी विभिन्न आध्यात्मिक भूमिका के अनुरूप इन प्रदेशो के प्रकाश तथा सुख मे सूक्ष्म भेद होता है। परलोक के उन प्रदेशो में विशेष रूप से इस लोक के ही दृश्यों तथा सुख-सुविधाओं का नव-निर्माण किया गया है। वहाँ के समाज की रचना भी सामान्यतः यहाँ की ही तरह है। देवदूतों की उपस्थिति

मृत्यु सरल हो जाती है। ये देवदूत परलोक के नवागन्तुओं को उनके धाम तक पहुँचाते हैं।

जो जीवन्मुक्त तथा महान् ऋषि परब्रह्म में विलीन हो गये हैं, उनकी आत्माएँ प्रार्थना, प्रेतावाहन अथवा माध्यम आदि की किसी भी क्रिया द्वारा पुनः बुलायी नहीं जा सकती हैं।

मृत व्यक्ति की जीवात्मा अपने पहले के सगे-सम्बन्धियों तथा मित्रों के प्रति अत्यन्त प्रगाढ़ प्रेम रख सकती है। यह इस लोक में पीछे छुटे हुए अपने कुटुम्बीजनों से बातचीत कर सकती है।

कितने ही मरणासन्न व्यक्तियों की अपने बालकों के लिए अत्यन्त प्रगाढ़ आसक्ति होती है। यदि घर में उनके बालकों की सँभाल करने वाला कोई व्यक्ति न हो तो मृत्यु के पश्चात् वे प्राणमय शरीर धारण कर अपने सम्बन्धियों के सम्मुख प्रकट होते हैं और उन्हें सन्देश देते हैं। इस प्रकार के बहुत से लेख पाये जाते हैं।

जिनकी आसक्ति अपने कुटुम्बीजनों में रह जाती है, ऐसी कितनी ही प्रेतात्माएँ इस लोक की वासना से बँध जाती हैं। वे आत्माएँ उन कुटुम्बीजनों के आस-पास मँडराया करती हैं। वे उनके निकट सम्पर्क में रह कर उनकी सहायता करने का प्रयत्न करती रहती है। वे अपने कुटुम्बी जन के प्रेम-पात्र बने रहने के लिए भी प्रयत्नशील रहती हैं। उन्हें अपने व्यक्तित्व की चेतना रहती है। उन लोगों को यह पता नहीं होता कि वे मर चुके हैं।

एक मनुष्य अपने कमरे में बैठा हुआ किसी गूढ़ प्रश्न के विषय में सोच रहा था। वह कमरे में अकेला था और कमरा बन्द था। उसने अपने छायारूप 'डबल' को देखा। यह उसके ही रूप और आकार के समान था। यह छायारूप उसके

शरीर से बाहर निकल कर मेज के पास गया, हाथ में कागज-पेंसिल ली और उस प्रश्न को निकाल कर उसका उत्तर कागज पर लिख दिया। यह छायारूप उस व्यक्ति का प्राणमय रूप था। यह स्थूल पार्थिव शरीर से स्वतन्त्र रह सकता है। यूरोप और अमेरिका की साइकिकल रिसर्च सोसाइटी में इस विषय के अनेक लेख हैं। इससे यह स्पष्ट है कि आत्मा है और उसका अस्तित्व स्थूल शरीर से सर्वथा पृथक् है।

मरणोपरान्त जीव अपनी सभी कामनाओं को अपने साथ ही ले जाता है और वह केवल सङ्कल्पमात्र से अपने भोग-पदार्थों को रचता है। यदि वह नारङ्गी का विचार करता है तो नारङ्गी वहाँ आ उपस्थित होती है और वह उसे खाता है। यदि वह चाय का विचार मन में लाता है, तो चाय आ पहुँचती है और वह उसे पीता है।

जो व्यक्ति स्वर्ग में सुरापान करना, स्वादिष्ट फल खाना, दिव्याङ्गनाओं के साथ विहार करना तथा विमान में विचरण करना चाहता है, वह एक ऐसे चेतना-जगत् में प्रवेश करता है जहाँ वह अपने इन विचारों की कल्पना करेगा और इस भाँति अपना स्वर्ग बनायेगा।

प्रेतात्म-विद्या के आधुनिक जानकारों ने उन देह-वियुक्त प्रेतात्माओं के अस्तित्व के विषय में बहुत ही अद्भुत प्रयोग प्रदर्शित किये हैं, जो कि अपने स्थूल शरीर के नष्ट हो जाने पर जीवित रहती हैं। इसने पश्चिम के कोरे भौतिकवादियों तथा नास्तिकों की आँखें खोल दी हैं।

कितनी ही भली प्रेतात्माओं को भविष्यवाणी, दूर-दर्शन तथा दूर-श्रवण की सिद्धियाँ होती हैं। उन्हें अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों से प्रेम तथा मोह होता है और वे उनकी क ई,

मृत्यु सरल हो जाती है। ये देवदूत परलोक के नवागन्तुओं
उनके धाम तक पहुँचाते हैं।

जो जीवन्मुक्त तथा महान् ऋषि परब्रह्म में विलीन हो
हैं, उनकी आत्माएँ प्रार्थना, प्रेतावाहन अथवा माध्यम आदि
किसी भी क्रिया द्वारा पुनः बुलायी नहीं जा सकती हैं।

मृत व्यक्ति की जीवात्मा अपने पहले के सगे-सम्बन्धि
तथा मित्रों के प्रति अत्यन्त प्रगाढ़ प्रेम रख सकती है। यह
लोक में पीछे छुटे हुए अपने कुटुम्बीजनों से बातचीत
सकती है।

कितने ही मरणासन्न व्यक्तियों की अपने बालकों के
अत्यन्त प्रगाढ़ आसक्ति होती है। यदि घर में उनके बालकों
सँभाल करने वाला कोई व्यक्ति न हो तो मृत्यु के पश्चात
प्राणमय शरीर धारण कर अपने सम्बन्धियों के सम्मुख प्र
होते हैं और उन्हें सन्देश देते हैं। इस प्रकार के बहुत से
पाये जाते हैं।

जिनकी आसक्ति अपने कुटुम्बीजनों में रह जाती है,
कितनी ही प्रेतात्माएँ इस लोक की वासना से बँध जाती हैं
आत्माएँ उन कुटुम्बीजनों के आस-पास मँडराया करती हैं।
उनके निकट सम्पर्क में रह कर उनकी सहायता क
का प्रयत्न करती रहती है। वे अपने कुटुम्बी जन के प्रेम-
बने रहने के लिए भी प्रयत्नशील रहती हैं। उन्हें अपने व्यक्ति
की चेतना रहती है। उन लोगों को यह पता नहीं होता
वे मर चुके हैं।

एक मनुष्य अपने कमरे में बैठा हुआ किसी गूढ़ प्रश्न
विषय में सोच रहा था। वह कमरे में अकेला था
कमरा बन्द था। उसने अपने छायारूप 'डबल' को देखा।
उसके ही रूप और आकार के समान था। यह छायारूप उ

शरीर से बाहर निकल कर मेज के पास गया, हाथ में कागज-पेंसिल ली और उस प्रश्न को निकाल कर उसका उत्तर कागज पर लिख दिया। यह छायारूप उस व्यक्ति का प्राणमय रूप था। यह स्थूल पार्थिव शरीर से स्वतन्त्र रह सकता है। यूरोप और अमेरिका की साइकिकल रिसर्च सोसाइटी में इस विषय के अनेक लेख हैं। इससे यह स्पष्ट है कि आत्मा है और उसका अस्तित्व स्थूल शरीर से सर्वथा पृथक् है।

मरणोपरान्त जीव अपनी सभी कामनाओं को अपने साथ ही ले जाता है और वह केवल सङ्कल्पमात्र से अपने भोग-पदार्थों को रचता है। यदि वह नारङ्गी का विचार करता है तो नारङ्गी वहां आ उपस्थित होती है और वह उसे खाता है। यदि वह चाय का विचार मन में लाता है, तो चाय आ पहुँचती है और वह उसे पीता है।

जो व्यक्ति स्वर्ग में सुरापान करना, स्वादिष्ट फल खाना, दिव्याङ्गनाओं के साथ विहार करना तथा विमान मे विचरण करना चाहता है, वह एक ऐसे चेतना-जगत् मे प्रवेश करता है जहां वह अपने इन विचारों की कल्पना करेगा और इस भांति अपना स्वर्ग बनायेगा।

प्रेतात्म-विद्या के आधुनिक जानकारों ने उन देह-वियुक्त प्रेतात्माओं के अस्तित्व के विषय में बहुत ही अद्भुत प्रयोग प्रदर्शित किये हैं, जो कि अपने स्थूल शरीर के नष्ट हो जाने पर जीवित रहती हैं। इसने पश्चिम के कोरे भौतिकवादियो तथा नास्तिकों की आँखें खोल दी हैं।

कितनी ही भली प्रेतात्माओं को भविष्यवाणी, दूर-दर्शन तथा दूर-श्रवण की सिद्धियां होती हैं। उन्हे अपने सम्बन्धियो तथा मित्रों से प्रेम तथा मोह होता है और वे उनकी कठिनाई,

दुर्भाग्य तथा आपत्ति-विपत्ति के समय उनकी सहायता करने का प्रयत्न करती हैं। वे उन्हें आसन्न सङ्कट से बचाने के लिए चेतावनी भी देती हैं।

मृत्यु के पश्चात् देह-वियुक्त जीवात्मा कुछ काल तक इस भूलोक की वासनाओं से बँधा रहता है। वह इसके लिए अपने सगे-सम्बन्धियों तथा मित्रों से सहायता की आशा करता है। प्रेतात्माओं को भूलोक के बन्धन से मुक्त होने तथा प्रगति कर अपने शुभ कर्मों के फल भोगने के लिए पितृलोक में प्रवेश पाने में उनके कुटुम्बियों तथा मित्रों द्वारा उनके निमित्त की हुई प्रार्थना, कीर्त्तन, श्राद्ध, दान तथा सद्विचार विशेष सहायक होते हैं।

इन प्रेतात्माओं को पारमार्थिक सत्य का ज्ञान नहीं होता है। वे आत्म-साक्षात्कार के विषय में दूसरे लोगों की कोई सहायता नहीं कर सकती हैं। इनमें से तो कितनी ही प्रेतात्माएँ मूर्ख, ठग तथा अज्ञानी होती हैं। ये भूलोक से बँधी हुई आत्माएँ माध्यम को अपने अधिकार में रखती हैं तथा परलोक के विषय में पूर्ण ज्ञान रखने का दम्भ करती हैं। वे असत्य भाषण करती हैं। वे दूसरी प्रेतात्माओं का रूप धारण कर जनता को ठगती हैं। वे बेचारे भोले माध्यम अपने धूर्त्त प्रेतात्माओं के छल को नहीं जानते हैं। प्रेतात्म-विद्या के जानकार इन प्रेतात्माओं की कृपा प्राप्त करने तथा उनके द्वारा पारलौकिक ज्ञान प्राप्त करने की आशा में अपने समय, शक्ति और धन को व्यर्थ ही नष्ट करते हैं।

प्रेतात्म-विद्या के इन जानकारों को मरण के समय प्रेतात्मा का ही विचार आता है। उन्हें ईश्वर-सम्बन्धी श्रेष्ठ विचार नहीं आते हैं। अतः मरणोपरान्त प्रेतात्म-विद्या के जानकार प्रेतलोक में ही प्रवेश करेंगे। इन प्रेतात्माओं के साथ बातचीत

ग्रादि का व्यवहार रखने से ऊपर के ग्रानन्दमय प्रदेशों की ग्रोर उनकी प्रगति में ग्रवरोध ग्रा जाता है ग्रौर वे पृथ्वी-लोक की वासना में बँध जाती हैं। ग्रतः प्रेतात्माग्रों के साथ प्रेतलोक के विषय मे बातचीत करने के ग्रपने व्यर्थ के कुतूहल को त्याग दीजिए। इससे ग्रापको कोई स्थायी तथा ठोस लाभ नहीं होगा। ग्राप उनकी शान्ति को भङ्ग करेंगे।

किसी भी व्यक्ति को ग्रपने को माध्यम नही बनने देना चाहिए। *माध्यम बनने वाले व्यक्ति ग्रपनी ग्रात्म-संयम-शक्ति* को खो वैठते हैं। इन माध्यमों की प्राण-शक्ति, जीवन-शक्ति तथा बौद्धिक-शक्ति का उपयोग वे प्रेतात्माएँ करती हैं, जिनके वश में ये माध्यम होते है। इन माध्यम-व्यक्तियों को कुछ भी उच्चतर ज्ञान नहीं प्राप्त होता है। प्रेतात्म-विद्या के जानकारों का यह कथन है कि 'ये प्रेतात्माएँ देवदूत हैं।' ये तो पृथ्वी-लोक से बँधी हुई ग्रात्माएँ हैं।

ये प्रेतात्माएं चित्रकला तथा टाइप का काम करती हैं। प्रेतात्माएँ ग्राध्यात्मिक मण्डलियो में मूर्त्त रूप धारण करती हैं। वे श्वेत कुहासे जैसे पदार्थ में रूपान्तरित हो ग्रदृश्य हो जाती हैं। स्लेट पर स्वय-लेखन की क्रिया के समय ग्राप पेंसिल की ग्रावाज़ सुन सकते हैं। जब प्रेतात्मा स्लेट में लिखती रहती है, उस समय ग्राप कोमल ग्राघात का ग्रनुभव करेंगे। प्रेतात्माएँ ग्रपना हाथ ग्रापके शरीर के ऊपर रख सकती हैं तथा आपकी कमीज, टाई इत्यादि को पकड़ सकती हैं।

ग्राप ग्रपने विचारों एवं कार्यों के द्वारा ग्रपने प्रारब्ध, चारित्र्य तथा भविष्य का निर्माण करते हैं। यहाँ ग्रौर इसके पश्चात् भी ग्रापके ग्रनुभवों का ग्रन्त नही होगा। ग्रापका जीवन चालू रहेगा। ग्रापको इस जगत् में पुनः ग्राना ग्रौर जन्म लेना पड़ेगा। पूर्णता की प्राप्ति का प्रयत्न कीजिए ग्रौर

उस उत्तम पद को प्राप्त कीजिए जहाँ पर न जन्म है और न मृत्यु और न ही वहाँ शोक, सन्ताप तथा दुःख ही है। अपने हृदय-गुहा-वासी शाश्वत आत्मा का ध्यान कीजिए। अपने को यह पञ्चभौतिक विनश्वर शरीर न समझिए। आत्मसाक्षात्कार कीजिए और मुक्त बनिए। अविनाशी आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर पूर्ण शान्ति, शाश्वत सुख, अनन्त आनन्द तथा अमरत्व को प्राप्त कीजिए।

अष्टम प्रकरण

मृतकों के लिए श्राद्ध तथा प्रार्थना

मृतकों के लिए श्राद्ध तथा प्रार्थना

१. श्राद्ध-क्रिया का महत्त्व

हिन्दुओं के पवित्र ग्रन्थ वेद के कर्मकाण्ड में मनुष्य को उसके वर्ण और आश्रम के अनुसार विविध प्रकार के कर्त्तव्य निर्धारित किये गये हैं। मनुस्मृति नामक ग्रन्थ में इन सभी विधानों का समावेश है। यह मनुस्मृति हिन्दुओं के शासन और आचार का ग्रन्थ है। अपने राज्य में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने के लिए प्राचीन काल के राजे-महाराजे तथा शासक-वर्ग इस ग्रन्थ में निर्देशित नियमों का अनुसरण करते थे। मनुस्मृति में मानव-समाज को चार भागों में विभाजित किया है : ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इसके अतिरिक्त उसने वैयक्तिक जीवन के विभिन्न अवस्थानुसार भी चार विभाग किये हैं : ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। ब्रह्मचर्य विद्यार्थी-जीवन है, गृहस्थ विवाह कर सन्तति प्रजनन तथा परिवार-पालन का जीवन है, वानप्रस्थ वन में रहकर धार्मिक नियमों के पालन का समय है और सबसे अन्त का संन्यास-जीवन सभी सांसारिक प्रवृत्तियों को त्याग कर तपस्वी का जीवन व्यतीत करना है। ये ही जीवन के चार आश्रम हैं।

आधुनिक सभ्यता तथा मानव-जीवन में आध्यात्म भावना की अवनति होने के कारण समाज की उपर्युक्त वर्णाश्रम-व्यवस्था का धीरे-धीरे ह्रास हो चला। रजोगुण और तमोगुण से उत्पन्न भौतिकता की आसुरी शक्तियों ने सत्त्वगुण की शक्तियों को अभिभूत कर लिया है और इससे अब जीवन में

धर्म को गौण स्थान दिया जाने लगा है, इतना ही नहीं, धार्मिक वृत्ति वाले व्यक्तियों को आजकल तिरस्कार की दृष्टि से भी देखा जाता है। आजके विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने वाले आधुनिक नवयुवकों को शिखाधारी साधक अथवा भक्त-जन भले नहीं लगते हैं।

धर्म ग्रन्थों का पाठ, धार्मिक व्रतों का पालन, मध्यम स्तर का आध्यात्मिक जीवन तथा सदाचारमय सच्ची संस्कृति को अनावश्यक तथा पुरातन बतला कर उनका प्रतिवाद किया जाता है, जिसके परिणाम-स्वरूप वे आज अपना महत्त्व खो बैठे हैं। आज जीवन की समस्या बहुत ही गम्भीर हो चली है। वर्त्तमान युग में जीवन को बनाये रखने के लिए घोर संग्राम करना पड़ता है। भोजन तथा भोग-विलास के साधनों के प्रश्न ने आज धर्म का स्थान ले लिया है।

शास्त्रों ने गृहस्थ के लिए पाँच महायज्ञ अनिवार्य बतलाये हैं। इन यज्ञों के न करने से गृहस्थ को प्रायश्चित्त भोगना पड़ता है। वे पाँच महायज्ञ ये हैं: १—देव-यज्ञ, २ ऋषि-यज्ञ, ३—पितृ-यज्ञ, ४—भूत-यज्ञ तथा ५—अतिथि-यज्ञ।

इनमें श्राद्ध-क्रिया पितृयज्ञ के अन्तर्गत आती है। यह प्रत्येक गृहस्थ का एक पवित्र धर्म है। प्रत्येक गृहस्थ को अपने पितरों की श्राद्ध-क्रिया करनी चाहिए। पितृगण हमारे पूर्वज हैं जो कि पितृलोक में निवास करते हैं। उन पितृगणों के पास दूर-श्रवण तथा दूर-दर्शन की अलौकिक शक्तियाँ होती हैं। जब श्राद्ध के मन्त्र पढ़े जाते हैं तब वे मन्त्र अपने स्पन्दनों द्वारा पितरों पर बहुत ही गम्भीर प्रभाव डालते हैं। दूर-श्रवण की शक्ति द्वारा ये पितरगण मन्त्र-ध्वनि को सुनते हैं और प्रसन्न होते हैं। जो उन्हें श्राद्ध-तर्पण देता है, उसे वे आशीर्वाद देते

हैं। श्राद्ध में जो पिण्ड दान दिया जाता है, उसका सार भाग सूर्य की किरणों से ऊपर सूर्य-लोक में पहुँचता है और पितर गण इससे प्रसन्न होते हैं। जर्मनी तथा दूसरे पाश्चात्य देशों में भी श्राद्ध और तर्पण की क्रियाएँ वहाँ के बहुत से व्यक्ति करते हैं। उन्होंने इस प्रकार के दान के लाभप्रद प्रभाव का वैज्ञानिक ढङ्ग से अनुसन्धान किया है। ऋषियों और पितरों को प्रसन्न करने के लिए श्राद्ध और तर्पण की इन क्रियाओं का करना प्रत्येक गृहस्थ के लिए एक अनिवार्य कर्त्तव्य है। गीता और उपनिषद् इस बात को स्पष्ट रूप से पुष्ट करते है कि श्राद्ध-क्रिया परम आवश्यक है। उलटी बुद्धि वाले भ्रान्त जीव ही इनका गलत अर्थ लगाते हैं तथा धार्मिक कृत्यों के करने में टाल मटोल करते हैं और उसके परिणाम-स्वरूप दुःख भोगते हैं। झूठे वादविवाद तथा तर्क के आधार पर वे पथ-भ्रष्ट हो चले हैं। आसुरी शक्तियाँ बड़ी सुगमता से उन पर अपना प्रभाव डाल लेती हैं। इस प्रकार के काम करने का मूल कारण उनका अज्ञान ही है।

यह श्राद्ध-क्रिया वर्ष में एक बार की जाती है, कारण यह है कि मानव-काल गणना का एक वर्ष पितरो के एक दिन के बराबर होता है। अतः प्रतिवर्ष एक बार श्राद्ध-क्रिया करने का यही कारण है, यदि हम प्रतिवर्ष एक बार श्राद्ध-क्रिया करे तो वह पितरो के लिए दैनिक क्रिया के समान होगी। इस भाँति उन पितरों की काल-गणना के अनुसार उनकी सन्तानें हम लोग बहुत ही थोड़े दिन इस ससार मे जीवित रहते हैं, क्योकि मनुष्य की अधिक-से-अधिक आयु सौ वर्ष की होती है और ये सौ वर्ष तो पितरों के लिए केवल सौ दिन ही हैं।

कितने ही व्यक्ति इस प्रकार की शङ्का करते हैं कि 'जब जीव परिवर्त्तन पाता है और इस स्थूल देह को परित्याग कर

दूसरा जन्म लेता है तब क्या हमें उनके लिए श्राद्ध-तर्पण करना आवश्यक है ? कारण यह है कि वह जीव स्वर्ग में तो रहता नहीं है, तो फिर यह श्राद्ध-दान किसको प्राप्त होगा ? गीता के नवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण ने इस बात को स्पष्ट रीति से बतलाया है कि 'स्वर्ग की प्राप्ति के लिए जो पुण्य-शाली लोग यज्ञ-यागादि क्रिया करते हैं, वे अपने पुण्य भोगने वाले लोकों को प्राप्त होते हैं। वे उस विशाल स्वर्गलोक को भोग कर पुण्यक्षीण होने पर मर्त्यलोक में प्रवेश करते हैं। इस भाँति वेदत्रय विहित कर्म के अनुष्ठान में तत्पर कामना-परायण लोग आवागमन को प्राप्त होते हैं।'

(गीता ९-११)

मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग की प्राप्ति होती है तथा पुण्य कर्म के क्षीण होने पर मर्त्यलोक में पुनः जन्म लेना होता है—इस बात को गीता की यह वाणी सिद्ध करती है। श्राद्ध की क्रिया करने से स्वर्ग के भोगों में तथा आत्मा की शान्ति में वृद्धि होती है। स्वर्गलोक के अतिरिक्त अन्य लोकों में जीव को जो अपने कर्मानुसार कष्ट भोगने पड़ते हैं, वे उनके पुत्रों द्वारा श्राद्ध-कर्म करने से कम हो जाते हैं। इस भाँति श्राद्ध की क्रिया दोनों ही रूपों में बहुत ही सहायक होती है। पितरगण पितृलोक अथवा चन्द्रलोक में दीर्घकाल तक निवास करते हैं।

पुनर्जन्म के सिद्धान्त के अनुसार यदि यह भी मान लिया जाय कि जीवात्मा को मृत्यु के अनन्तर तुरन्त ही दूसरा जन्म लेना पड़ता है तो भी श्राद्ध-क्रिया उसके नवीन जन्म में सुख की वृद्धि करती है। अतः अपने पितरों के लिए श्राद्ध-क्रिया करना प्रत्येक गृहस्थ का अति-आवश्यक कर्त्तव्य है। आपको आजीवन श्राद्ध-क्रिया परम श्रद्धापूर्वक करनी चाहिए। श्रद्धा

ही धर्म का मुख्य आधार है। प्राचीन काल में तो 'श्राद्ध की क्रिया करनी चाहिए अथवा नहीं' यह प्रश्न ही नहीं उठता था। उस समय मनुष्यों में पूरी-पूरी श्रद्धा थी तथा शास्त्रों का सम्मान करते थे। आज दिन जबकि श्रद्धा शून्य-सी हो चली है तथा जबकि श्राद्ध न करने वालों की सङ्ख्या बढ़ती जा रही है, तब दूसरे लोगों की भी श्रद्धा चलायमान हो जाती है और वे ऐसी शङ्का करने लगते हैं कि श्राद्ध-क्रिया करना आवश्यक है अथवा नहीं तथा यह कि श्राद्ध-क्रिया से क्या कोई शुभ फल होगा ? शास्त्रों में हमारी श्रद्धा के अभाव के कारण ही हम अपनी वर्तमान शोचनीय अवस्था को पतित हुए है। 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्'—श्रद्धावान् को ज्ञान प्राप्त होता है और उससे अमरता और शान्ति प्राप्त होती है। यह गीता की घोषणा है।

कुछ लोग तर्क करते है और कहते है कि यदि किसी व्यक्ति ने गया तथा अन्य प्रसिद्ध तीर्थों में जाकर अपने पितरों के लिए एक बार श्राद्ध-क्रिया कर दी हो, तो फिर उसे प्रतिवर्ष श्राद्ध की क्रिया करने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। यह कोई सामान्य नियम नहीं है और न यह सब पर लागू ही होता है। यह किन्हीं विशेष अपवाद स्वरूप अवस्थाओं में ही लागू होता है। यदि मनुष्य इस अपवाद का आश्रय ले और गया में एक बार पिण्डदान आदि करके श्राद्ध-क्रिया करना बन्द कर दे तो यह केवल उसका अज्ञान ही है। ये लोग श्राद्ध-क्रिया को केवल भाररूप मानते हैं और उससे बचना चाहते हैं। उन्होंने अपने कर्त्तव्य का समुचित परिपालन नहीं किया।

शास्त्रीय ग्रन्थो ने मानव-जाति के ऊपर जो भिन्न-भिन्न धार्मिक क्रियाएँ थोपी हैं, वे अज्ञानी जनों को शुद्ध करने के

लिए ही हैं। कर्मयोग का लक्ष्य अन्तःकरण को शुद्ध बनाना है। श्राद्ध-क्रिया भी शास्त्र के विधानानुसार एक अनिवार्य कर्त्तव्य है और भी अन्तःकरण को पवित्र बनाती है। इसके अतिरिक्त पितर गण भी प्रसन्न होते हैं और उनकी शुभकामनाएँ तथा उनके आशीर्वाद हमारी भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति में सहायक होते हैं।

जो मनुष्य पुत्र के बिना मरते हैं, उन्हें परलोक में दुःख भोगना पड़ता है; परन्तु यह बात नित्य ब्रह्मचारी और आध्यात्मिक साधकों पर लागू नहीं होती जो कि सभी स्वार्थमयी कामनाओं और लौकिक प्रवृत्तियों को त्याग कर अध्यात्म-पथ का अनुगमन करते हैं। यही कारण है कि लोग मरने से पूर्व दत्तक पुत्र लेते हैं जिससे कि वह उनके मरण के अनन्तर उनकी विधिवत् श्राद्ध-क्रिया करता रहे। गीता भी इस मत का पोषण करती है : "पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः"—उनके पितर पिण्डदान तथा तर्पण का लोप हो जाने से अधोगति को प्राप्त होते हैं।

परन्तु यदि एक मनुष्य धार्मिक मनोवृत्ति वाला है और यदि उसमें विवेक तथा वैराग्य है, यदि उसकी वेदों तथा शास्त्रों में श्रद्धा है, यदि वह अपने जीवन के अन्तिम समय तक धार्मिक जीवन व्यतीत करता रहा है तथा यदि वह अपने जीवन के अन्तिम दिनों को जप, ध्यान, स्वाध्याय आदि में बिताता रहा है, तो यदि उसके पुत्र न हो तो भी उस व्यक्ति का पतन नहीं होता है। वह अवश्य ही पूर्ण शान्ति का उपभोग करेगा। उसे अज्ञान के प्रगाढ़ अन्धकार का अनुभव नहीं करना पड़ेगा। संसार के निम्न आकर्षणों से वह मुक्त रहेगा। ईश्वर उसकी प्रगति की सँभाल रखता है। उसमें आत्मसमर्पण की भावना होती है; अतः उसके पतन का भय नहीं रहता है। उसे मानसिक

शुद्धता प्राप्त हुई रहती है। सभी धार्मिक क्रियाओं का उद्देश्य चित्त-शुद्धि ही है। इस चित्त की शुद्धि को मनुष्य अपने पिछले संस्कारों तथा पूर्व-जन्म के धर्मपरायण जीवन के प्रताप से प्राप्त करता है।

भारत में किसी-किसी जाति के लोग श्राद्ध-क्रिया के पीछे केवल दिखाके लिए विपुल धनराशि अन्धाधुन्ध व्यय करते हैं। यह अपव्यय है। विलासिता के लिए धन नही नष्ट करना चाहिए। यह सोचना भूल है कि अधिक धन व्यय करने से पितरों को अधिक शान्ति प्राप्त होगी। पितरों की शान्ति में धन कोई महत्त्व नही रखता है। जिस भाव से श्राद्ध किया जाता है, उसकी गम्भीरता ही इस विषय में मूल्यवान् है।

श्राद्ध के ऐसे अवसरों पर निधन तथा योग्य व्यक्तियों को भली प्रकार भोजन कराना चाहिए तथा उनके जीवन की आवश्यकताओं की भी पूर्त्ति करनी चाहिए। ऐसे दिनों में शास्त्रों का पाठ कराना चाहिए। श्राद्ध-क्रिया करने वाले व्यक्ति को स्वयं भी जप, ध्यान, मौन इत्यादि आध्यात्मिक नियमों का पालन करना चाहिए। उसे उस समय ब्रह्मचर्य का पूर्ण रीति से पालन करना चाहिए। उसे प्रमाद में अपना समय नहीं नष्ट करना चाहिए। सारा दिन उसे भगवान् के भजन-कीर्तन मे लगाना चाहिए। समयोपयुक्त वैदिक सूक्तों का पाठ कराना चाहिए। उपनिषद् में दी हुई नचिकेता की कथा सुननी चाहिए। इस प्रकार से श्राद्ध करने वाले यजमान को अमरता प्राप्त होती है।

वैदिक धर्म का पुनरुत्थान कीजिए। सन्मार्ग का अनुसरण कीजिए। श्राद्ध-क्रियाओं को कीजिए। धर्म-मार्ग के प्रति अपने प्रमाद और उदासीनता को दूर हटाइए। उठिए; जागिए!

सत्य के मूल को पकड़िए। अपने वर्णाश्रम-धर्म में टिके रहिए। अपने कर्त्तव्य के पालन से बढ़ कर कोई अन्य यज्ञ नहीं। गीता का नित्य पाठ कीजिए। संसार में रहिए; परन्तु उसमें निमग्न मत बनिए। गीता के उपदेशों को आत्मसात् कीजिए। अपने जीवन में तथा प्रभु-साक्षात्कार में भी सफलता प्राप्त करने का यह एक सर्वाधिक निश्चित मार्ग है।

आप अनन्त आत्मा के आनन्द का अनुभव करें! अपने स्व-धर्म के नियमित आचरण, हरि-नाम के कीर्त्तन, दीन-दुःखियों की सेवा, सन्मार्ग के अनुसरण, वेदों के नित्य स्वाध्याय तथा आत्मा पर ध्यान के द्वारा आप ब्रह्म के अजर-अमर पद को प्राप्त करें! आपको अपने कार्यों में भगवान् का मार्ग-दर्शन प्राप्त होता रहे!

७. दिवङ्गत आत्मा के लिए प्रार्थना और कीर्त्तन

प्रार्थना और सद्‌कामना तथा कीर्त्तन इत्यादि दिवङ्गत आत्मा के लिए सहायता करते हैं, संसार के प्रायः सभी धर्मों में मृत व्यक्ति के लिए प्रार्थनाएँ महत्त्वपूर्ण मानी गयी हैं। कैथोलिक गिरजाघरों में मृत व्यक्ति के लिए प्रार्थना की जाती है।

प्रार्थना आकाशवाणी के सिद्धान्त की भाँति कार्य करती है और वह सद्भावनाओं की लहरियों को उसी भाँति प्रसारित करती है जैसे कि आकाशवाणी शब्द की लहरियों को प्रसारित करती है।

भजन अथवा कीर्त्तन एक प्रवल शक्ति है जो कि मृत व्यक्ति की आत्मा को स्वर्ग के मार्ग में आगे बढ़ने में तथा स्वर्ग तक जाने के बीच के मार्ग में सहायता देती है।

मृत्यु होने के पश्चात् तुरन्त ही मृत व्यक्ति की जीवात्मा मूर्च्छावस्था में होती है। उसे यह पता नहीं होता कि वह

ने पूर्व के स्थूल भौतिक-शरीर से वियुक्त हो गयी है। उसके व और सम्बन्धी उसके लिए जो प्रार्थना, कीर्त्तन और सद्भा- ा करते हैं, उनसे उस दिवङ्गत आत्मा को बहुत ही आश्वासन त होता है। वे सब एक शक्तिशाली स्पन्दन का निर्माण करते और उससे वे जीव को उसकी मूर्च्छावस्था से जगाते है और पुनः सचेत करते हैं। अब उस मृत व्यक्ति की जीवात्मा यह अनुभव होने लगता है कि वह अब वास्तव में अपने ल भौतिक शरीर में नहीं है।

तत्पश्चात् जीवात्मा मर्त्यलोक की सीमा को— एक पतली ी को पार करने के लिए प्रयत्नशील होता है। इस नदी को न्दू लोग वैतरणी, पारसी चिन्नत सेतु तथा मुसलमान सीरात हते हैं।

मरने वालो के लिए उनके सम्बन्धो जन ज रोते-पीटते ा असह्य खेद प्रकट करते हैं, इसमे उन दिवङ्गत आत्माओं ो बहुत ही दु.ख पहुँचता है और उन्हे ऊपर के लोकों से नीचे ीच लाता है। यह उनकी स्वर्ग-यात्रा में रोड़े अटकाता है। सससे उन्हें बहुत बड़ा आघात पहुँचता है। जब वे शान्ति में ामग्न हो रहे होते है और जब वे स्वर्ग की अलौकिक जागृति लिए तैयारी कर रहे होते है, ऐसे समय मे उनके प्रमी और म्बन्धी जन रोने-बिलखने से उनके इहलौकिक जीवन की मृति सजीव बनाते हैं। सगे-सम्बन्धियों के विचार उन जीवा- ाओं के मन में सहधर्मी स्पन्दन उत्पन्न करके उनमें असह्य ष्ट और बेचैनी उत्पन्न करते है।

अतः दिवङ्गत आत्मा की शान्ति के लिए उसके सगे- म्बन्धी तथा प्रेमीजनो को प्रार्थना तथा कीर्त्तन करने चाहिए। इस भाँति ही वे दिवङ्गत आत्मा को सच्ची सहायता तथा सान्त्वना दे सकते हैं। यदि दस बारह व्यक्ति एकत्र होकर

प्रार्थना और कीर्त्तन करें तो निश्चय ही अधिक शक्तिशाली तथा प्रभावकर होगा। सामूहिक भजन-कीर्त्तन का अद्भुत् प्रभाव पड़ता है।

३. मरणासन्न व्यक्ति के पास शास्त्रों का पाठ क्यों किया जाता है ?

मनुष्य किसी निश्चित उद्देश्य को लेकर ही इस संसार जन्म धारण करता है। इन्द्रिय-सुख भोगने के लिए ही उसने इस संसार में जन्म नहीं लिया है। मानव-जीवन का ध्येय आत्म-साक्षात्कार अथवा भगवद्दर्शन है। हमारे जीवन की विविध प्रकार की प्रवृत्तियों का अन्तिम उद्देश्य इस लक्ष्य को प्राप्त करना ही होना चाहिए, अन्यथा यह जीवन निरर्थक ही होगा। यदि मनुष्य जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करता तो उस मनुष्य के जीवन में और पशु के जीवन में कोई अन्तर नहीं है।

गीता में आप देखेंगे कि 'इसमें कोई सन्देह नहीं कि अन्त समय में जो मुझको स्मरण करते-करते शरीर को त्याग करता है, वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है।'

(गीता ८-५)

मृत्यु-काल में जब रोग शरीर को कष्ट पहुँचाते रहते हैं, जब चेतना धुंधली पड़ जाती है, उस समय ईश्वर-भाव को बनाये रखना बहुत ही दुष्कर है। कई व्यक्ति ऐसा सोचते हैं कि मनुष्य को किस लिए साधु बन जाना चाहिए और उसे किस लिए अपना जीवन हिमालय में व्यतीत करना चाहिए ? आवश्यकता तो इस बात की है कि मरण के समय मनुष्य भगवान् को स्मरण करे और यह बात घर बैठे भी हो सकती है—यह एक भूल है।

यदि भगवान् की पूर्ण कृपा हो तभी मरण-काल में मनुष्य को भगवान् का विचार आता है। आपको प्रभु के नाम-स्मरण का अभ्यास प्रतिदिन, प्रति घण्टा तथा प्रति क्षण करना चाहिए। यदि आप अपने जीवनभर सतत अभ्यास करके दृढ़-संस्कार बना लेंगे, तभी मृत्यु-काल में भगवान् को स्मरण करना आपके लिए सरल होगा। इसके लिए आपको किसी सन्त-महात्मा की सङ्गति में रह कर इसकी शिक्षा प्राप्त करनी होगी और तत्पश्चात् आपको सुसंयमित जीवन व्यतीत करना होगा। यदि आप संसार में रहते हुए यह सब-कुछ कर सकें तो आपके आत्मविकास के लिए यह बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा। इस भाँति आप संसार में रहते हुए भी संसार से बाहर रह सकेंगे।

सारा दिन सांसारिक प्रवृत्तियों और रात्रि निद्रा में व्यतीत करने से आपको भगवच्चिन्तन के लिए समय ही नहीं मिलेगा। यदि आप प्रतिदिन दस-पन्द्रह मिनट थोड़ा जप करें और उसके अनन्तर शेष समय सांसारिक प्रवृत्तियों में व्यतीत करें तो इससे आप विशेष आध्यात्मिक प्रगति नहीं कर सकेंगे। अतः नामस्मरण सदा चालू रखना चाहिए जिससे कि मृत्यु-काल आ उपस्थित होने पर भी ईश्वर का विचार स्वयमेव जग उठे।

एक भक्त भगवान् से कहता है, 'प्रभो, अपने पाद-पद्म की शीतल छाया में मुझे आज ही ले लीजिए, जिस समय मेरी इन्द्रियाँ बलवती हैं और मेरी स्मृति ठीक है। मृत्यु-काल निकट आने पर जब बुद्धि क्षुब्ध और विकृत हो जाती है, उस समय शरीर के सन्तापों से मेरा मन विचलित हो जायगा।' मरण के समय शारीरिक दुर्बलता के कारण भगवान् के दृढ़ और सच्चे भक्त भी अपने प्रभु का स्मरण करना भूल जाते हैं।

इसी कारण से रोगी व्यक्ति के मरण की अन्तिम
आ पहुँचने पर गीता, भागवत, विष्णु-सहस्रनाम इ
धार्मिक ग्रन्थों का उसकी मृत्यु-शैया के पास पाठ किया
है। भले ही रोगी बोल न सकता हो, परन्तु जो-कुछ
जाता है, उसे वह सुने। इस प्रकार के धर्म-ग्रन्थों के
रोगी अपने शरीर की वेदना भूल जायेगा और उसे भ
का विचार आयेगा। मनुष्य की सदा ही यह अभिलाषा
है कि वह अपने चित्त को भगवान् में लगा कर मृत्यु की
में सदा के लिए शान्तिपूर्वक सो जाये। जब उसकी स
शक्ति काम नहीं करती तब धर्म-शास्त्रों की पवित्र वाणी
उसके वास्तविक स्वरूप का स्मरण करायेगी।

सामान्य रीति से मृतप्राय व्यक्ति अनेक भयावह वि
से ग्रस्त हो जाता है। वह अपने मन को भगवान् में नहीं
सकता है। उसके मन में असङ्ख्य विचार छाये रहते हैं
ऐसे विचार आते हैं: "यदि मैं मर गया तो मेरी नव
पत्नी तथा बालकों की देखरेख कौन करेगा? मेरी स
का क्या होगा? मेरे देनदारों से ब्याज-बट्टे कौन उगा
मुझे अमुक-अमुक काम करना बाकी रह गया है। दूसरा
अभी तक अविवाहित ही है। ज्येष्ठ पुत्र को अभी तक स
सुख देखने को नहीं मिला है। मेरा अमुक काम अधूर
गया है, कितने ही दावे तो न्यायालय में अनिर्णीत ही पड़े
इस भाँति अपने सम्पूर्ण जीवन के पुनरावलोकन तथा भ
की चिन्ता में दुःखी होता है।

जब धर्म-ग्रन्थों का पाठ किया जाता है और भगवा
लीलाओं में उसका अनुराग उत्पन्न होता है, तब यह
सम्भव है कि उस समय वह अपनी सांसारिक आसक्तियों

भूल जाये। उसके पास एकत्रित हुए सम्बन्धियों को रोना-धोना नही चाहिए। इससे उसके मन को और भी अधिक दुःख पहुँचता है। उन्हें चाहिए कि वे उसे एकमात्र भगवान् का चिन्तन करने के लिए प्रोत्साहित करें। ऐसा करने से जब रोगी व्यक्ति का मन संसार के माया-जाल से धीरे-धीरे हट कर प्रभु के चित्र, लीला तथा उपदेशों मे लीन होने लगता है तब उसके अन्तिम श्वास के विसर्जन के लिए सभी प्रकार का अनुकूल वातावरण प्रादुर्भूत होता है। उसका मन भी भगवच्चिन्तन में लग जाता है।

वह व्यक्ति इस समय अपने पापों के लिए पश्चात्ताप करता है और भगवान् से सच्चे मन से प्रार्थना करता है। सच्ची प्रार्थना बुरे कर्मों के कुप्रभाव को दूर कर सकती है। पल-मात्र में ही उसमें विवेक तथा वैराग्य जग उठता है। यदि मरण की अन्तिम घड़ी में भी सच्चा विवेक और वैराग्य मनुष्य के अन्दर जाग उठे तो उसको सन्तोष देने के लिए पर्याप्त है, क्योंकि उसका जीवात्मा इसके लिए लालायित रहता है।

अजामिल एक पुण्यात्मा व्यक्ति था; परन्तु वन में एक दुष्ट स्त्री के सम्पर्क में आ कर उसने अपने सारे तेज और तप.शक्ति को नष्ट कर डाला। हाथ में पाश और शूल लिये हुए यम के दूत जब उसे धमकाने लगे, तब उन्हें देख कर उसने अपने छोटे पुत्र नारायण को पुकारा। ज्यों ही उसने नारायण का नाम उच्चारण किया, विष्णु के पार्षद उसी समय वहाँ विमान लेकर आ उपस्थित हुए और उन्होने यम-दूतो को मार भगाया। अजामिल को वे अपने साथ वैकुण्ठ-धाम को ले गये।

राजा परीक्षित ने जन्म-जात योगी तथा वेद व्यास के पुत्र श्री शुकदेव जी से एक सप्ताह तक श्रीमद्भागवत की कथा सुनी।

उस राजा ने सात दिन तक उपवास किया। सातवें दिन श्री शुकदेव मुनि ने उन्हें ब्रह्मविद्या का उपदेश किया। उन्होंने परम तत्त्व का ध्यान किया और वे उसके साथ तद्रूप हो गये। भयानक तक्षक नाग ने उनके सामने प्रगट होकर अपने कालकूट विष से उन्हें डँस लिया। परीक्षित को ऐसा लगा मानो कोई नन्हाँ कीट उनके पाँवों को काट रहा है। वे देह-भावना से ऊपर उठ चुके थे। तक्षक के काटने के पूर्व ही उन्होंने अपने शरीर को योगाग्नि में भस्म कर डाला था।

खट्वाङ्ग राजा ने मात्र एक घण्टे में परब्रह्म का साक्षात्कार किया था। यह महापुरुष जीवनभर उग्र साधना और भगवान् को सतत स्मरण करते रहे थे।

भगवान् के निरन्तर स्मरण द्वारा आप सब अपने इस जीवन में ही भगवान् के दर्शन प्राप्त करें! यह शरीर-त्याग करते समय भगवान् आपके सम्मुख प्रकट हो दर्शन दें!

नवम प्रकरण

मृत्यु पर विजय

मृत्यु पर विजय

१. मृत्यु पर विजय

सभी मनुष्य मृत्यु से अत्यन्त भयभीत रहते हैं। कोई भी काल का ग्रास नहीं बनना चाहता है। आत्मा अमर है और वह आत्मा शरीर से भिन्न है; इस बात का जिन्हें ज्ञान हो गया है, वे बुद्धिशाली पुरुष भी मृत्यु से बहुत ही भयभीत रहते है। शरीर के प्रति यह मोह अद्भुत है। माया अथवा अविद्या आश्चर्यमय है।

यह शरीर सभी प्रकार के विषयों के भोगने का साधन है। यही कारण है कि मनुष्य अपने शरीर से इतना आसक्त है। अविद्या के कारण वह स्वय को शरीर मान बैठता है। मानव की यह एक भूलभरी असमीचीन धारणा है कि जो शरीर अशुद्ध, अचेतन, क्षणभङ्गुर तथा दुःखस्वरूप है उसे वह शुद्ध, चेतन, अव्यय तथा सुखस्वरूप आत्मा मानता है। इसके कारण ही वह जन्म-मृत्यु के चक्र म फँसा रहता है। अविद्या अथवा अज्ञान के कारण मनुष्य ने अपनी विवेक-शक्ति खो दी है। इस अविद्या से अविवेक का जन्म हुआ। इसके कारण अविनाशी और विनाशशील का, सत् और असत् का, आत्मा और अनात्मा का, ऋत और अनृत का तथा जड़ और चेतन का भेद वह नही जान सकता है। अविद्या से अहङ्कार का जन्म हुआ है। जहाँ कहीं भी अहङ्कार रहता है, वहीं राग और द्वेष—ये दोनों वृत्तियाँ रहती हैं। वह राग-द्वेष के वश हो काम करता है। अपने किये हुए कर्मों का फल भोगने के लिए नये-नये शरी

धारण करता है। अतः मानव के दुःख का मूल कारण अविद्या ही है। सम्पूर्ण कर्म तथा जन्म का भी कारण अविद्या ही है। यदि आप अविनाशी आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर अपने को अविद्या से मुक्त कर लें, तब आप मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेंगे तथा अविनाशी सच्चिदानन्द ब्रह्म में विलीन हो जायेंगे।

ज्ञानयोग का साधक साधन-चतुष्टय—विवेक, वैराग्य षट् सम्पत् तथा मुमुक्षुत्व से अपने को सम्पन्न बनाता है और तब वह साधक श्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाकर श्रुतियों का श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन करता है। वह निर्गुण ब्रह्म पर सतत ध्यान करता है और आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करता है। इस भाँति वह मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है।

भक्तियोग का साधक नवविधा भक्ति का विकास करता है। वह मन्त्र-जप, कीर्त्तन और भागवतों की सेवा करता है। वह स्वेच्छा से अपने को पूर्ण रूप से भगवान् के चरणों में समर्पित कर देता है। वह भगवान् से निवेदन करता है : 'भगवन्! मैं आपका ही हूँ। यह सर्वस्व आपका ही है। आपकी इच्छानुसार ही सब-कुछ हो।" वह प्रभु का दर्शन पाता है और इस भाँति वह मृत्यु पर अधिकार प्राप्त कर लेता है।

राजयोग का साधक यम-नियम का पालन करता है। वह स्थिर आसन में बैठता है, प्राणायाम-क्रिया के द्वारा श्वास-प्रश्वास की गति का निरोध करता है, इन्द्रियों का निग्रह करता है, प्रत्याहार द्वारा चित्त की वृत्ति का निरोध करता है तथा धारणा, ध्यान और समाधि का अभ्यास करता है। इस भाँति वह मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है।

हठयोग का साधक आसन, प्राणायाम, बन्ध तथा मुद्रा के अभ्यास द्वारा मूलाधार-चक्र में प्रसुप्त कुण्डलिनी-शक्ति को जगाता है और उस शक्ति को मूलाधार में से स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र में ले जा कर सहस्रार-चक्र में शिव के साथ संयोजित करता है। इस भाँति वह मृत्यु पर विजय पा लेता है।

कर्मयोगी सतत निःस्वार्थ सेवा के द्वारा अपने अन्तःकरण को शुद्ध करता है। आत्म-त्याग के द्वारा वह अपने अहङ्कार को मारता है और उसके द्वारा वह ज्ञान-ज्योति प्राप्त करता है। इस भाँति वह मृत्यु पर विजयी होता है।

२. मृत्यु क्या है तथा उस पर किस तरह विजयी हों?

मृत्यु तो रूप का परिवर्तन मात्र है। सूक्ष्म शरीर का स्थूल शरीर से विलग होना ही मृत्यु कहलाती है। प्रिय विश्वनाथ! आप मृत्यु से इतना क्यों भयभीत हो रहे हैं?

मृत्यु के अनन्तर जन्म उसी प्रकार आता है जैसे कि निद्रा के अनन्तर जागरण। पिछले जीवन में आपका जो काम अधूरा रह गया था उसे आप पुन. चालू कर देंगे। अत: मृत्यु से भयभीत न बनिए।

मृत्यु का विचार सदा ही धर्म तथा धार्मिक जीवन की सबसे प्रबल प्रेरक शक्ति रहा है। मनुष्य मृत्यु से भयभीत रहता है। अपनी जरावस्था में वह भगवान् को स्मरण करने का प्रयास करता है। यदि वह अपनी बाल्यावस्था से ही ईश्वर के स्मरण करने में लग जाये तो वृद्धावस्था के आने तक वह बहुत अच्छी आध्यात्मिक फसल काट सकेगा। मनुष्य कभी भी मर

नहीं चाहता है। वह सदा जीवित बना रहना चाहता है। यहीं
से दर्शनशास्त्र की विचारधारा का प्रारम्भ होता है। दर्शन इस
विषय की पूरी जाँच-पड़ताल तथा छानबीन करता है। वह
साहसपूर्वक घोषित करता है : "हे मानव ! तू मृत्यु से भयभीत
मत बन। एक अमर धाम है और वह ब्रह्म है। वही तेरा अपना
आत्मा है जो कि तेरे हृदय-गुहा में निवास करता है। अपने
अन्तःकरण को शुद्ध बना और उस शुद्ध, अमर, अव्यय आत्मा
का ध्यान धर। ऐसा करने से तू अमर पद पा लेगा।"

हे मानव! मृत्यु से जरा भी भयभीत न बनिए। आप अवि-
नाशी हैं। मृत्यु जीवन की विपरीत अवस्था नहीं है। यह तो
जीवन का एक चरण मात्र है। जीवन तो निरन्तर अविराम गति
से चलता ही रहता है। फल नष्ट हो जाता है; परन्तु बीज तो
जीवन से ओत-प्रोत बना रहता है। बीज नष्ट हो जाता है;
परन्तु उसमें से एक विशाल वृक्ष का जन्म होता है। यह वृक्ष
भी विनाश को प्राप्त होता है; परन्तु इसमें से कोयला उत्पन्न
होता है। जल लुप्त होकर अदृश्य वाष्प का रूप धारण करता
है जिसमें एक नये जीवन का बीज होता है; पाषाण नष्ट होता
है और चूना बनता है। यह चूना नव-जीवन से सम्पन्न होता
है। केवल भौतिक कोश का ही विसर्जन होता है, जीवन तो
बना ही रहता है।

मित्र ! क्या आप बतला सकते हैं कि इस संसार में क्य
कोई ऐसा भी व्यक्ति है जिसे मृत्यु से भय न हो ? क
ऐसा भी मनुष्य है जिसके जीवन का सन्तुलन घ
सङ्कट के आ जाने पर भी दोलायमान न हो चला हो अथ
जब वह असह्य वेदना से पीड़ित हो तब भी वह भगवान्
नाम नहीं लेता हो। नास्तिको ! तब आप भगवान् की सत्ता

क्यों अस्वीकार करते हैं ? जब आप सङ्कटग्रस्त होते हैं तब आप स्वयं ही उसकी सत्ता को स्वीकार करते हैं। अपनी विकृत बुद्धि तथा सांसारिक मद के कारण आप नास्तिक बन बैठे हैं। क्या यह एक भयङ्कर भूल नहीं है ? गम्भीरतापूर्वक विचार कीजिए। वाद-विवाद को छोड़िए। उस प्रभु को स्मरण कर अभी-अभी अमरता तथा अनन्त शान्ति प्राप्त कीजिए।

गरुड़पुराण तथा आत्मपुराण में ऐसा वर्णन किया गया है कि मृत्यु की वेदना बहत्तर सहस्र बिच्छुओं के डङ्कों की वेदना के समान असह्य होती है। इस प्रकार भयानक शब्दों में वर्णन करने का तात्पर्य तो केवल इतना ही है कि उससे सुनने और पढ़ने वालों के मन में भय उत्पन्न हो और वे मोक्ष के लिए प्रयत्न करने को बाध्य हों। प्रेतात्म-विद्या में सभी उच्च आत्माओं ने एक मत से यह सूचित किया है कि मृत्यु के समय रञ्चमात्र भी दुःख नहीं होता है। वे अपनी मरणावस्था के अनुभवों का स्पष्ट वर्णन करते हैं। वे बतलाते हैं कि अब वे इस स्थूल शरीर के भारी भार से मुक्त हो चुके हैं। स्थूल शरीर के छोड़ने के समय वे पूर्ण शान्त थे। माया उनके शरीर में मरोड़ तथा झटके आदि उत्पन्न कर देखने वालों के मन में अनावश्यक भय का सञ्चार करती है। यह तो माया का स्वभाव तथा प्रकृति ही है। मृत्यु-यातना से भयभीत मत बनिए। आप स्वयं अमर आत्मा हैं।

जप, कीर्त्तन, दीनदुःखियों की सेवा तथा ध्यान के द्वारा ईश्वरमय जीवन व्यतीत करने का सतत प्रयास कीजिए। तभी आप काल पर विजय प्राप्त कर सकेंगे।

जब भगवान् यमराज आपके प्राण लेने के लिए आ उपस्थित होंगे, उस समय वे यह बहाना नहीं सुनेंगे कि 'मुझे

अपने जीवन में भगवान् का भजन करने का समय नहीं मिला।'

एकमात्र ब्रह्मज्ञान ही हमें अज्ञान तथा मृत्यु के चङ्गुल से मुक्त कर सकता है। निदिध्यासन के द्वारा हमें इस ज्ञान की अपरोक्षानुभूति होनी चाहिए। केवल विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता, अथवा शास्त्रों का पाठ ही हमें अपने जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक नहीं हो सकते। यह तर्क का विषय नहीं है, यह तो प्रत्यक्ष अनुभव का विषय है।

आत्म-साक्षात्कार आपकी अविद्या अज्ञान को दूर करेगा। यह अविद्या ही मानव के दुःखों का मूल कारण है। आत्म-साक्षात्कार आपके अन्दर आत्मा की एकता का ज्ञान जाग्रत करेगा। यह दुःख, शोक, भ्रम तथा संसार के आवागमन-रूप जन्म-मृत्यु के भयङ्कर दुःख को दूर करने का साधन है। यह आत्मा की एकता का ज्ञान ही है।

सूक्ष्म विषयों के नियमित अभ्यास के परिणामस्वरूप इस संसार में जो आगामी जीवन प्राप्त होता है उसमें सूक्ष्म विषयों के चिन्तन की सुव्यवस्थित शक्ति होती है। इसके विपरीत चपलता, उतावले विचार, मन का एक विषय पर से शीघ्र दूसरे विषय पर भागना आदि बातें आगामी जीवन में मन को अशान्त तथा अव्यवस्थित बनाती हैं।

आपके हृदय-मन्दिर में शुद्ध ज्ञान का सूर्य प्रकाशित हो रहा है। सब सूर्यों का सूर्य यह आत्मा स्वयं-प्रकाश है। यह सभी प्राणियों का आत्मा है तथा मन और वाणी से परे है। यदि आप इस आत्मा का साक्षात्कार कर लें तो आपका इस मर्त्यलोक में पुनरावर्त्तन नहीं होगा।

माया ने अपने इन्द्रजाल से इस संसार-रूपी नाटक की रचना की है, जिसमें जन्म और मरण ये दो काल्पनिक दृश्य हैं। वास्तव में न तो कोई आता है और न कोई जाता है।

एकमात्र आत्मा ही सदा विद्यमान रहता है। आत्म-विचार के द्वारा भय और मोह को नष्ट कीजिए और सदा शान्ति में विश्राम लीजिए। 'मैं उन महान् से भी महान् परम पुरुष को जानता हूँ। वे सूर्य की भाँति प्रकाशस्वरूप हैं तथा अविद्या-रूप अन्धकार से सर्वथा अतीत हैं। उनको जानकर ही मनुष्य मृत्यु का उल्लङ्घन करने में समर्थ होता है। परम पद की प्राप्ति के लिए इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग (उपाय) नहीं है।'
(यजुर्वेद ३१-१८१)

योग के मार्ग में जो भी प्रयत्न किया जाता है, वह कभी भी निष्फल नहीं जाता है। आपको योग की थोड़ी-सी प्रक्रिया के अभ्यास का भी फल अवश्य प्राप्त होगा। यदि आपने अपने वर्तमान जीवन में योग के प्रथम तीन अङ्ग - यम, नियम और आसन के अभ्यास में सफलता प्राप्त कर ली है तब आप आगामी जीवन में उसके चतुर्थ अङ्ग—प्राणायाम से अपना योगाभ्यास प्रारम्भ करेंगे। जिस वेदान्ती ने अपने वर्तमान जीवन में विवेक और वैराग्य, इन दो साधनों का अर्जन कर लिया वह अपने अगले जीवन में शम-दम आदि षट्सम्पत् से अपना अभ्यास आरम्भ करेगा। अत. यदि आप अपने इस जीवन में कैवल्य अथवा असम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त करने में असफल रहते हैं, तो उससे आपको किञ्चिन्मात्र भी हताश होने की आवश्यकता नहीं है। स्वल्पकाल के लिए साधारण अभ्यास भी आपको अधिक बल, अधिक शान्ति, अधिक आनन्द तथा अधिक ज्ञान प्रदान करेगा।

आपकी मृत्यु नहीं हो सकती है, क्योंकि आपका कभी जन्म ही नहीं हुआ। आप तो अमर आत्मा हैं। माया ने जो कृत्रिम नाटक की रचना की है उसमें जन्म और मृत्यु ये दो अस्र

हैं। इनका सम्बन्ध केवल भौतिक शरीर से है और यह भौतिक शरीर पञ्च तत्त्वों के सम्मिश्रण की मिथ्या उपज है। जन्म और मरण का विचार केवल मूढ़ विश्वास है।

यह भौतिक शरीर तो मिट्टी का एक पुतला है, जिसे भगवान् ने अपनी लीला के लिए बना रखा है। वे ही इसके सूत्रधार हैं। जब तक उनकी इच्छा होती है तब तक वे इस खिलौने को दौड़ाते रहते हैं और अन्त में वे उसे तोड़-फोड़ कर फेंक देते हैं। तब दो का खेल समाप्त हो जाता है और एकमात्र वे ही रह जाते हैं। जीवात्मा परमात्मा में विलीन हो जाता है।

आत्मज्ञान मृत्यु-सम्बन्धी सभी भय को दूर कर देता है। मनुष्य अकारण ही मृत्यु से भयभीत रहते हैं। मृत्यु तो निद्रा के समान है और जन्म प्रातःकाल निद्रा से जागने के समान है। जिस भाँति आप नये वस्त्र धारण करते हैं उसी भाँति आप मृत्यु के पश्चात् नया शरीर धारण करते हैं। जीवन-प्रवाह में मृत्यु एक स्वाभाविक घटना है और यह आपके विकास के लिए आवश्यक है। यह पार्थिव शरीर जब नये काम और उद्योग के लिए अयोग्य हो जाता है तब भगवान् रुद्र उसे ले जाते हैं और उसके स्थान में नया शरीर प्रदान करते हैं। मृत्यु के समय किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता है। मृत्यु के विषय में अज्ञानी लोगों ने बहुत ही भय और आतङ्क उत्पन्न कर रखा है।

एकमात्र ब्रह्म ही सत् है। जैसे रज्जु में सर्प का आरोप करते हैं वैसे ही ब्रह्म में इस संसार और शरीर का अध्यारोप किया गया है। जब तक रज्जु का ज्ञान नहीं होता है और सर्प का विचार बना रहता है तब तक आप भय से मुक्त नहीं हो सकते हैं। ठीक इसी प्रकार जब तक आप ब्रह्म का साक्षात्कार

नहीं कर लेते तब तक यह संसार आपके लिए ठोस सत्य बना रहेगा । जब आप प्रकाश की सहायता से रज्जु को देखते हैं तब सर्प की भ्रान्ति जाती रहती है और भय भी दूर हो जाता है । इसी भाँति जब आप ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेते हैं तब यह जगत् विलीन हो जाता है और आप जन्म-मृत्यु के भय से मुक्त हो जाते हैं ।

कभी-कभी आप ऐसा स्वप्न देखते हैं कि आप मर गये हैं और आपके सम्बन्धी रो रहे हैं । अपनी उस मृत्यु की कल्पित अवस्था में भी आप अपने सम्बन्धियों को विलाप करते हुए देखते तथा सुनते हैं । इससे यह स्पष्ट होता है कि इस प्रत्यक्ष मृत्यु के उपरान्त भी जीवन का अस्तित्व बना रहता है । भौतिक शरीर के विसर्जन के पश्चात् भी आप विद्यमान रहते हैं । यह अस्तित्व ही आत्मा अथवा 'अहं' है ।

यदि आप अपने हृदय में निहित अमर आत्मा का साक्षात्कार कर लेते हैं, यदि अविद्या, काम और कर्म—इन तीन ग्रन्थियों का भेदन हो जाता है, यदि अविद्या, अविवेक, अहङ्कार राग-द्वेष, कर्म तथा देह से निर्मित अज्ञान की शृङ्खला टूट जाती है तो आप जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जायेंगे और आप अमर धाम में प्रवेश करेंगे ।

३. अमरता की खोज

हे मानव ! धन-सम्पत्ति, बङ्गला और बाग से आपको क्या काम है ? मित्रों और सम्बन्धियों से आपको क्या काम है ? स्त्री और बच्चों से क्या काम है ? अधिकार, नाम, यश, पद और गौरव से आपको क्या काम है ? आपका मरण अवश्यम्भावी है । इस संसार की सभी बातें अनिश्चित हैं; परन्तु

मृत्यु एक निश्चित वस्तु है। अपनी अमर आत्मा की खोज कीजिए, जो कि आपकी हृदयगुहा में ही स्थित है।

आध्यात्मिक सम्पत्ति ही वास्तव में अक्षय सम्पत्ति है। दिव्य ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है। मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का मार्ग ढूँढ़ निकालिए। अविनाशी आत्मा का साक्षात्कार कीजिए और स्वतन्त्रता और पूर्णता, अजरता और अमरता को प्राप्त कीजिए।

दैववादी सांसारिक जन धर्म और उच्च पारमार्थिक बातों की ओर ध्यान नहीं देते हैं। उन्हें परमात्मा, आवागमन का सिद्धान्त, अमर आत्मा, योग-साधना, साधन-चतुष्टय के विषय की कुछ भी चिन्ता नहीं है। वे तो दो बातें ही अच्छी तरह जानते हैं: जेब भरना और पेट भरना। वे खाते-पीते हैं, आमोद-प्रमोद करते हैं, सोते हैं, सन्तान उत्पन्न करते हैं और नाना प्रकार के कपड़े पहनते हैं।

कुछ लोग विश्वविद्यालय की उपाधि प्राप्त करने के लिए सात समुद्र पार जाते हैं। कुछ लोग ताम्रपत्र को स्वर्ण में परिणत करने के लिए रसायनविद्या का अभ्यास करते हैं। कुछ लोग शतायुष्मान् बनने के लिए प्राणायाम का अभ्यास करते हैं। कुछ लोग विपुल धन-राशि के लिए व्यवसाय अथवा रुपये का लेन-देन करते हैं। यदि आप एक पल के लिए गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो आप देखेंगे कि ये लोग केवल खाने-पीने और सोने के झगड़े में ही पड़े रहते हैं। इन दो बातों के अतिरिक्त और वे कुछ नहीं करते हैं।

परन्तु जब उनका कोई प्रिय आत्मीय काल-कवलित हो जाता है, जब वे असाध्य रोगों से पीड़ित होते हैं तथा जब वे अपनी सम्पत्ति से हाथ धो बैठते हैं तब उनकी आँखें कुछ-कुछ

गुलती हैं। उन्हें सांसारिक जीवन से क्षणिक वैराग्य उत्पन्न होता है। वे प्रश्न करते हैं: "जीवन क्या है ? मृत्यु क्या है ? मृत्यु के उस पार क्या है ? मृत्यु से परे भी क्या कोई जीवन है ? मृत्यूपरान्त हमें कहाँ जाना होगा ?" उनमें विवेक तो होता नही है; अतः उनका वैराग्य शीघ्र ही लुप्त हो जाता है।

मनुष्य विषय-भोगों मे सुख पाने के लिए प्रयत्नशील होता है। अत्यधिक विषय-परायणता से इन्द्रियाँ क्षीण पड़ जाती हैं और उनके परिणामस्वरूप निराशा, रोग और व्याधि आ घेरते हैं। जितना ही अधिक वह इन्द्रिय-भोगों को भोगता है उतनी ही तृष्णा उसकी बढ़ती जाती है। उसे बहुत ही कटु अनुभव प्राप्त होता है। उसे अब यह ज्ञान हो जाता है कि शरीर और इन्द्रियों की भोग-वासना की तृप्ति मे वास्तविक सुख नहीं है। अन्त में वह अन्तर्स्थित अपनी आत्मा में सुख की खोज करने लगता है।

यदि आप किसी व्यक्ति को पीड़ा पहुँचायेंगे तो आपको दूसरे जीवन में पीड़ा भोगनी होगी, इस भाँति आप इस जीवन में जो बीज बोयेंगे उसका फल आपको अगले जीवन मे प्राप्त होगा। यदि आप किसी व्यक्ति के नेत्र को आघात पहुँचायेंगे तो अगले जीवन में आपके नेत्र को आघात पहुँचेगा। यदि आप किसी व्यक्ति का पैर तोड़ेंगे तो अगले जीवन मे आपका पैर टूटेगा। यदि आप किसी निर्धन व्यक्ति को भोजन करायेंगे तो आपको अगले जीवन मे बहुत भोजन प्राप्त होगा। यदि आप धर्मशालाएँ बनायेंगे तो आपको अगले जीवन मे बहुत से घर प्राप्त होंगे। क्रिया और प्रतिक्रिया परस्पर समान परन्तु प्रतिद्वन्द्वी होती हैं। कर्म का ऐसा नियम है। ऐसा ही यह चक्र है और इसमें से होकर ही आपको अपना मार्ग तय करना है।

बहुत से व्यक्ति धनवान् हैं; परन्तु वे अपने धन का समुचित उपभोग नहीं करते हैं। उनके पास विपुल सम्पत्ति है, उनके पास कई बङ्गले हैं; परन्तु फिर भी वे खिन्न हैं। उनका जीवन बहुत ही दुःखी है। वे कितनी ही जीर्ण व्याधियों के कष्ट से पीड़ित होते हैं। उनकी सन्तानें प्रमादी तथा स्वेच्छाचारी होती हैं। वे स्वयं कृपण होते हैं। उनके मित्र और सम्बन्धी भी उन्हें नहीं चाहते हैं। आप इसका क्या कारण बतलायेंगे ? वे अपने पिछले जीवन में धन के लिए लालायित थे, अतः उन्हें इस जीवन में धन प्राप्त हुआ; परन्तु वे लोग उसका ठीक उपयोग नहीं कर सकते हैं। वे अपने पिछले जीवन में स्वार्थी तथा क्रूर होते हैं। वे अपने जीवन में आचारवान् नहीं होते। अतः वे इस जीवन में कष्ट भोगते हैं।

सत्कर्म कीजिए। उत्तम तथा दिव्य विचारों को प्रश्रय दीजिए। सच्चरित्रता का निर्माण कीजिए। एक ही शुद्ध तथा पवित्र कामना—जन्म तथा मृत्यु के चक्र से मुक्त होने की कामना—रखिए।

आपके विचारों से ही आपका चरित्र बनता है। आप जैसा विचार करेंगे, वैसा ही आप बनेंगे। यदि आप सद्विचारों को प्रश्रय देते हैं तो आप सदाचारी व्यक्ति के रूप में जन्म ग्रहण करेंगे और यदि आप दुर्विचारों को प्रश्रय देते हैं तो आप दुराचारी व्यक्ति के रूप में जन्म लेंगे। यह प्रकृति का अकाट्य नियम है।

आपके वर्तमान जीवन की इच्छाएँ इस बात की निर्णायक हैं कि आपको अपने भावी जीवन में किस प्रकार के पदार्थ प्राप्त होंगे। यदि आपको धन की अधिक लालसा है तो आपको

अगले जीवन में धन प्राप्त होगा। यदि आपको अधिकार की अधिक कामना है तो आपको आगामी जीवन में अधिकार प्राप्त होगा। परन्तु ध्यान रहे कि धन और अधिकार आपको शाश्वत आनन्द और अमरत्व नहीं प्रदान कर सकते। आपको अपनी इच्छाओं के चुनाव में बहुत ही सावधान रहना चाहिए। एक ही दृढ़ इच्छा, मोक्ष की इच्छा रखिए। आप जन्म-मृत्यु के चक्र से शीघ्र ही मुक्त हो जायेंगे।

दशम प्रकरण

कथा-वार्त्ता

कथा-वार्त्ता

१. एक कीट की कहानी

युधिष्ठिर ने पूछा :

"हे पितामह जी ! मरने की इच्छा से तथा जीने की इच्छा से बहुत से मनुष्य अपने जीवन की इस युद्ध-रूपी महान् यज्ञ में आहुति देते हैं। इनके परिणाम-स्वरूप उन लोगों को क्या प्राप्त होता है ? यह मुझे बतलाइए। १।

"हे बुद्धिशाली पुरुष ! युद्ध मे जीवन को अर्पित कर देना मनुष्य के लिए बहुत ही खेदपूर्ण है। आप जानते है कि मनुष्य का जीवन चाहे जितना समृद्ध हो अथवा निर्धन, चाहे जितना सुखी हो अथवा दुःखी; परन्तु अपने जीवन का त्याग करना उसके लिए बहुत ही कठिन है। मेरे विचार मे आप सर्वज्ञ है, अतः आप इसका कारण बतलाएं।" २-३।

भीष्म ने कहा :

"हे राजन् ! सम्पत्ति अथवा विपत्ति मे, सुख अथवा दुःख में जीवन व्यतीत करते हुए सभी प्राणी इस संसार मे एक निश्चित रीति से आते हैं। ४।

"हे युधिष्ठिर ! आपने मुझसे बहुत ही उत्तम प्रश्न किया है। उसका जो कारण है, उसे मैं आपको बतलाता हूँ। आप ध्यान-पूर्वक सुनें। ५।

"राजन् ! इस विषय में द्वैपायन ऋषि और एक रेंगते हुए कीड़े के मध्य जो सवाद हुआ था, उसे मैं आपको सुनाता हूँ।६।

"प्राचीन काल में परम विद्वान् ब्राह्मण कृष्ण द्वैपायन जी
में तन्मय हो इस संसार में विचरण कर रहे थे, उस समय
होंने राजपथ पर, जिस पर बहुत से रथ आ रहे थे, एक कीट
ो तीव्र गति से भागते हुए देखा। ७।

"ऋषि प्रत्येक प्राणी की गति तथा भाषा के जानकार थे।
ो सर्वज्ञ थे; अतः उन्होंने कीट से इस प्रकार पूछा। ८।

'ऐ कीट! ऐसा प्रतीत होता है कि तुम बहुत ही भयभीत
तथा बड़ी उतावली में हो। मुझे बतलाओ कि तुम कहाँ भागे
जा रहे हो और किससे तुम्हें इतना भय लग रहा है?'। ९।

उस कीट ने कहा :

'विद्वन्; मैं उस बड़ी गाड़ी की आवाज सुन कर भयाक्रान्त
हूँ। यह गाड़ी बहुत ही भयङ्कर शब्द करती है। यह अब निकट
ही आ पहुँची है। १०।

'वह शब्द मुझे कर्णगोचर हो रहा है। क्या वह मुझे मार
नहीं डालेगा? मैं उससे दूर भाग जाना चाहता हूँ। मुझे बैलों
की आवाज सुनायी पड़ रही है। ११।

'भारी भार खींचते हुए वे बैल गाड़ीवान के कोड़ों की मार
से दीर्घ श्वासोच्छ्वास ले रहे हैं। गाड़ीवान की भिन्न-भिन्न
आवाज भी मैं सुन रहा हूँ। १२।

'हमारे जैसे कीट-योनि में उत्पन्न प्राणी इस प्रकार के शब्द
नहीं सहन कर सकते हैं। यही कारण है कि मैं इस अति-भया-
वह स्थिति से दूर भागा जा रहा हूँ। १३।

'सभी प्राणी मृत्यु को भयानक समझते हैं। जीवन को प्राप्
करना कठिन है। अतः मारे भय के मैं यहाँ से भागा ज
रहा हूँ। मैं इस सुख को छोड़ कर दुःख में नहीं पड़न
चाहता हूँ।"। १४।

भीष्म ने कहा :

"कीट के इस प्रकार कहने पर द्वैपायन व्यास ने पूछा :

'कीट ! तुम्हें सुख कहाँ से मिल सकता है ? तुम्हारा जन्म तो एक सामान्य मध्यम योनि में हुआ है। मैं तो समझता हूँ कि मृत्यु तुम्हारे लिए सुखद होगी। १५।

'शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा अन्य विविध प्रकार के उत्तम भोगों का तो तुम्हें पता ही नहीं है। अतः हे कीट ! अपनी मृत्यु तुम्हारे लिए लाभप्रद होगी'। १६।

कीट ने कहा :

'हे ज्ञानवान् पुरुष ! एक जीवधारी प्राणी किसी भी परिस्थिति में क्यों न पड़ा हो, वह उसी जीवन से आसक्त बन जाता है। इस कीट-योनि में भी मैं अपने को सुखी समझता हूँ। इसी कारण से मैं जीवित रहना चाहता हूँ। १७।

'इस अवस्था मे भी मेरे शरीर की आवश्यकतानुसार सभी प्रकार के भोग-पदार्थ उपलब्ध है। मनुष्य तथा अन्य प्राणियो के भोग पदार्थ भिन्न प्रकार के होते हैं। १८।

'पूर्व-जन्म मे मैं एक मनुष्य था। हे वीर ! उस समय मैं एक धनवान् शूद्र था। मुझे ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धा न थी। मैं क्रूर तथा दुराचारी था और बहुत ही अधिक ब्याज लेता था।१९।

'मेरी वाणी कठोर थी। मैं अपने छल-कपट को बुद्धिमानी समझता था। सभी प्राणियों से घृणा करता था। मेरे और दूसरों के मध्य जो समझौते होते थे, उनकी शर्तों का अनुचित लाभ उठाकर मैं सदा दूसरे के स्वत्वों को अपहरण करता था। २०।

'मैं स्वभाव का अभिमानी, जिह्वा-लोलुप तथा क्रूर लोभ

ही; अतः भूख लगने पर मैं अपने सेवकों तथा घर पर पधारे हुए अतिथियों को भोजन कराने के पूर्व ही अपने उदर की पूर्त्ति कर लिया करता था। २१।

'मैं धन का इतना अधिक लोभी था कि मैंने कभी भी देवताओं और पितरों को श्रद्धापूर्वक नैवेद्य अर्पित नहीं किया, यद्यपि एक गृहस्थ के रूप में मेरे लिए यह एक अनिवार्य कर्त्तव्य था।२२।

'जो लोग भयभीत हो मेरा आश्रय लेने के लिए मेरे पास आते उन्हें किसी प्रकार का रक्षण दिये विना दूर धकेल देता था। जो लोग भय से त्राण पाने की याचना करने के लिए आते, उनकी मैंने कभी भी सहायता नहीं की।२३।

'दूसरे लोगों के धन, धान्य, अन्यन्त प्रिय स्त्रियाँ, खान-पान के साधन तथा रहने के सुन्दर मकान आदि देख कर मुझे अकारण ही ईर्ष्या होती थी।२४।

'दूसरों का सुख देख कर मैं द्वेष से भर जाता था। मैं सदा यही चाहता था कि वे निर्धन बने रहें। इस भाँति अपनी इच्छाओं को सफल बनाने की आशा से मैं दूसरों के शील, सम्पत्ति और सुख के विनाश करने पर तुला रहा।२५।

'अपने पूर्व-जीवन में क्रूरता तथा इसी प्रकार की अन्य भावनाओं से प्रेरित हो मैंने अनेकों ही कृत्य किये। उन कुकृत्यों को स्मरण कर मैं शोक तथा पश्चात्ताप से वैसे ही सन्तप्त हो उठता हूँ जैसे कि किसी को अपने प्रिय पुत्र के मर जाने पर दुःख होता है।२६।

'मेरे इस प्रकार के कर्मों के कारण सत्कर्मों का फल किस प्रकार मिलता है, इसका मुझे पता नहीं है। ऐसा होने पर

भी मैंने एक बार अपनी वृद्धा माता की सेवा की थी और एक अवसर पर एक ब्राह्मण की भी सेवा की थी ।२७।

'भाग्यवश जन्म और गुण से भाग्यशाली एक ब्राह्मण यात्रा करते-करते मेरे घर पर एक बार अतिथि-रूप से पधारे। मैंने उनका आतिथ्य-सत्कार किया। उस सत्कर्म से प्राप्त पुण्यफल-स्वरूप मेरी स्मृति नष्ट नहीं हुई ।२८।

'मुझे ऐसा लगता है कि उस पुण्यकर्म के कारण मैं पुनः सुख प्राप्त कर सकूँगा। आप तो तपोधनी हैं, अतः आप सब-कुछ जानते हैं। कृपया बतलाइये, कि मेरे प्रारब्ध में क्या है" ।२६।

(अनुशासन पर्व–महाभारत)

२. नचिकेता की कथा

मैं समझता हूँ कि कठोपनिषद् में वर्णित नचिकेता की कथा तो आपको याद ही होगी। नचिकेता के पिता गौतम जी एक यज्ञ कर रहे थे। नचिकेता ने उस अवसर पर अपने पिता से पूछा, "आप मुझे किसको देते हैं?" उनके पिता ने उत्तर दिया, "तुझे मैं मृत्यु को देता हूँ।"

तदनन्तर नचिकेता मृत्युदेव यमराज के घर जा पहुँचे। मृत्युदेव उस समय कहीं बाहर गये हुए थे। वहाँ पर उन-(नचिकेता) की आवभगत करने वाला कोई न था। अतः वे तीन दिन और तीन रात्रि तक किसी प्रकार के अन्न-जल के सत्कार के बिना ही यमसदन के द्वार पर पड़े रहे। चौथे दिन

जब यमराज वापस आये तो उन्होंने देखा कि नचिकेता अपने पिता के इस वचन का, कि 'मैं तुझे मृत्यु को देता हूँ,' प्रतिपालन करते हुए उनकी प्रतीक्षा कर रहा है।

यमराज ने नचिकेता से कहा : "हे ब्राह्मण देवता ! आप मेरे सम्मान्य अतिथि हैं। आपने लगातार तीन रात्रियों से मेरे घर पर बिना भोजनादि किये निवास किया है। अतः उनके बदले में आप मुझसे तीन वर माँग लें।" तब नचिकेता ने प्रथम वर यह माँगा : "मेरे पिता मुझ पर जैसे पहले प्रसन्न रहते थे वैसे ही पुनः प्रसन्न हो जायें।" यमराज ने कहा : "आपके पिता आपको पहले की ही भाँति अपने पुत्र के रूप में पहचान लेंगे। वे रात्रि को सुख की नींद सोयेंगे और आपको मृत्यु के मुख से छूटा हुआ देख कर उनका क्रोध सर्वथा शान्त हो जायगा।"

द्वितीय वरदान के रूप में नचिकेता ने स्वर्गदायिनी अग्निविद्या के विषय में प्रश्न किया। यमराज ने कहा, "उस अग्निविद्या का रहस्य आपको विदित हो जायेगा और वह अग्नि आपके ही नाम से प्रसिद्ध होगी।" तीसरे वर के रूप में ऋषिकुमार नचिकेता ने मृत्यु के रहस्य के विषय में जिज्ञासा प्रकट की। उसने पूछा, "मृत मनुष्य के सम्बन्ध में यह एक बड़ा संशय फैला हुआ है। कुछ लोग तो ऐसा कहते हैं कि मृत्यु के पश्चात् भी आत्मा का अस्तित्व रहता है और कुछ लोग कहते हैं कि नहीं रहता। मैं यही जानना चाहता हूँ। हे मृत्युदेव ! अपने रहस्य को मुझे बतलाइए। क्या मनुष्य आपके पञ्जों से बच सकता है ?"

यमराज ने कहा, "हे नचिकेता ! यह प्रश्न न कीजिए। पहले देवताओं को भी इस विद्या में सन्देह हुआ था। वास्तव

में यह विषय बहुत ही गहन है और सहज में ही यह समझ में आने वाला नहीं है। अतएव आप कोई दूसरा ही वर माँग लें। इस विषय में मुझ पर दबाव न डालें। मैं आपको पुत्र, पौत्र, सुवर्ण, घोड़े, साम्राज्य, दीर्घ जीवन, आपकी सेवा के लिए सुन्दर रमणियाँ तथा रथादि प्रदान करता हूँ।"

नचिकेता ने कहा, "वे सभी भोग्य वस्तुएँ क्षणभङ्गुर हैं। वे इन्द्रियों के तेज को क्षीण कर देती हैं। बड़ी से बड़ी आयु भी अल्प ही है। यह दीर्घजीवन अनन्त काल की तुलना में कुछ भी नहीं। आप अपने रथ, रमणियाँ, नृत्य तथा गीत अपने पास ही रखें। धन से मनुष्य कभी की तृप्त नहीं हो सकता। मैं तो केवल इसी वर को आपसे याचना करता हूँ कि मनुष्य काल का ग्रास बनने से क्योकर बच सकता है? आप मुझे एक मात्र यही वर दे।"

यमराज ने इससे समझ लिया कि ऋषिकुमार नचिकेता ब्रह्मविद्या के उत्तम अधिकारी हैं। तब उन्होने नचिकेता को बतलाया कि मनुष्य किस उपाय से काल के हाथ से बच सकता है। उन्होंने कहा, "हे नचिकेता! अब मैं आपको अमरत्व प्राप्ति का उपाय बतलाता हूँ। आप मेरी बाते ध्यानपूर्वक सुनें। मनुष्य वासनाओ से बँधा हुआ है। ये वासनाएँ इन्द्रियो से उत्पन्न होती हैं और मनुष्य को ये ही जन्म-मरण के चक्र में फँसा रखती हैं। अत: मनुष्य को इन वासनाओं को नष्ट करना चाहिए और अपने मन और इन्द्रियों का दमन करना चाहिए। यही इस मार्ग का प्राथमिक पग है। शरीर रथ के समान है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं, मन लगाम है, बुद्धि सारथि है, आत्मा रथ का स्वामी है और विषय उन घोड़ों के विचरण के मार्ग है। घोड़े विषय-पदार्थों के पीछे भागते-फिरते हैं और रथ को भी अपने साथ ही घसीट ले जाते हैं। इन घोड़ों को ठीक मार्ग

पर चलाना चाहिए। जो मनुष्य विवेकहीन है और जिसका मन सदा असंयत रहता है, उस व्यक्ति की इन्द्रियाँ असावधान सारथि के उच्छृङ्खल घोड़ों की भाँति उसके वश में नहीं रहतीं। वह व्यक्ति परम पद को प्राप्त नहीं करता, अपितु वह वार-वार संसार-चक्र में भटकता रहता है; परन्तु जो मनुष्य विवेकसम्पन्न है और जिसका मन नित्य-निरन्तर संयत रहता है, उसकी इन्द्रियाँ सावधान सारथि के अच्छे घोड़ों की भाँति उसके वश में रहती हैं। वह उस परम पद को प्राप्त हो जाता है जहाँ से लौट कर पुनः जन्म नहीं होता। वह संसार-मार्ग के पार पहुँच कर विष्णु भगवान् के उस सुप्रसिद्ध परम पद को प्राप्त हो जाता है।

"उस अद्वितीय नित्य आत्मा का ध्यान कीजिए जो कि हृदय-गुहा में स्थित है। उस परम आत्मा में अपने मन को लगाइए। जब सभी ऐन्द्रिय वासनाएँ समूल नष्ट हो जायेंगी तव आपको अमरत्व, आत्मसाक्षात्क्षार अथवा व्रह्मज्ञान प्राप्त हो जायेगा। हे नचिकेता! इस भाँति आप काल पर विजय पा सकेंगे। इतना ही मृत्यु-विषयक रहस्य है।

'कामुक तथा वलहीन व्यक्ति आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। यह आत्मा न तो प्रवचन से, न तर्कज्ञान से और न पठन-पाठन से ही प्राप्त होता है। यह आत्मा जिसे वरण कर लेता है, केवल उसी के सामने वह अपने स्वरूप को प्रकट करता है। आत्मा के इस चुनाव का निश्चय साधक के जीवन की पवित्रता तथा निस्स्वार्थता के आधार पर होता है।

"उठिए; जागिए; श्रेष्ठ महापुरुषों के पास जाकर इस अलौकिक आत्मा को जानिए और उसका साक्षात् कीजिए। ज्ञानीजन उस (तत्त्वज्ञान के) मार्ग को छूरे की तीक्ष्ण एवं दुस्तर धार के सदृश दुर्गम वतलाते हैं।"

यमराज द्वारा उपदिष्ट इस विद्या और योग की सम्पूर्ण विधि को प्राप्त करके नचिकेता जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त तथा सब प्रकार की वासनाओं और विकारों से रहित होकर परब्रह्म को प्राप्त हो गये। दूसरा भी जो कोई आत्मा के स्वरूप को इसी प्रकार जानने वाला है, वह भी ऐसा ही हो जाता है।

३. मार्कण्डेय की कथा

मार्कण्डेय भगवान् शिव जी के परम भक्त थे। उनके पिता मृकण्डु ने पुत्र-प्राप्त्यर्थ घोर तपस्या की। भगवान् शिव जी उनके सामने प्रकट हुए और बोले, "ऋषि जी! आपको केवल सोलह वर्ष तक जीवित रहने वाला गुणवान् पुत्र चाहिए अथवा चिरकाल जीवित रहने वाला दुष्ट तथा मूर्ख पुत्र?" मृकण्डु ने उत्तर दिया, "मेरे आराध्य देव! मुझे गुणवान् पुत्र ही प्राप्त हो!"

भगवान् शिव जी के वरदान-स्वरूप उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस ऋषिकुमार को जब अपने प्रारब्ध का पता चला तो वह पूरे मन से परम श्रद्धा और भक्तिपूर्वक भगवान् शिव की आराधना मे तत्पर हो गया। अपनी मृत्यु के नियत दिन वह ध्यान और समाधि में तल्लीन था, अतः उसके प्राण लेने के लिए यमराम स्वयं पधारे। अपनी रक्षा के लिए भगवान् शिव से प्रार्थना करते हुए वह बालक शिव-लिङ्ग से लिपट गया। यह देख कर यमराज ने शिव-लिङ्ग के समेत उस बालक को अपने पाश में बाँध लिया। उस लिङ्ग से साक्षात् भगवान् शिव जी तत्काल ही प्रकट हो गये और उन्होंने उस बालक के रक्षार्थ यमराज को मार डाला। उस दिन से भगवान् शिव जी मृत्युञ्जय तथा काल-काल के नाम से प्रसिद्ध हुए।

सभी देवता भगवान् शिव जी के पास गये और उनसे प्रार्थना की, "पूजनीय महादेव ! आपको हमारा नमस्कार है। यमराज के अपराध को क्षमा कीजिए। हे करुणा-सागर ! उन्हें पुनः जीवन दान दीजिए।" उन देवों की प्रार्थना पर भगवान् शिव ने यमराज को पुनः जीवित कर दिया। उन्होंने ऋषि-कुमार मार्कण्डेय को भी यह वरदान दिया, "तुम एक षोडश वर्षीय कुमार के रूप में सदा अमर बने रहोगे।" अतः वे चिरञ्जीव हैं। आज भी दक्षिण भारत में यदि कोई बालक किसी स्त्री या पुरुष को नमस्कार करता है तो वे उसे आशीर्वाद देते हैं; "मार्कण्डेय के समान चिरञ्जीवि बनो !"

एकादश प्रकरण

पत्र

पत्र

१. मेरे पति की आत्मा कहाँ है ?

श्री स्वामी शिवानन्द जी,
आनन्द कुटीर, ऋषिकेश।

परम पूज्य स्वामी जी !

आपके कृपा-पत्र के लिए अनेकानेक धन्यवाद। मेरे शोक के निवारण मे यह पत्र बहुत ही आश्वासनप्रद था।

मुझे यह जानने की उत्कट अभिलाषा है कि इस समय मेरे पति की जीवात्मा कहाँ होगी ? इस शरीर के त्यागने के पश्चात् मे पुनर्जन्म प्राप्त करने तक उनके जीवात्मा की क्या दशा होगी ? 'डिवाइन लाइफ' पत्रिका मे प्रकाशित 'मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा की यात्रा' शीर्षक लेख समझने का मैंने भरसक प्रयास किया; परन्तु इसके कुछ अंश विशेषकर २६१वे पृष्ठ के द्वितीय अवच्छेद से आगे मैं समझ न सकी।

मुझे ऐसा लगता है कि दूसरो के समझाने की अपेक्षा आपके समझाने से मैं अधिक स्पष्ट रूप से समझ सकूँगी। मै आपकी बहुत ही आभारी हूँगी यदि आप मुझे यह बतलाये कि मृत्यूपरान्त जीवात्मा की क्या गति होती है ? दिवङ्गत आत्मा की शान्ति के लिए हमें कौन-से पुण्य कर्म करने चाहिए ? क्या जीवात्मा मर्त्यलोक के लोगो को देख-सुन सकता है ? प्रेतात्म विद्या के जानकार यह कहते है कि वे तथाकथित माध्यम की सहायता से दिवङ्गत आत्मा के साथ वार्तालाप कर सकते है

क्या इसमें कुछ सत्यता है ? उस समय जो उत्तर देता है—क्या वह सचमुच ही मृत व्यक्ति की जीवात्मा है ?

आपकी विनीत शिष्या,

❀ ❀ ❀

आनन्द कुटीर,
फरवरी १३,४५

भाग्यशाली दिव्य आत्मा !
वन्दन और आराधन ।

आपके कृपा-पत्र के लिए आभार । प्रेतात्म-विद्या, प्रेतात्मा के दर्शन, माध्यम आदि के मोह में न पड़िए । वे आपको विपथगामी बना देंगे । भूतात्मा के साथ व्यवहार रखना तथा उसके साथ वार्त्तालाप करना—यह एक सनक है । वास्तविक अध्यात्म-शास्त्र से इनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं । जीवन का ध्येय तो इससे भिन्न ही है । अपनी आत्मा की अविनश्वरता का अनुभव करना ही आपके जीवन का लक्ष्य है । यही आपको सुख और शान्ति प्रदान कर सकता है ।

आत्मा न तो जन्मता है और न मरता ही है । जैसे मनुष्य एक कमरे में से दूसरे कमरे में जाता है, उसी प्रकार जीवात्मा एक चेतना-स्तर से दूसरे चेतना-स्तर को प्राप्त होता है । मृत्यु और पुनर्जन्म के बीच की अवधि में जीवात्मा सूक्ष्मतर जगत् में अपने कुछेक कर्मों का हिसाब करता है । आपने जिस लेख के विषय में लिखा है उसमें मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा के प्रयाण तथा प्रत्यावर्त्तन का जो वर्णन दिया गया है उसका

तात्पर्य यह समझना है कि जीव स्थूलता से शनैः शनैः सूक्ष्मता की दशा में क्योंकर प्रवेश करता है। सूक्ष्मता की अनुक्रमिक मात्रा के भाव को व्यक्त करने के लिए ही उसमें आकाश, वायु, धूम्र, अभ्र, मेघ, वृष्टि आदि का उल्लेख है। निश्चित समय पर जीवात्मा पुनः नया शरीर धारण करता है।

दिवङ्गत आत्मा को शान्ति पहुँचाने का सर्वोत्तम उपाय है—कीर्त्तन कीजिए, अधिक जप कीजिए, दूसरों के कष्ट को दूर कीजिए, निस्स्वार्थ सेवा कीजिए और दान दीजिए, हार्दिक प्रार्थना कीजिए।

अपने मृत पति की आत्मा से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास न कीजिए। मृत व्यक्ति की आत्मा से सम्बन्ध रखने से जीवात्मा के उच्चतर आनन्दमय लोकों की ओर प्रगति के मार्ग में बाधा पहुँचती है और वह भूलोक से आसक्त हो जाती है। उस आत्मा को नीचे लाने का प्रयास न कीजिए। इससे उसकी शान्ति भङ्ग होगी। माध्यम को अपने वश में रखने वाली आत्माएँ अज्ञानी तथा कपटी होती हैं। वे असत्य बोलती हैं।

आपका ही आत्मा,
शिवानन्द ...

ॐ

२. स्वर्ग कहाँ है ?

५ अगस्त, १९४३

माननीय महात्मन् !

'डिवाइन लाइफ' के अगस्त मास के अङ्क में 'ऋतु-धर्म' नामक एक लेख प्रकाशित हुआ था। इसका अन्तिम भाग

मुझे कुछ अस्पष्ट-सा लगता है। उसमें लिखा है :

"इस स्थूल शरीर का परित्याग कर देने के पश्चात् जीव स्वर्ग की ओर प्रयाण करता है, कर्म के फल समाप्त होने तक वह वहाँ निवास करता है, उसके पश्चात् वर्षा के द्वारा वह इस भूलोक में वापस आता है और अन्न के साथ मिल जाता है। इस भाँति वह पुरुष के वीर्य में और वीर्य से स्त्री के गर्भ में प्रवेश करता है। तत्पश्चात् वह जीव सातवें महीने में भ्रूण (गर्भ-स्थित बालक के शरीर) में प्रवेश करता है।"

यदि आप इस सम्बन्ध में निम्नाङ्कित विषयों पर प्रकाश डालें तो मैं आपका बहुत ही कृतज्ञ हूँगा।

१. जहाँ जीवात्मा जाता है, वह स्वर्ग कहाँ है और वह वहाँ कैसे पहुँचता है ? जिस भाँति जीव को नीचे आने के लिए मेघ-बिन्दुओं की आवश्यकता होती है, उसी भाँति उसे ऊपर जाने के लिए भी किसी वस्तु की सहायता की आवश्यकता पड़ती ही होगी।

२. मेघ-बिन्दु तो बादलों के क्षेत्र में ही प्राप्त हो सकते हैं; परन्तु स्वर्ग और बादल ये दोनों तो एकदेशीय नहीं हैं। यदि बात ऐसी ही है तो जीवात्मा स्वर्ग से बादलों तक किस प्रकार आता है ?

३. मैं मानता हूँ कि हमारा यह संसार कर्मभूमि ही नहीं वरञ्च भोग-भूमि भी है। यदि यह बात सच है तो यह कहना क्योंकर ठीक हो सकता है कि जीवात्मा अपने कर्मों का फल स्वर्ग में समाप्त कर डालता है और सम्पूर्ण फलों के समाप्त हो जाने पर वह भूलोक को वापस आता है ?

४. ऐसा कहा गया है कि जीव पुरुष के वीर्य के साथ स्त्री

के उदर में प्रवेश करता है और फिर यह भी कहा गया है कि जीवात्मा सातवें मास भ्रूण में प्रवेश करता है। ये दोनों बातें कैसे सङ्गत हो सकती हैं ? क्या जीव आत्मा से भिन्न है ? यदि ऐसी बात है तो उनमें परस्पर क्या भेद है ? और यदि ऐसी बात नही है तो ये दोनों ही बातें क्योंकर सम्भव हो सकती हैं ?

आपका विश्वसनीय,
के० बी०आर०

❀ ❀ ❀

आदरणीय अमर आत्मन !

नमस्कार और वन्दन।

आपका पाँचवी तारीख का पत्र प्राप्त हुआ। जीवात्मा आकाश में यात्रा कर सकता है। इसके लिए उसे मेघ की बूँदें, पृथ्वी आदि स्थूल पदार्थों के आश्रय की अनिवार्य आवश्यकता नही रहती है। वह मेघ की बूँदों के द्वारा पार्थिव जगत् में प्रविष्ट होता है, बस बात इतनी ही है। कुल सात लोक हैं। वे सभी एक-दूसरे के मध्य मे अवस्थित है और वे एक लोक दूसरे लोक की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म हैं। स्वर्ग भी उनमे से ही एक लोक है।

आध्यात्मिक साधना तथा पुण्य कर्म के सम्पादन द्वारा प्रगति करने के लिए हमारा यह जगत् एक साधन है। इसके साथ ही अपने शुभाशुभ कर्मो के परिणाम-स्वरूप जीवात्मा को सुख-दु:ख भोगने पडते हैं। परन्तु दुःख की तुलना में भोग की कोई गणना नही है। दु ख ही मनुष्य को वास्तव में बुद्धिमान् तथा अन्तर्मुखी बनाता है। स्वर्ग मे केवल भोग ही भोग हैं। वहाँ दुःख का नाम नही है।

सातवें मास तक जीव अव्यक्त अवस्था में रहता है। 'जीव

भ्रूण (गर्भ-स्थित शिशु) में सातवें मास में प्रवेश करता है'—इसका यह तात्पर्य नहीं कि जीवात्मा भ्रूण में नये रूप में प्रवेश करता है। इसका भाव केवल यह है कि सातवें मास में, जब स्थूल शरीर की रचना पूर्ण हो जाती है, वह व्यक्त होने लगता है।

आध्यात्मिक पथ में आपकी भव्य प्रगति हो! परमेश्वर आपको सुखी रखें! स्निग्ध मान, प्रेम और ॐ के साथ

आपका ही आत्मा,
शिवानन्द

३. मेरे पुत्र के विषय में क्या?

श्री गुरुचरण कमलेभ्यो नमः।

आपका कृपा-पत्र प्राप्त हुआ। इसने मुझे बहुत ही शान्ति दी।

पूज्य स्वामी जी! मेरे निम्नाङ्कित प्रश्नों के उत्तर प्राप्त नहीं हुए। मेरी विनम्र प्रार्थना है कि आप इस विषय पर प्रकाश डालें।

१. गीता के चौदहवें अध्याय के चौदहवें तथा पन्दरहवें श्लोकों में उन लोगों के आगामी जीवन का वर्णन है, जिनकी कि मृत्यु सत्त्व, रज और तमोगुण की प्रधानता होने पर होती है, परन्तु इस अवस्था में तो बच्चा अचेत था।

गीता के आठवें अध्याय के छठे श्लोक में यह बताया गया है कि मरण-समय के विचार ही आगामी जन्म के विषय में निर्णायक होते हैं। एक पाँच वर्ष का बच्चा मरण-समय में जब

अचेत अवस्था में पड़ा हो तो क्या उसमें किसी प्रकार की विचार-शक्ति होने की आशा की जा सकती है ?

तो इस बालक को किस प्रकार का दूसरा जन्म प्राप्त होगा ?

२. उस बालक के हित के लिए यदि कोई जप, दान आदि सत्कर्म किये जायें तो क्या उससे उसकी आत्मा को कुछ लाभ पहुँचेगा ? मुझे लगता है कि किसी प्रकार की साधना किये बिना ही वह बालक इस संसार से चल बसा ।

३. मैं यह मानता हूँ कि प्रार्थनाओं का प्रभाव पडता है; परन्तु यह एक शङ्कास्पद विषय है कि जब मनुष्य को उसके कर्मानुसार ही फल प्राप्त होता है और यह दैवी नियम जबकि अटल है तो एक व्यक्ति की प्रार्थना से दूसरे की आत्मा को कैसे लाभ पहुँच सकता है ?

४. जन्म लेने से पूर्व ही क्या आयु की सीमा निश्चित होती है ?

आपका विनीत

꧁ ꧁ ꧁ ꧁

उत्तर :—

आपके बालक की पाँच वर्ष की आयु मे मृत्यु हो गयी। इससे उसने अपने पूर्व-जन्मकृत किसी बहुत ही बलवान् बुरे कर्म का हिसाब चुकता कर दिया। अब वह उस बुरे कर्म से मुक्त हो चुका है। उसे अब उत्तम जन्म प्राप्त होगा और उस स्थिति मे वह अधिक साधना कर सकेगा।

मनुष्य का अन्तिम भाव उसके जीवनभर के विचारो का सार होता है। मृत्यु से पूर्व यदि मनुष्य अचेत हो गया हो तो

अचेत होने से पूर्व जो उसका अन्तिम विचार था उस विचार के आधार पर ही उसका अगला जन्म होगा।

प्रार्थना से बहुत ही लाभदायी परिणाम निकलता है। जिस भाँति आप जर्मनी में गये हुए अपने पुत्र की धन और सत्परामर्श के द्वारा सहायता कर सकते हैं उसी भाँति आप प्रार्थना द्वारा भी अपने पुत्र की इस लोक तथा परलोक में सहायता कर सकते हैं। शुभ तथा पवित्र विचार और प्रार्थना का बहुत ही सुखद प्रभाव पड़ता है। उससे उस मनुष्य के अपने तथा उसके सान्निध्य में रहने वाले दूसरे लोगों के जीवन को ढालने में विशेष सहायता मिलती है।

आयु पूर्व-निर्धारित होती है। काल की मर्यादा का कोई उल्लङ्घन नहीं कर सकता है। नन्हीं चींटी से लेकर ब्रह्मा तक इस संसार के सभी प्राणियों को काल अपनी झपट में ले लेता है।

४. प्रश्नोत्तरी

प्र०—जीवात्मा स्वर्ग में कितने काल तक निवास करता है ?

उ०—वह पचास वर्ष अथवा पाँच सौ वर्ष तक रह सकता है। यह इस लोक में किये हुए उसके पुण्य कर्मों के फल पर निर्भर करता है।

प्र०—क्या स्वर्ग में तथा इस लोक में वर्ष की गणना समान ही है ?

उ०—नहीं, भूलोक के दस वर्ष स्वर्ग में रहने वाले देवताओं के दस दिन के समान हैं।

प्र०—मृत्यु होने से पूर्व क्या दशा होती है ?

उ०—जीवात्मा सभी इन्द्रियों का आकुञ्चन कर उन्हें अपने अन्दर खींच लेता है। जिस प्रकार दीपक में रखे हुए तेल के समाप्त होने पर उसकी ज्योति शनैः शनैः क्षीण पड़ती जाती है उसी प्रकार स्थूल इन्द्रियाँ भी धीमी होती जाती हैं।

प्र०—जीवात्मा शरीर से किस प्रकार बाहर निकलता है ?

उ०—सूक्ष्म शरीर इस स्थूल शरीर में से अभ्र की भाँति सूक्ष्म रूप से बाहर निकलता है।

प्र०—जीवात्मा किस द्वार से शरीर का त्याग करता है ?

उ०—जब तक प्राण ऊर्ध्व दिक् की ओर और अपान अधोदिक् की ओर चलते रहते हैं तब तक जीवन चालू रहता है। परन्तु जिस क्षण प्राण अथवा अपान इन दोनों में से कोई एक मन्द पड़ जाता है, उसके साथ ही जीवन-शक्ति बाहर चली जाती है। यदि अपान बन्द हो जाता है तो जीवात्मा मस्तक, नासिका, कान अथवा मुख के द्वार से शरीर से बाहर निकल जाता है। यदि प्राण बन्द हो जाता है तो जीवात्मा गुदा-द्वार से बाहर निकल जाता है।

प्र०—जन्म और मृत्यु से ऊपर उठने में प्रेतात्म-विद्या क्या कुछ सहायता कर सकती है ?

उ०—बिलकुल नहीं। अमर आत्मा का ज्ञान अथवा ब्रह्म-ज्ञान ही आपको जन्म-मरण के चक्र से मुक्त कर सकता है और अमरत्व तथा शाश्वत सुख प्रदान कर सकता है।

प्र०—क्या दिवङ्गत आत्मा तत्काल ही जन्म ले सकता है ?

उ०—ऐसा सम्भव है; परन्तु ऐसे उदाहरण बहुत ही कम पाये जाते हैं। यदि जीवात्मा की पुनः जन्म लेने की इ[illegible]

हो तो वह तुरन्त ही जन्म ले सकता है। जीवात्मा को स्वर्ग अथवा नरक में अपने कर्मों के फल भोगने होते हैं। यदि जीवात्मा मरने के पश्चात् तत्काल ही दूसरा जन्म ले लेता है तो उसे अपने पूर्व-जीवन की बहुत-सी बातें स्मरण रहती हैं।

प्र०—नया शरीर धारण करने के लिए जीवात्मा को कितने काल तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है?

उ०—इस विषय में कोई निश्चित बात नहीं कही जा सकती है।

प्र०—क्या दिवङ्गत आत्मा को मूर्त्त रूप धारण करने की शक्ति होती है?

उ०—जिनमें मानसिक शक्ति अधिक होती है, वे उच्च आत्माएँ ही मूर्त्त रूप धारण कर सकती हैं। वे मनुष्य का रूप धारण करती हैं, प्रेतात्माओं को बुलाने वाली कुर्सी पर बैठती हैं और वहाँ पर उपस्थित लोगों के साथ हाथ मिलाती हैं। उनका स्पर्श उतना ही प्रभावक तथा गर्म होता है जितना कि एक जीवित व्यक्ति के शरीर का स्पर्श। थोड़ी देर में इन प्रेतात्माओं का शरीर अदृश्य हो जाता है। प्रेतात्माओं के चित्र भी लिये गये हैं।

प्र०—प्राणमय शरीर क्या है?

उ०—जिस भाँति फुटबाल के अन्दर रबर की एक थैली होती है, उसी भाँति स्थूल शरीर के भीतर सूक्ष्म शरीर होता है, उसे प्राणमय शरीर कहते हैं। यह प्राणमय शरीर स्थूल शरीर का ठीक प्रतिरूप है। प्राणमय शरीर पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच प्राण तथा अन्तःकरण-चतुष्टय अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार से बना होता है। इस सूक्ष्म

शरीर को ही कोई-कोई छाया शरीर *(Double)* के नाम से पुकारते हैं। मृत्यु के पश्चात् यह सूक्ष्म शरीर ही स्थूल शरीर को त्याग कर स्वर्ग को जाता है। आत्मज्ञान को प्राप्त कर लेने पर इस सूक्ष्म शरीर की मृत्यु होती है और उसकी मृत्यु होने पर ही मनुष्य जन्म-मरण के चक्र से मुक्त बनता है।

प्र०—जन्मान्तर (*Metempsychosis*) तथा पुनरागमन (*Re-Incarnation*) में भेद क्या है?

उ०—मानव आत्मा का पशु के शरीर में जन्म लेना जन्मान्तर (*Metempsychosis*) कहलाता है। एक ही मानव आत्मा का पुनः मानव-शरीर में ही जन्म लेना पुनरागमन (*Re-Incarnation*) कहलाता है।

प्र०—हमें अपने भूतकाल के जीवन की स्मृति क्यों नही रहती?

उ०—हमारी इस वर्त्तमान सीमित अवस्था मे यदि हमे भूतकाल की स्मृति हो तो उससे हमारे वर्त्तमान जीवन मे बहुत-सी उलझनें उठ खड़ी होंगी। अत चतुर एवं दयालु परमात्मा ने हमारे मानसिक विकास की इस प्रकार व्यवस्था की है कि जिसमें हमारे भूतकाल के जीवन की स्मृति जब तक हमारे लिए भली और हितप्रद न हो तब तक हम उसे स्मरण न कर सकें। जीवन-परिवर्त्तन की ऐसी घटनाओं का एक चक्र-सा बन जाता है। जब हम इस चक्र के अन्तिम छोर पर पहुँच जाते हैं तब हम इसे स्पष्ट रूप से देखते हैं। उस समय हम इन सभी जीवनों को पुष्पमाला की भाँति एक ही व्यक्तित्व-सूत्र मे गुँथे हुए पाते हैं।

परिशिष्ट

परिशिष्ट

पुनर्जन्म

बर्मी भाषा बोलने वाले सोल्जर कैस्टर

जार्ज कैस्टर ने लंदन के 'सण्डे एक्सप्रेस' (१९३५) में अपने भूतकाल के कितने ही अनुभवों का विवरण दिया था। वह सैनिक थे और उनका जन्म सन् १८८९ में हुआ था। बाल्यावस्था में ही वह स्वप्न में शुद्ध बर्मी भाषा बोलते थे। सन् १९०७ में वह सेना में भर्ती हो गये और सन् १९०९ में जब उनकी २० वर्ष की वय थी तब उनका स्थानान्तरण बर्मा देश के मेमियो नगर को हो गया। उन्हें वहाँ ऐसा लगता कि 'मैंने इस देश को देखा था, इसमें रहा था, बर्मी भाषा बोलता था और ईरावदी नदी को जानता था।' उन्होंने लास कार्पोरल कैरिगोन को बतलाया कि ईरावदी के दूसरे तट पर एक विशाल देवालय है। उसकी दीवाल में चोटी से लेकर नीचे तक एक मोटी दरार है और उसके पास ही एक घण्टा पड़ा हुआ है। उनकी बतलायी हुई वे सभी बातें अक्षरशः सत्य निकलीं।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

जमापुखुर ग्राम का बालक

कलकत्ता के जमापुखुर ग्राम का एक अठारह वर्ष का बालक अपनी मरण-शय्या पर पड़ा था। इसके माँ-बाप ने उसको स्वस्थ बनाने के लिए एक साधु पुरुष के चरणों की

शरण ली और साथ ही अन्य उपाय भी करते रहे। उस लड़के की चाची उन साधु को दोष देने लगी कि उनमें विश्वास रखने के कारण ही वह लड़का मर रहा है। इसे सुनते ही लड़का बोल उठा :

"साधु पुरुष को दोष नहीं देना चाहिए। आप सब उनमें अपना विश्वास नहीं रख सके। यदि मेरे भूतकाल के कर्मों को देखा जाय तो जो-कुछ मेरे शिर पर बीत रही है, वह कुछ भी नहीं है। मुझे तो इससे सहस्रों गुणा अधिक कष्ट भोगना था। मैं अपने गत जीवन में एक रेलवे आफिस में काम करता था। मैंने एक मनुष्य को मार कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। ओह; मैंने उसे कितनी पीड़ा पहुँचायी ! वह कर्म कहाँ जायेगा ?

"यह बात आजसे पचास वर्ष पहले हुई थी। उस समय शुके स्ट्रीट थाना एक प्रसिद्ध कर्मचारी के अधिकार में था। एक आँख से अन्धा होने के कारण लोग उसे 'काना सार्जेन्ट' कहते थ। उसने मुझे पकड़ लिया। फाँसी से तो मैं बच गया; परन्तु मुझे कठोर कारावास का दण्ड मिला।"

अपनी माँ को सम्बोधित करते हुए उस बालक ने कहा : "माँ ! अब मैं जाता हूँ। क्या आप जानती है कि ऐसा किस लिए ? (अपने पिता जी की ओर लक्ष्य करके) साथ वाले कमरे में जो मनुष्य सो रहा है, वह पिछले जन्म में मेरा पुत्र था। उसने मुझे दुःखी बनाने का भरसक प्रयत्न किया। भूतकाल में इसने जो कर्म किये, उनके परिणाम का इसे पता चल जाय—इसलिए मैं इसके पुत्र के रूप में इस जन्म में आया हूँ। अभी इसे पता लगेगा कि पुत्र अपने पिता को कैसे-कैसे दुःख और क्लेश देता है। कर्म कभी भी टाला नहीं जा सकता है।

उसको सहन करने से ही छुटकारा मिलता है।"

(इस बात की खोज करने से ऐसा पता चला कि मुके स्ट्रीट थाने का अधिकारी सारे शहर में काना सार्जेन्ट के नाम से प्रसिद्ध था। वह पचास वर्ष पूर्व अपने पद से अवकाश ग्रहण किया।)

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

हिल—दक्षिणी अमरीका का पर्यवेक्षक

श्री हिल 'पीपुल' पत्र के सम्पादक को पत्र में लिखते हैं: "मेरा यह दृढ़ विश्वास था कि दक्षिणी अमरीका के कुछ प्रदेश मेरे परिचित हैं। मुझे बार-बार ऐसे स्वप्न आते कि—मैं एक पर्यवेक्षक हूँ और मैं उष्णकटिबन्धीय वनों में एकाकी पर्यटन करता हूँ। उस समय काले लोगों का एक दल अकस्मात् मेरे सामने आ पहुँचा, उनके साथ मैंने उनकी ही भाषा में बातचीत की; परन्तु किसी कारण से वे मुझ पर क्रोधित हो उठे और उनके नेता ने मुझे मार डाला। अन्ततः मैं रोयल मेल लाइनर्स में जहाज का एक कर्मचारी *(Steward)* बना और दक्षिण अमरीका पहुँच गया। वहाँ मैंने देखा कि मैं वहाँ की कितनी ही अनजानी गलियों और इमारतों के नाम का ठीक-ठीक अनुमान पहले से ही लगा लेता था और जब मैं रियो-डि-जनेरो, संटोज़ तथा ब्यूनिस आयर्स के मार्ग से गया तो मुझे ऐसा लगा कि मैं अवश्य ही पहले कभी इस मार्ग से गया हूँ। अपनी इन समुद्री-यात्राओं में एक बार मैंने एक डेनिश लेखक को संटोज़ के बन्दरगाह से अपने जहाज पर बिठाया। एक दिन उसने मुझे अपने कमरे में बुला भेजा और कहा:

'स्टिवर्ड ! एक उल्लेखनीय घटना पहले कभी हुई थी। आप उस घटना से भले ही अनजान हों; परन्तु आपका उसके साथ सम्बन्ध मालूम पड़ता है।'

"ऐसा कह कर उन्होंने मुझे मनुष्य की एक खोपड़ी दिखलायी। अमेजन की घाटी में शिर का शिकार करने वाले लोगों से वह उन्हें प्राप्त हुई थी। उन्होंने उस मस्तक को एक विशेष प्रक्रिया द्वारा उसके सामान्य आकार मे आधा छोटा बना कर अपने पास सुरक्षित रख छोड़ा था। उसे देख मैं स्तम्भित रह गया और मुझे ऐसा लगा कि मैं अपने ही शिर का ठीक प्रतिरूप देख रहा हूँ।"

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

वजीतपुर के डाकबाबू का लड़का

(दिनाङ्क १५-७-३६ के एडवांस पत्र से)

फरीदपुर के निकट वजीतपुर के डाकबाबू का तीन वर्षीय पुत्र एक दिन रोने लग पड़ा और अपने घर जाने का आग्रह करने लगा। एक प्रश्न के उत्तर में उसने बतलाया :

"चिटगाँव के फजिलपुर का मैं निवासी हूँ। लक्षम रेलवे-स्टेशन से एक सड़क हमारे गाँव को जाती है। वहाँ मेरे तीन पुत्र और चार पुत्रियाँ हैं। मेहर की काली बाड़ी मेरे निवास-स्थल से अधिक दूर नहीं है। काली बाड़ी में ही सर्वानन्द जी ने मोक्ष प्राप्त किया था। वहाँ पर काली माता की कोई प्रतिमा नहीं है, एक विशाल वट वृक्ष है और उसके मूल पर ही पूजा की जाती है। वहाँ पर एक ऊँचा ताड़ का भी वृक्ष है।"

उस बालक के पिता ने कभी भी चिटगांव, लदाम अथवा काबो बाड़ी नहीं देखी। यह बालक कितने ही बार ऐसे गीत गाता है, जिसे कि उसने अपने इस जीवन में कभी सुना भी नहीं।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

अपने माता-पिता को भूल जाने वाली हंगरी देश की बालिका

बुडापेस्ट नगर में सन् १९३३ में हंगरी देश के एक इञ्जीनियर की पन्द्रह वर्ष की पुत्री अपनी मरण-शय्या पर पड़ी हुई थी। प्रकट में तो वह बालिका मर गयी; परन्तु कुछ काल के पश्चात् वह पुनः चैतन्य हो उठी, वह अपनी मातृभाषा हंगेरियन पूर्णतः भूल गयी और केवल स्पेनिश भाषा में ही बातचीत करने लगी। वह अपने माता-पिता को भी पहचान नहीं सकती है। उनके विषय में वह कहती, 'ये भले मानस मेरे साथ बहुत ही सज्जनता का व्यवहार करते हैं। वे मेरे माता-पिता होने का दिखावा करते हैं; परन्तु वे मेरे माता-पिता हैं नहीं।" एक स्पेनिश दुभाषिये से उसने कहा, "मेरा नाम सीनोर लूसिंड अत्तरजं डं सैल्वियो है। मैं मैड्रिड के एक श्रमिक की पत्नी हूं और मेरे चौदह बच्चे हैं। चालीस वर्ष की अवस्था में मैं कुछ बीमार पड़ी। कुछ दिन पूर्व मैं मर गयी अथवा मुझे ऐसा प्रतीत-सा हुआ कि मैं मर रही हूं। अब मैं इस अनजाने देश में आकर स्वस्थ हो गयी हूं।"

वह बालिका अब स्पेनिश गीत गाती है, स्पेन देश के विशेष प्रकार के भोजन बनाती है और मैड्रिड नगर का बहुत ही स्पष्ट वर्णन करती है, जिसे कि उसने कभी देखा नहीं।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

दिल्ली के जङ्गबहादुर की पुत्री

दिल्ली के व्यापारी लाला जङ्गबहादुर की आठ वर्ष की पुत्री ने जब से बोलना आरम्भ किया तभी से वह कहती कि पिछले जन्म में उसका विवाह मथुरा के एक सज्जन के साथ हुआ था। उनका पता भी उसने बतलाया। जब उसके पूर्व-जीवन के पति को इस बात की सूचना दी गयी तो उन्होंने अपने भाई को भेजा। इस बालिका ने उन्हें पहचान लिया। तदन्तर जब उसका पति उससे मिलने आया तो उन्हें भी उसने तुरन्त पहचान लिया और उनसे कितनी ही बातें ऐसी बतलायीं जिन्हें कि वह सज्जन तथा उनकी पहली पत्नी ही जानते थे। उसने उन्हें यह भी बतलाया कि उसने अपने घर के अन्दर एक स्थान में सौ रुपये गाड़ रखे हैं।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

कानपुर के देवीप्रसाद का पुत्र
(अमृत बाजार पत्रिका दि० १-५-३८)

कानपुर के प्रेम नगर में रहने वाले देवीप्रसाद भटनागर का एक पाँच वर्ष का पुत्र कहता है कि पूर्व-जन्म में उसका नाम शिवदयाल मुख्तार था और सन् १६३७ में कानपुर के उपद्रव के समय उसकी हत्या की गयी। उसके दो मुसलमान मित्रों ने छलपूर्वक उसे एक घर में ले जा कर उसको मार डाला। एक दिन वह बालक अपने पहले के घर जाने का आग्रह करने लगा, जहाँ उसकी पत्नी बीमार पड़ी थी। उस बालक को वहाँ ले जाया गया और उसने तुरन्त ही अपनी पत्नी को, अपने बच्चों को तथा अन्य वस्तुओं को पहचान लिया।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

डेढ़ वर्ष की आयु में गीता-पाठ

(अमृत बाजार पत्रिका के प्रयागराज के संवाददाता की सूचना)

झांसी का एक तीन वर्ष का बालक भगवद्गीता तथा रामायण का मौखिक पाठ करता है और उसका उच्चारण शुद्ध होता है। जब वह बालक पाँच मास का था तभी से वह कुछ कहने का प्रयास करता; किन्तु बोल न सकता था। डेढ़ वर्ष की आयु प्राप्त करने पर वह अपने श्रोताओं को गीता सुनाने लगा।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

पाँच वर्ष की बालिका तथा पिआनो

(पीपुल दि० २०-६-३७)

ब्लैकपूल की एक पञ्चवर्षीया बालिका गुडियों के साथ खेलने के स्थान में पिआनो बजाती है। उसने पिआनो बजाने की शिक्षा कभी भी नहीं ली फिर भी वह उसे बड़ी कुशलता से बजा लेती है। जो कोई भी मधुर राग वह सुनती है, उस पर अच्छी तरह से पिआनो बजा सकती है। इसके साथ ही वह अपनी भी दो-एक रचनाएँ बजाती है।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

कलकत्ता के बैरिस्टर की पुत्री

कलकत्ता के हाई कोर्ट के बैरिस्टर की लड़की जब वह केवल तीन वर्ष की थी, तभी वह घर का फर्श बहुत ही सुन्दर ढङ्ग से साफ करती थी। पूछने पर उसने बतलाया :

'बेलदंग में मैं, अपने श्वसुर के घर की सफाई किया करती

दिल्ली के जङ्गबहादुर की पुत्री

दिल्ली के व्यापारी लाला जङ्गबहादुर की आठ वर्ष की पुत्री ने जब से बोलना आरम्भ किया तभी से वह कहती कि पिछले जन्म में उसका विवाह मथुरा के एक सज्जन के साथ हुआ था। उनका पता भी उसने बतलाया। जब उसके पूर्व-जीवन के पति को इस बात की सूचना दी गयी तो उन्होंने अपने भाई को भेजा। इस बालिका ने उन्हें पहचान लिया। तदन्तर जब उसका पति उससे मिलने आया तो उन्हें भी उसने तुरन्त पहचान लिया और उनसे कितनी ही बातें ऐसी बतलायीं जिन्हें कि वह सज्जन तथा उनकी पहली पत्नी ही जानते थे। उसने उन्हें यह भी बतलाया कि उसने अपने घर के अन्दर एक स्थान में सौ रुपये गाड़ रखे हैं।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

कानपुर के देवीप्रसाद का पुत्र

(अमृत बाजार पत्रिका दि० १-५-३८)

कानपुर के प्रेम नगर में रहने वाले देवीप्रसाद भटनागर का एक पाँच वर्ष का पुत्र कहता है कि पूर्व-जन्म में उसका नाम शिवदयाल मुख्तार था और सन् १६३७ में कानपुर के उपद्रव के समय उसकी हत्या की गयी। उसके दो मुसलमान मित्रों ने छलपूर्वक उसे एक घर में ले जा कर उसको मार डाला। एक दिन वह बालक अपने पहले के घर जाने का आग्रह करने लगा, जहाँ उसकी पत्नी बीमार पड़ी थी। उस बालक को वहाँ ले जाया गया और उसने तुरन्त ही अपनी पत्नी को, अपने बच्चों को तथा अन्य वस्तुओं को पहचान लिया।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

डेढ़ वर्ष की आयु में गीता-पाठ

(अमृत बाजार पत्रिका के प्रयागराज के
संवाददाता की सूचना)

झांसी का एक तीन वर्ष का बालक भगवद्गीता तथा रामायण का मौखिक पाठ करता है और उसका उच्चारण शुद्ध होता है। जब वह बालक पाँच मास का था तभी से वह कुछ कहने का प्रयास करता; किन्तु बोल न सकता था। डेढ़ वर्ष की आयु प्राप्त करने पर वह अपने श्रोताओं को गीता सुनाने लगा।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

पाँच वर्ष की बालिका तथा पिआनो
(पीपुल दि० २०-६-३७)

ब्लैकपूल की एक पञ्चवर्षीया बालिका गुड़ियों के साथ खेलने के स्थान में पिआनो बजाती है। उसने पिआनो बजाने की शिक्षा कभी भी नहीं ली फिर भी वह उसे बड़ी [illegible] से बजा लेती है। जो कोई भी मधुर राग वह सुनती है, [illegible] पर अच्छी तरह से पिआनो बजा सकती है। इसके [illegible] वह अपनी भी दो-एक रचनाएँ बजाती है।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

कलकत्ता के बैरिस्टर की पुत्री

कलकत्ता के हाई कोर्ट के बैरिस्टर की [illegible] केवल तीन वर्ष की थी, तभी वह घर का [illegible] ढङ्ग से साफ करती थी। पूछने पर उसने [illegible]

"बेलदंग में मैं, अपने श्वसुर के घर की [illegible]

थी। मैं पूजा करती तथा ठाकुरजी का भोग लगाती थी। मेरे श्वसुर के घर में एक डोल मञ्च था। डोल-यात्रा के दिन हम ठाकुरजी को एक हिंडोले में पधराते थे और उनको खूब अबीर मलते थे।

यह बालिका बड़े आचार से रहती है और अपने माता-पिता के साथ खान-पान तथा उठने-बैठने का व्यवहार नहीं रखती; क्योंकि वे लोग पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में आ गये हैं; अतः उस बालिका के विचार से वे लोग अस्पृश्य हैं। उसका भोजन अलग पकाया जाता है।

इन बातों की सत्यता की जाँच आज (सन् १९४३ में) भी सरलता से की जा सकती है।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

जीव के पुनर्जन्म की एक विचित्र घटना

मुरादाबाद, अगस्त २३—बदायूँ जिले के बिसौली ग्राम का परमानन्द नाम का एक बालक १५ अगस्त को जब से यहाँ आया, तब से यहाँ पर एक सनसनी-सी फैल गयी है। इ बालक ने अपने पूर्व-जन्म की घटनाएँ बतलायीं और वे सर्वांश सत्य निकलीं। यहाँ पर उसके इस दो दिवसीय निवास में सहस्रों व्यक्तियों ने, जिनमें इस नगर के कितने ही मान्य व्यक्ति भी सम्मिलित थे, उससे भेंट की और अन्त यह निश्चित हुआ कि यह पुनर्जन्म की एक असन्दिग्ध घ है। साढ़े पाँच वर्ष का यह बालक कहता था कि वह श्री मोहनलाल का भाई परमानन्द है जिसकी मृत्यु ९ मई, १ को सहारनपुर में जीर्ण उदर-शूल के कारण हुई थी। श्री मोहनलाल मेसर्स मोहन ब्रदर्स की प्रसिद्ध केटरिंग

मालिक हैं। इस फर्म की शाखाएँ सहारनपुर तथा मुरादाबाद में भी हैं।

परमानन्द की मृत्यु के ठीक नौ महीने छः दिन के पश्चात् पन्द्रह मार्च, १६४४ को बिसौली ग्राम में स्थानीय इण्टर कालेज के प्राध्यापक बाबू बांकेलाल शर्मा, शास्त्री, एम० ए० के पुत्र-रूप में उसका जन्म हुआ। बालक ने जब से बोलना आरम्भ किया तभी से मोहन, मुरादाबाद तथा साग्नपुर अर्थात् सहारनपुर स्पष्ट रूप से कहने लगा और बाद में वह 'मोहन ब्रदर्स' शब्द भी स्पष्ट रूप से कहने लगा। जब कभी भी वह अपने सम्बन्धियों को बिस्कुट, मक्खन आदि खरीदते देखता तो वह कहता कि मेरी मुरादाबाद में बिस्कुट की बहुत बड़ी फैक्टरी है।' जब कभी वह कोई बड़ी दूकान देखता तो कहता कि 'मुरादाबाद की मेरी दूकान सभी दूकानों से बड़ी है।' कभी-कभी वह अपने माता-पिता से उसे मुरादाबाद ले चलने के लिए आग्रह करता। यह एक विचित्र संयोग है कि पण्डितों ने उसकी जन्म-कुण्डली में उसका नाम परमानन्द ही रखा; परन्तु उसके बड़े भाई का नाम प्रमोद था, इससे उसका नाम भी प्रमोद रखा गया, परन्तु बालक तो सदा अपनी इस बात पर अड़ा रहा कि उसका नाम परमानन्द है और मुरादाबाद में उसके भाई, पुत्र तथा एक पुत्री और एक पत्नी हैं।

इस वर्ष के प्रारम्भ में ही ऐसी बात हुई कि बिसौली ग्राम के लाला रघुनन्दन लाल ने मुरादाबाद में रहने वाले एक सम्बन्धी से इस बालक के तथा मोहन ब्रदर्स के साथ सम्बन्ध होने के उसके दावे के विषय में चर्चा की। उस सम्बन्धी ने फर्म के मालिक श्री मोहनलाल ... बतलायी। अपने कुछेक सम्बन्धियों के साथ श्री

बिसौली पधारे और उस बालक के पिता से भेंट की। बालक उस समय अपने एक सम्बन्धी के साथ दूर ग्राम में गया हुआ था; अतः उससे वे न मिल सके। श्री मोहनलाल ने प्राध्यापक बाँकेलाल से उस बालक को मुरादाबाद लाने के लिए प्रार्थना की। श्री बाँकेलाल ने इसे स्वीकार कर लिया और तदनुसार यह निश्चय हुआ कि आगामी स्वतन्त्रता दिवसोत्सव पर प्राध्यापक जी उस बालक को मुरादाबाद लायेंगे।

पन्द्रह अगस्त को जब उस बालक को मुरादाबाद ले गये तो गाड़ी से उतरते ही उसने अपने भाई को तुरन्त पहचान लिया और उसके गले से लिपट गया। स्टेशन से श्री मोहन लाल के घर जाते समय उस बालक ने मार्ग में टाउनहाल को पहचान लिया और बोला कि 'अब मेरी दूकान निकट ही है।' उस बालक की परीक्षा के लिए पहले ही से व्यवस्था की गयी थी, तदनुसार मोहन ब्रदर्स की दूकान आ जाने पर ताँगा रोका नहीं गया; परन्तु उस बालक ने तुरन्त ही ताँगा रुकवा दिया। बालक दूकान के सामने वाले घर की ओर बढ़ा और जहाँ पर स्वर्गीय परमानन्द अपनी पूजा की सामग्री तथा तिजोरी रखते थे, उस कमरे में चला गया।

कमरे में प्रवेश करते ही उसने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। जब उस बालक ने पूर्व-जन्म की अपनी पत्नी तथा परिवार के अन्य लोगों को पहचान लिया और उनके सम्बन्ध में अपने जीवन की कितनी ही घटनाओं को स्मरण दिलाया, तब वहाँ का वातावरण बहुत ही करुण हो उठा। सभी ने यह स्वीकार किया कि वे सभी घटनाएँ सच्ची हैं। परमानन्द की मृत्यु के समय उसके ज्येष्ठ पुत्र की आयु केवल तेरह वर्ष की थी। अब वह सतरह वर्ष का हो चला था। वह बालक पूर्व-

जन्म के अपने इस पुत्र को पहचान न सका। जब उस बालक ने यह स्मरण दिलाया कि सभी भाई इकट्ठे बैठ कर लेमन इत्यादि पिया करते थे तो उसके सभी भाई तथा अन्य उपस्थित जन रो पड़े।

इसके पश्चात् वह बालक अपनी दूकान की गद्दी को जाना चाहा। दूकान मे जाने के अनन्तर वह सोडा मशीन के पास गया और सोडा तैयार करने की विधि बतलायी। यह वस्तु उसने अपने इस जीवन में पहले कभी नही देखी थी। उसने बतलाया कि पानी का कनेक्शन बन्द रखा है और वास्तव में ही उसकी स्मृति की जाँच के लिए ऐसा किया गया था।

तत्पश्चात् उस बालक ने विक्टोरिया होटल जाने की इच्छा प्रकट की। इस होटल के मालिक स्वर्गीय परमानन्द के चचेरे भाई श्री कर्मचन्द जी थे। वह होटल मे गया और जब वह उस मकान के ऊपरी खण्ड पर पहुँचा तो उसने तुरन्त ही कहा कि 'छत पर बने हुए ये कमरे पहले यहाँ नही थे।'

मुरादाबाद के प्रमुख नागरिक श्री साहु नन्दलाल शरण उस बालक को अपनी मोटर मे बैठा कर मेस्टन पार्क ले गये और जहाँ पर एक समय उसकी दूकान की सिविल लाइन की शाखा थी, उस स्थान को बतलाने के लिए कहा। उस बालक ने उस जन-समुदाय को श्री साहु नन्दलाल शरण की गुजराती बिल्डिंग के पास ले गया और जहाँ पर पहले मोहन-ब्रदर्स की शाखा थी, उस दूकान को उसने बतलाया। मेस्टन पार्क के मार्ग में उस बालक ने इलाहाबाद बैंक, वाटर वर्क्स तथा जिला जेल आदि पहचान लिये।

यह बात यहाँ ध्यान देने की है कि वह बालक अपने पूर्व-जन्म से सम्बन्धित स्थानों को देखने की इच्छा अपनी

स्मृति की परीक्षा के लिए नगर के जिन विभिन्न स्थानों को गया वहाँ पर वहुत वड़ी सङ्ख्या में लोग उपस्थित थे। यह एक दर्शनीय दृश्य था। इससे सभी लोगों के हृदय गद्गद् हो उठे। उस वालक ने अन्य अनेक स्थानों को तथा उन लोगों को जो कि उसके जीवन-काल में उसकी दूकान पर आते-जाते थे, पहचान लिया।

आर्य समाज भवन में १६ अगस्त को एक वहुत वड़ी सार्वजनिक सभा हुई; जिसमें वालक के पिता प्रोफेसर श्री वाँकेलाल ने वालक की पूर्वस्मृति उसकी वाल्यावस्था से किस प्रकार विकसित हुई, इस विपय को समझाया।

जो लोग ईश्वर अथवा पुनर्जन्म में विश्वास नहीं रखते, उन लोगों पर इस घटना का वहुत ही गम्भीर प्रभाव पड़ा। एक सज्जन ने मुझ से कहा, "जिन लोगों को इस विपय पर श्रद्धा है, उन्हें किसी भी व्याख्या की आवश्यकता नहीं, और जो लोग विश्वास नहीं रखते, उनके लिए कोई भी व्याख्या सम्भव नहीं।"

उस वालक को मुरादावाद से वापस ले जाने में वड़ी कठिनाई हुई। वह अपने पूर्व-जन्म के सम्वन्धियों को तथा दूकान को छोड़ना नहीं चाहता था, अतः सतरह अगस्त को वड़े प्रातःकाल ही जव वह वालक सो रहा था तव उसे ले जाया गया।

यहाँ यह वताने की आवश्यकता नहीं कि न तो वह वालक और न उसके पिता ही इससे पूर्व कभी मुरादावाद गये थे। उस वालक ने जिस ढङ्ग और जिस रूप से विवरण प्रस्तुत किये, वे सभी सम्पूर्ण रीति से ठीक निकले, उनमें कुछ भी त्रुटि न थी।

लगभग बारह वर्ष पूर्व इसी प्रकार की अथवा इससे भी विशेष कुतूहलपूर्ण घटना दिल्ली में हुई; जिसमें शान्ति देवी नाम की नौ वर्षीया बालिका को मथुरा ले जाया गया। वहाँ उसने अपने पूर्व-जन्म के पति, घर और पूर्व-जन्म से सम्बन्धित बहुत-सी वस्तुएँ पहचान लीं।

(अमृतबाजार पत्रिका अगस्त १९४९)

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

जीवात्मा के परिवर्त्तन की एक विचित्र घटना

जीवन में कितनी ही विचित्र घटनाएँ होती हैं; वे सभी मान्य हैं अथवा नहीं—इस विषय में हमें असमञ्जस-सा होता है और यदि संयोगवश वे घटनाएँ कहीं अलौकिक हुईं तो यह असमञ्जस और भी बढ़ जाता है। यद्यपि एक सुसंस्कृत एवं सुसभ्य मानव के रूप में हम ऐसी बातें मानने को तैयार नहीं होते, तथापि प्रत्येक मानव-मस्तिष्क में जिज्ञासा की वृत्ति होती है और जब तक यह ज्ञान-पिपासा शान्त नहीं हो जाती तब तक हम उस विषय की ओर अधिक गहराई में प्रवेश करते हैं और उसके परिणाम-स्वरूप उस विषय में अधिकाधिक अनुभव प्राप्त करते हैं।

गङ्गानगर (राजस्थान) के सेठ सोहनलाल मेमोरियल इंस्टीटयूट के मनोविज्ञान विभाग के निर्देशक श्री एच० एन० बनर्जी ने मानव-जीवात्मा के देहान्तरण के विषय में एक विचित्र उदाहरण प्रस्तुत किया है। मुजफ्फरनगर जिला के रसूलपुर ग्राम के यशवीर नामक एक तीन वर्षीय बालक के विषय की यह घटना है। यह बालक एक रात्रि में मर गया; परन्तु उसके माता-पिता ने दूसरे दिन तक उसके शव को न

गाड़ने का निश्चय किया। कुछ काल पश्चात् उस बालक के शरीर में जीवन के कुछ-कुछ लक्षण प्रकट होने लगे और दो-एक दिनों में तो वह पूर्ण स्वस्थ हो चला। परन्तु जब वह बालक स्वस्थ हुआ तो वह पहले से सर्वथा भिन्न व्यवहार करने लगा। उसने घर में भोजन करने से इन्कार कर दिया। वह कहता कि 'मैं तो ब्राह्मण का बालक हूँ। यहाँ से बाईस मील दूर विदेही ग्राम के निवासी श्री शङ्करलाल त्यागी मेरे पिता लगते हैं।' उस बालक को लगभग अठारह मास तक एक ब्राह्मण-स्त्री के हाथ का पकाया हुआ भोजन दिया गया। इतने में एक दिन विदेही ग्राम के पण्डित रविदत्त जी, जो कि पाठशाला में एक अध्यापक हैं, रसूलपुर आये। बालक यशवीर ने उन अध्यापक को तुरन्त ही पहचान लिया और उनके साथ वह विदेही ग्राम की तथा श्री शङ्करलाल त्यागी के घर के विषय में कितनी ही बातें करने लगा। इससे सब को बहुत ही आश्चर्य हुआ और उस बालक को विदेही ग्राम ले गये। उसने उस ग्राम वालों को पहचान लिया वहाँ पर जाँच करने से ऐसा पता लगा कि शङ्करलाल त्यागी का पचीस वर्ष का एक पुत्र था। वह विवाहित था और उसके तीन पुत्र थे। वह बालक जब मरा, तभी से यशवीर के शरीर में परिवर्त्तन घटित हुआ। यह घटना चार वर्ष पहले की है। यशवीर अब भी रसूलपुर ग्राम में रहता है; परन्तु उसकी और उसके माता-पिता की परस्पर बनती नहीं और इससे वे दोनों ही दुःखी रहते हैं।

वाणिज्य एवं व्यवसाय विभाग के एक कर्मचारी श्री जे० पी० भारद्वाज जी ने श्री बनर्जी का ध्यान इस विचित्र घटना की ओर आकर्षित किया। श्री बनर्जी ने दोनों ग्रामों के लगभग

एक सौ व्यक्तियों को बुलवाकर इस घटना की जाँच की और ऐसा मालूम हुआ कि घटना बिल्कुल सत्य है।

(अमृत बाजार पत्रिका)

●

पुनर्जन्म की एक नवीनतम सुप्रसिद्ध घटना—शान्ति देवी

बीस वर्ष पूर्व दिल्ली के एक पुनर्जन्म-सम्बन्धी अत्यन्त मर्मस्पर्शी समाचार का प्रमुख भारतीय तथा विदेशी समाचार पत्रों में प्रकाशन की खूब धूम रही। मर्मस्पर्शी, इसे इसलिए कहते हैं कि इसमें आश्चर्यजनक रूप से पुनर्जन्म की सच्ची तथा विश्वसनीय बातें प्राप्त हुई थी तथा इसका समाचार देने वाली एक स्थानीय समिति थी जिसमें प्रगतिशील विवेकी तथा योग्य व्यक्तियों का समावेश था।

शान्ति देवी का जन्म १२ अक्तूबर सन् १६२५ को हुआ था। इस बालिका के स्मृति-पटल पर सन् १६०२ से लेकर सन् १६२५ तक की सम्पूर्ण अवधि के अपने विगत जीवन-सम्बन्धी सभी घटनाओं का सुस्पष्ट तथा जीवन्त चित्र अङ्कित था। जब से इस नन्ही बालिका ने बोलना प्रारम्भ किया तब से ही वह प्रायः प्रतिदिन अपने पूर्व-जीवन में घटित होने वाली बातें स्मरण कर कहती रहती थी। मथुरा के पण्डित केदारनाथ चौबे को वह अपना पति बतलाती थी और उनके साथ-सम्बन्धी प्रसङ्ग आश्चर्यकर रूप से वर्णन करती थी। इन बातों में विश्वास न करने वाले उसके माता-पिता उसके विगत जीवन के इस सचित्र विवरण को शिशु-प्रलाप समझ कर न केवल

उपेक्षा ही करते थे वरन् वे इस आशा में थे कि आयु के बढ़ने के साथ ही उसके स्मृति-पटल से ये चित्र स्वतः ही मिट जायेंगे; परन्तु उनकी आशा एवं आकांक्षा के प्रतिकूल वह बालिका अपने विगत जीवन की स्मृति में अधिकाधिक बढ़ रही तथा अपने माता-पिता से यह आग्रह करती रही कि वे उसे मथुरा ले जायें जहाँ कि उसका पिछला जन्म हुआ था। उसकी यह इच्छा थी कि 'मैं अपने इस जन्म के माता-पिता को अपना पुराना घर तथा उसकी कुछ ऐसी विशेष वस्तुएँ दिखाऊँ जो कि उस घर से सुपरिचित तथा दीर्घकाल तक रहने वाला व्यक्ति ही दिखला सकता हो।'

यह बालिका अपने माता-पिता को समझाने में अन्ततः सफल हुई। उस लड़की के दादा को बुलवाया गया। शान्ति देवी ने उन्हें अपने पूर्व जन्म के पति का पता बतलाया। उस पर खोज की गयी। उसके पति पण्डित केदारनाथ के साथ पत्र-व्यवहार किया गया और बड़ा आश्चर्य यह कि मथुरा के पण्डित केदारनाथ जी का उत्तर प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने पत्र में अन्य बातों के साथ जाँच-समिति को यह परामर्श दी कि 'वे दिल्ली में मेसर्स नानमल गुलजारी मल के यहाँ काम करने वाले मेरे एक सम्बन्धी पण्डित कानजी मल से मिलें और बालिका शान्ति देवी से उनकी भेंट करायें।' इस पर पण्डित कानजी मल जी जब उस बालिका से मिले तो वह उन्हें केवल तुरन्त पहचान ही नहीं लिया कि वह उसके पति के चचेरे भाई हैं वरन् अपने पूर्व जीवन से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित घटनाओं को स्पर्श करने वाले उनके सभी प्रश्नों का बहुत ही सन्तोषजनक उत्तर दिया।

इस प्रकार जब शान्ति देवी ने अपने विगत जन्म की

घटनाएँ तथा अनुभव की बातें बतलायी तब उसके माता-पिता, जाँच-समिति तथा कानजी मल में इस बात की गम्भीरता से छानबीन करने की नवीन सक्रिय अभिरुचि जग उठी। उन्होंने केदारनाथ चौबे को मथुरा से दिल्ली बुलाया। तदनुसार जब पण्डित केदारनाथ चौबे अपने दस वर्षीय पुत्र तथा नव-परिणीता पत्नी के साथ शान्ति देवी से मिलने दिल्ली आये तब शान्ति देवी ने तुरन्त ही अपने पति को पहचान लिया। अपने पुत्र को देख कर वह इतनी प्रभावित हुई कि उसके नेत्रों से आँसू उमड़ पड़े। शान्ति देवी तथा उसके तथाकथित पति पण्डित केदारनाथ चौबे में परस्पर बड़ी देर तक वार्त्ता होती रही। शान्ति देवी ने जो सत्य घटनाएँ प्रस्तुत कीं उनसे चौबे जी बहुत ही प्रभावित हुए और उन्होंने स्वीकार किया कि 'मेरी पत्नी का अभी कुछ ही वर्ष पूर्व मथुरा में देहान्त हुआ था उसकी ही आत्मा इस बालिका में है और उसने जो-जो बातें प्रस्तुत की हैं, वे सभी सच्ची हैं।'

शान्ति देवी ने इससे पूर्व भी अनेक बार अपने माता-पिता से मथुरा जाने की याचना की थी, परन्तु जब से उसकी भेंट श्री चौबे जी से हुई तब से उसकी इस माँग ने और अधिक जोर पकड़ा। अब उसके माता-पिता भी उसकी इस बार-बार की प्रार्थना को स्वीकार करने को तैयार थे। शान्ति देवी ने अपने मथुरा वाले घर का रङ्ग तो बतलाया ही, साथ ही उसने उस घर को जाने वाली सड़कों तथा गलियों के नाम भी बतलाये। इसके अतिरिक्त विश्राम घाट तथा द्वारकाधीश के मन्दिर का वर्णन भी किया। इतना ही नहीं उसने कुछ बातें ऐसी भी बतलायी जिनका कि पण्डित केदारनाथ जी की पहली धर्मपत्नी को ही पता था। उसने यह भी बतलाया कि उसने

मथुरा में अपने घर के ऊपरी मञ्जिल के कमरे में सौ रुपये गाड़ रखे हैं, जिन्हें कि उसने द्वारकाधीश के मन्दिर में चढ़ाने का सङ्कल्प कर रखा था।

शान्ति देवी के मथुरा जाने की प्रार्थना और अभिलाषा को स्वीकार कर उसके माता-पिता तथा घटना की सत्यता की जाँच करने वाली समिति के सदस्य गण शान्ति देवी के साथ दिल्ली से प्रस्थान किये। अभी जब गाड़ी मथुरा स्टेशन के पास पहुँची ही थी कि शान्ति देवी ने उल्लास में आकर 'मथुरा आ गया, मथुरा आ गया'—ऐसा पुकारने लगी और जब वह गाड़ी से उतरी तो उसने भीड़ में खड़े हुए एक वृद्ध सज्जन को पहचान लिया। यह सज्जन मथुरा की विशेष वेश-भूषा धारण किये हुए थे और शान्ति देवी इससे पूर्व उनसे कभी भी नहीं मिली थी। वह श्री देशबन्धु गुप्त जी की गोद में थी। वहाँ से वह नीचे उतरी और सहज भाव से उन वयोवृद्ध सज्जन के चरण-स्पर्श कर कहने लगी कि 'यह मेरे पतिदेव के ज्येष्ठ भ्राता हैं।' बात बिलकुल ठीक थी। यह बात भी शान्ति देवी के उन अनेकानेक कुतूहलजनक कार्यों में से एक थी जिनके कारण वह अपन दर्शकों की प्रशंसा तथा सम्मान का पात्र बनी। स्टेशन से अपने घर आने का मार्ग तो वह बराबर बतलाती ही रही, साथ ही उसने कई रोचक बातें भी बतलायीं। उदाहरणतः उसने बतलाया कि उस विशेष सड़क पर उन दिनों अलकतरा नहीं पड़ा था। जब उसने अपने घर में प्रवेश किया तो उसकी जाँच करने के लिए उसके साथ एक सज्जन भी थे। उस सज्जन ने उसके परीक्षार्थ जो भी प्रश्न किये उन सब के उसने बहुत ही सन्तोषजनक उत्तर दिये। जब उसे मथुरा की धर्मशाला ले गये तो वहाँ उसने अपने पूर्व-

जन्म के भाई को पहचान लिया। उसकी पूर्वकथित सभी बातें जिन्हें कि पहले लोग शिशु-प्रलाप मात्र समझ कर उपेक्षा करते थे, सभी पग-पग पर सच निकलीं—वह भी ऐसी प्रकाट्य सत्य कि जिसमें सन्देह का कोई स्थान न था। उसके पूर्व-जीवनकाल में उसके घर के प्राङ्गण में एक कुआँ था। वहाँ प्रवेश करने पर जब शान्ति देवी ने उस कुएँ को वहाँ न देखा तो इससे उसे कुछ निराशा-सी हुई। उसके पति पण्डित केदारनाथ जी उसके इस भाव को जान गये और उन्होंने दीवाल-हीन कुएँ को ढकने वाले पत्थर को हटा दिया और उसे वह कुआँ दिखलाया।

शान्ति देवी ने घर की ऊपरी मञ्जिल पर जाकर, जिस कोने में रुपये गाड़ रखे थे, उसे स्वयं खोदा परन्तु रुपये वहाँ न मिले। इससे वह उद्विग्न-सी हो गयी। पण्डित केदारनाथ ने यह स्वीकार किया कि प्रथम पत्नी (वर्तमान शान्ति देवी) के स्वर्गवास के अनन्तर उन्होंने उस धन को वहाँ से निकाल लिया था। तदनन्तर शान्ति देवी को उसके पूर्वजीवन के माता-पिता के पास ले गये। उसने उन्हें तुरन्त ही पहचान लिया। इस पर वह बालिका तथा उसके माता-पिता दोनों ही सुबक-सुबक कर रोने लगे। बड़ी कठिनाई से बालिका को उनसे अलग किया जा सका। माता-पिता के पास से उस बालिका को विश्राम-घाट ले गये। वहाँ भी उसने अपने पूर्व-जीवन के संस्मरण-सम्बन्धी कितनी ही बातें बतला कर जाँच करने वाली समिति के सदस्यों तथा अन्य लोगों को आश्चर्य में डाल दिया।

इस प्रकार की घटनाएँ भारत में असाधारण नहीं हैं। अभी सात वर्ष पूर्व एक ऐसी ही दूसरी बालिका का उदाहरण देखने में आया था। उस बालिका ने भी अपने पूर्व-जन्म के

माता-पिता को पहचान लिया था। इसकी सत्यता की जाँच करने पर उसकी बतलायी हुई सभी बातें ठीक निकलीं। उस बालिका के पूर्व-जन्म के माता-पिता धनाढ्य हैं; अतः वे उस बालिका के भरण-पोषण का प्रबन्ध करते हैं तथा उसे उच्च शिक्षा भी दिला रहे हैं; क्योंकि बालिका के वर्त्तमान माता-पिता निर्धन हैं। पुनर्जन्म के विषय में जो खोज-बीन की गयी हैं, उनके परिणाम को जानने का कष्ट न कर इस सिद्धान्त को ही अयथार्थ मान बैठना हास्यास्पद ही है।

❁ ❁ ❁ ❁ ❁

मृदुला अपने विगत जीवन का विवरण देती है

एक बालिका, जिसकी आयु लगभग सवा दो वर्ष होगी, 'माँ, माँ', चिल्लाती हुई अपनी माता की गोद से कूद पड़ी और अपनी इष्ट वस्तु को ओर दौड़ने लगी। उसी समय एक सम्भ्रान्त महिला मृदुला के घर के सामने अपनी मोटर कार से बाहर निकल रही थी। बालिका मोटर की ओर भाग कर गयी और तुतलाते हुए कहने लगी, "ओहो, यह मोटर कार तो मेरी है और वह मेरी माँ है।" बालिका की ओर कुछ ध्यान न देकर महिला आगे चली गयी। मृदुला की माँ को भय लगा कि कहीं वह सड़क पर खो न जाय, अतः वह भाग कर बाहर आयी।

किन्तु मृदुला मोटर कार के पास से जाने को तैयार न थी। वह इधर-उधर देख रही थी मानो कि वह किसी वस्तु की खोज में है। उसका मुख उत्तेजना और आनन्द से पुलकित हो रहा था, किन्तु उसकी माता को इससे क्या? वह तो हैरान

थी; अतः बालिका को बलात् अपने घर उठा ले गयी। उस रात्रि मृदुला अपने-आपमें न थी। वह अपनी माँ से अनेक प्रकार की बातें करती रही जैसे कि वृद्ध व्यक्ति अपने अतीत जीवन के दिनों की याद कर रहा हो।

मृदुला कहती, "माँ! मेरे एक दूसरा घर है। हमारे छः हाथी और एक मोटर कार भी है। वहाँ मेरी छोटी बहनें, पिता तथा कई सहेलियाँ भी हैं। क्या आप मुझे अपनी पहली माँ के पास ले चलने की कृपा करेंगी? मैंने वापस आने के लिए वादा किया था। मैं घर जाने के लिए कितनी उत्सुक हूँ!" वह इसी प्रकार असङ्गत बातें बड़बड़ाती रहती थी। असङ्गत इसलिए कहा कि दूसरों को उसकी बातें असङ्गत-सी ही लगती थीं, हाँ उसके लिए वे निश्चय ही असङ्गत नहीं थीं। उसकी माँ बहुत व्यग्र हो रही थी और उसे आश्चर्य हो रहा था कि बालिका का दिमाग ठीक तो है।

दिन, सप्ताह और महीने बीतते गये। छः माह से अधिक व्यतीत हो चले, किन्तु मृदुला अपनी पुरानी (अपने बड़े मकान, कार और सहेलियों के सम्बन्ध की) बातें दोहराती रही। बेचारी माँ ने बहुतेरा प्रयत्न किया, किन्तु वह बालिका को शान्त न कर सकी। अन्त में करुणामय भगवान् उनकी सहायता को आये।

एक बड़ा यज्ञ हो रहा था, जिसमें समाज के बहुत से व्यक्ति सम्मिलित हुए। मृदुला की माँ भी अपनी बच्ची के साथ वहाँ गयी। यज्ञ समाप्त हो चला था। दो बच्चे मृदुला से कुछ दूरी पर बैठे हुए थे। वह उन्हें देख रही थी। वह उनके पास दौड़ी हुई गयी और अपने गले में पहनी हुई पुष्पमाला को गले से निकाल कर उनके गले में पहना दी।

उन बच्चों की माँ पास ही खड़ी थी। उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने मृदुला की इस भावना की मन ही मन बड़ी प्रशंसा की और उससे कहा, "तुम बहुत भली लड़की मालूम पड़ती हो। क्या तुम उन बालकों को जानती हो ?" मृदुला ने तुरन्त उत्तर दिया, "मैं इन बच्चों को तो नहीं जानती, पर तुम्हें अच्छी तरह जानती हूँ।" फिर उसने भाव-विह्वल होकर पूछा, "क्या तुम मुझे पहचान नहीं रही हो ? मैं तुम्हारी बड़ी बहन मुन्नू हूँ। हमारे पिता जी और माता जी कहाँ हैं ? हमारे हाथी कैसे हैं ?" मृदुला ने इसी भाँति उत्तेजित होकर उसे कई बातें ऐसी बतलायीं जो उस परिवार का बहुत ही घनिष्ठ व्यक्ति ही जान सकता था।

उन दोनों बच्चों की माँ आश्चर्यचकित रह गयी। उसने मृदुला को अपनी छाती से लगा लिया और परिवार के सम्बन्ध में कई प्रश्न किये। वह मृदुला को उसकी माँ के पास ले गयी और उससे सारी बातें कह सुनायीं। उसने मृदुला को अपने घर ले जाने की अनुमति माँगी। मृदुला की माँ ने उसकी बात को स्वीकार कर लिया और वे सभी उस नवयुवती की कार में सवार होकर उसके घर गये।

पहले घर में वापसी

कार एक घर के सामने पहुँच कर रुक गयी। मृदुला यह कहती हुई बाहर निकल पड़ी कि यही मेरा घर है। ज्यों ही उसने एक वृद्ध व्यक्ति को द्वार पर खड़े हुए देखा वह कहने लगी, "ओहो, वह मेरे पिता जी हैं। ओहो, वह मेरे पिता जी हैं।" उसे अन्दर तेजी से जाते हुए और एक कमरे से दूसरे कमरे के पास जाकर यह बतलाते हुए कि कुछ वर्ष पूर्व उनमें कौन

रहता था, देख कर सभी हैरान रह गये। फिर वह अपने कमरे के पास गयी और कहने लगी, "मैं यहाँ रहती थी।" उसने कुछ पुस्तकें भी खोज निकालीं और बताया कि उसने उन्हें एम ए के पाठ्यक्रम में पढ़ी थीं। उसने आलमारी भी ढूँढ़ निकाली और बताया कि उसमें उसके कपड़े रहते थे। उसने चारपाई भी बतलायी जहाँ वह बीमार पड़ी थी। उसने इस बात पर खेद प्रकट किया कि वह एम. ए. की परीक्षा में बैठ न सकी।

मृदुला ने घर की वृद्ध महिला से अपनी बाल-सहज उत्सुकता से पूछा, "माँ, क्या आपको मालूम है कि अपना शरीर छोड़ते समय मुझे कैसा अनुभव हुआ था?" उसने अपने हाथ और पैर की ओर इशारा करते हुए बतलाया, 'सभी नसों में तनाव था और मुझे असह्य वेदना हो रही थी। तब मैं एक पक्षी की तरह ऊपर उड़ी। मुझे पता नहीं कि मैं किधर गयी। मैं इधर-उधर विचरण करती रही और अपनी इस यात्रा में मैंने कई प्रकाशपूर्ण और आनन्दमय पदार्थ देखे। वहाँ पर सभी प्रसन्न थे। तब मुझे एकाएक आपकी याद आयी। आप मेरे साथ नहीं थीं, इससे मुझे बहुत दुःख हुआ। इसके बाद मुझे कुछ भी स्मरण नहीं है।' वृद्ध दम्पति अपनी पहली पुत्री को जो छ या सात वर्ष पूर्व मर चुकी थी, बहुत प्यार करते थे। वे अवाक् से रह गये। जब उन्हें पुरानी बातें पुनः याद आयीं तो उनके नेत्रों से अश्रु छलक पड़े।

मृदुला के शब्द उनके हृदय में गहरी छाप छोड़ गये। उन्हें सभी कुछ स्वप्न-सा लग रहा था जो दुर्ग्राह्य था किन्तु था नितान्त सत्य। इस छोटी अपरिचित बालिका ने उनके सामने जो बातें प्रकट की, वह पूर्ण सत्य थीं। मृदुला रुकी नहीं, वह बराबर कहती गयी "मैं वहाँ मेवा हूँ, जिसका

आपने प्यार का नाम मुन्नू रख रखा था। मेरी सहेलियाँ कैसी हैं ? डी० ए० वी० कॉलेज के शुक्ला जी कैसे हैं ? इस घर में प्राय: सभी चीजें वैसी ही हैं जैसा कि मैंने पहले उन्हें छोड़ा था, किन्तु आपने मेरे कमरे में क्यों परिवर्त्तन कर दिया ? यह पङ्खा पहले तो यहाँ नहीं था। यह वैठक में रहता था। माँ, मुझसे वातें कीजिए। जव मैं यहाँ से जा रही थी तो मुझसे वचन लिया था कि मैं वापस आऊँगी और अव मैं वापस आ गयी हूँ।" वेचारी महिला अव अपने को रोक न सकी। उसने वालिका को गले से लगा लिया। उसके कपोलों पर अश्रु झर-झर वह रहे थे।

पुराने वन्धन फिर नये रूप से जग पड़े

जिह्वा में कैंसर हो जाने से मेधा वीस वर्ष की आयु में सन् १९४५ में देहरादून में मरी थी। उस समय वह एम० ए० की परीक्षा की तैयारी कर रही थी, किन्तु अन्तिम वर्ष की परीक्षा में वैठ न सकी थी। उसकी अपने परिवार में प्रगाढ़ आसक्ति थी। अत: वह अपने कर्मो का भोग भोगने के लिए जब उसने नया जन्म लिया तव वे संस्कार उसकी पूर्व-स्मृति में असाधारण रूप से अवशेष रह गये। पहले वह देहरादून के धनाढ्य वैश्य परिवार में पैदा हुई थी। वाद में उसने वहाँ से हजारों मील दूर दक्षिण नासिक में एक ब्राह्मण परिवार में ३१ जुलाई, सन् १९४९ को जन्म ग्रहण किया। उसके जन्म के कुछ ही दिनों वाद उसका ब्राह्मण पिता स्वर्गवासी हुआ। माँ वहाँ से देहरादून चली आयी और एक स्कूल में अध्यापिका वन गयी। जैसा कि पहले वतलाया जा चुका है, वालिका जव सवा दो वर्ष की थी तव विगत जीवन की स्मृति उसमें सहसा जग पड़ी।

मृदुला अपने पूर्व-जीवन में बीस वर्ष तक जीती रही थी। इससे स्वभावतः ही वह अपनी वर्त्तमान माँ की अपेक्षा अपने पहले के परिवार के लोगों को अधिक प्रेम करती थी। वह अपने घर में रहने की अपेक्षा अपने पूर्व-जीवन के परिवार वालों के साथ रहने को अधिक उत्सुक थी। उस बेचारी महिला की भावनाओं का जरा अनुमान तो कीजिए जिसने पति के मर जाने पर अपनी इस बच्ची का इतनी सावधानी से पालन-पोषण किया हो और उसे अपने प्राणों के समान प्यार करती हो। मृदुला के पहले पिता उसे अपने पास रखने में प्रसन्न हैं और उसे सभी आवश्यक सुविधाएँ प्रदान कर रहे हैं।

गीता कहती है—"जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा अपने पुराने शरीरों को त्याग कर नये शरीरों को प्राप्त होता है।" (अध्याय २ श्लोक २२) मृदुला के विषय में यह बात पूर्णतः प्रमाणित हो चुकी है। यह पूर्व-जीवन की स्मृति प्राप्त करने का एक बहुत ही विरल अपवाद है। मनुष्य का यह सौभाग्य ही है कि उसे पूर्व-जीवन की स्मृति नहीं रहती, क्योंकि इससे वह रागजन्य अनेक कष्टों से बच जाता है।

आत्मा की अमरता

मृदुला श्री स्वामी शिवानन्द जी के आश्रम ऋषिकेश में कई बार आ चुकी है। पूर्व-स्मृति जाग्रत होने के बाद ही जब वह प्रथम बार अपनी माँ के साथ आयी थी तो उसकी आयु ५ वर्ष थी। उस समय उसे अपने विगत जीवन की स्मृति स्पष्ट थी। बाद में वह श्री स्वामी जी के आश्रम में अपनी दोनों माताओं के साथ आयी। अभी वह दस वर्ष की हो,

है और अपने नवीन बचपन के संस्कारों के कारण उसकी अब वह पूर्व-स्मृति काफी जाती रही। वह बुद्धिमान्, स्वस्थ और सर्वदा सामान्य बालिका है।

श्री स्वामी जी इस बालिका के अनुभवों को ध्यानपूर्वक सुनते रहे थे। बाद में उन्होंने बतलाया कि इसमें कोई नवीनता नहीं है। भूतकाल में भी ऐसे कई उदाहरण पाये गये हैं, किन्तु वे बहुत ही कम हैं और बहुत दिनों के बाद घटित हुए हैं। शान्ति देवी का ही उदाहरण लीजिए। बीस वर्ष पूर्व जब वह छोटी बच्ची ही थी तभी उसने अपने पूर्व-जीवन के सम्बन्धियों को पहचान लिया। ये बातें जीवात्मा की अमरता को प्रमाणित करती हैं जो अपने शारीरिक अथवा मानसिक शुभाशुभ कर्मों के परिणाम-स्वरूप विभिन्न रूप ग्रहण करती हैं। स्वामी जी ने कर्म के बन्धन से अपने को मुक्त बनाने तथा अपना पूर्व दिव्य स्वरूप पुनः प्राप्त करने की आवश्यकता बतलायी। स्वामी जी हमें वह मार्ग बतलाते हैं जिस पर चल कर हम अपना दिव्य स्वरूप पुनः प्राप्त कर सकते हैं। वह हमें निष्काम तथा पूर्ण समर्पण के भाव से कर्म करने तथा 'मैं कौन हूँ' इसका अनुसन्धान करने का उपदेश देते हैं। स्वामी जी के सूत्र-रूप में उपदेश हैं—भले बनो, भला करो। तोड़ो, जोड़ो (मन को भौतिक पदार्थों से अलग करो और उसे भगवान् में संलग्न करो)। आइए, हम सब उनसे प्रार्थना करें कि वह हम पर अपनी कृपा बनाये रखें और हमें सम्बल दें जिससे कि हम ईश्वर की ओर अग्रसर हो सकें।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

मृत्यु के अनन्तर तुरन्त जी उठना

मृत्यु के दो-तीन घण्टे के बाद मरे हुए व्यक्ति के पुनः जीवित हो उठने की घटनाएँ समाचार-पत्रों में प्रायः प्रकाशित होती रहती हैं। ये प्राय ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनको पहचानने में यमदूत भूल कर जाते हैं। दो व्यक्ति एक ही नाम के हों, एक ही सा उनका आकार हो और एक ही ग्राम में रहते हों तो यमदूत भूल से एक व्यक्ति के बदले दूसरे व्यक्ति को यमराज के पास उठा ले जाते है; किन्तु बाद में भूल का पता चलने पर उसे तुरन्त वापस कर देते है और उसी समय दूसरे व्यक्ति को यमराज की सभा में ले जाते है।

यहाँ आन्ध्र प्रदेश के श्री सी० रेड्डी का समाचार उन्ही के शब्दों में दिया जा रहा है। वह लिखते हैं, "शास्त्रों के आधार पर लोगों की यह सामान्य मान्यता है कि मनुष्य जब अपने इस मर्त्य शरीर को त्याग देता है तब यमराज के दूत उस मृत व्यक्ति के सूक्ष्म शरीर को उसके कर्म, प्रारब्ध अथवा पुरुषार्थ के अनुसार निर्धारित किये हुए लोकों को ले जाने के लिए आते है। मैं अपना व्यक्तिगत अनुभव जो प्रस्तुत करने जा रहा हूँ, उसको समझने अथवा उसकी सत्यता को मानने के लिए लोगों को हिन्दू शास्त्रों के इन उपदेशों पर विश्वास करना होगा। पाठक इन उपदेशों में विश्वास करें या न करें, किन्तु शीघ्र अथवा कुछ समय के बाद जब उनकी प्राणक्रिया बन्द हो जायेगी तब उन्हें भी ऐसा ही अनुभव होगा।

"मैं दक्षिण भारत के एक राजघराने मे पैदा हुआ था। भारत के स्वतन्त्र होने और कांग्रेस के हाथ में शासन-सूत्र आने पर मेरे समान राजे-महाराजे इस देश के एक सामान्य नागरिक मात्र रह गये। उनके सभी अधिकार और विशेषाधिकार छिन

गये। उन्हें थोड़ी-सी पेन्शन मिलती है। मेरा जीवन सदा ही धार्मिक रहा है, अतः अभी ७३ वर्ष की आयु में मैं एकान्तप्रिय बन गया हूँ और ऋषिकेश के स्वामी शिवानन्द जी महाराज के पूज्य चरणों की शरण ले ली है। मेरे अनुभव की सत्यता निम्नाङ्कित है :

"सन् १९४८ में मैं मलेरिया से बहुत बीमार पड़ गया, जिसके परिणाम-स्वरूप मैं बहुत ही दुर्बल हो गया। डा० जो मेरी चिकित्सा कर रहे थे, मेरे सम्बन्धी थे। उन्होंने मुझे इन्सुलिन का कोई इन्जेक्शन दिया जिससे मैं बेहोश हो गया। तुरन्त ही मुझे पास के एक उपचार-गृह में पहुँचाया गया। यहाँ मेरे शरीर में ताप लाने के लिए डा० इन्जेक्शन पर इन्जेक्शन देते रहे, किन्तु उन्होंने मन में यह निश्चय कर लिया कि अब मैं मर चुका हूँ। यही नहीं इस आशय का तार भी उन्होंने मेरी पुत्री को भिजवा दिया। यद्यपि डा० को मेरे मरने की आशा न थी, फिर भी उसका निर्णय पूर्णतः गलत न था। जब मेरी श्वास की गति बन्द हो गयी तो दो बड़े आकार वाले काले यमदूत मेरे सूक्ष्म शरीर या जीव को पकड़ कर बड़ी तेजी से यमलोक को ले गये। उस समय दिन के ११ बजे होंगे। हम बीस मिनट में ही अपने निर्दिष्ट स्थान पर जा पहुँचे। मैंने यमराज को एक स्वर्ण के सिंहासन पर बैठे हुए देखा। मैंने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। मैं कुछ बोला नहीं, क्योंकि मार्ग में यमदूतों ने मुझे आदेश दे रखा था कि जब तक यमराज मुझसे कोई प्रश्न न करें मैं बिलकुल मौन रहूँ। उन्होंने अपने सामने नीचे जमीन पर बैठे हुए व्यक्ति को मेरे जीवन की लेखा-पुस्तिका देखने के लिए धीमे स्वर में आदेश दिया और उसने उसके पृष्ठ उलट-पुलट कर देखने आरम्भ कर दिये।

उनकी बातचीत मैं समझ न सका। अन्त में धर्मराज ने उन्हीं यमदूतों को मुझे पुनः मर्त्यलोक में ले जाने का आदेश दिया। इससे मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि यमदूत भूल से मुझे वहाँ लिवा ले गये थे, जबकि उसी समय मेरे नाम और विवरण से मिलते-जुलते किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु होनी थी।"

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

मृत पत्नी का बालिका के रूप में पुनरागमन

कितने ही व्यक्तियों को किसी विशेष स्थान के विषय में ऐसा विचित्र अनुभव होता है कि इस बात का उन्हें पूर्ण विश्वास होते हुए भी कि उन्होंने अमुक स्थान को पहले कभी नहीं देखा है, जब वे उस स्थान पर जा पहुँचते हैं तो उनके मन में ऐसा लगता है कि 'मैं पहले भी यहाँ आया था।' कितनी ही बार यह संस्कार इतना अधिक दृढ़ होता है कि वह मनुष्य विश्वासपूर्वक यह कह सकता है कि अगले मोड़ पर खिड़कियों वाली दूकान होगी जिसमें सामान इस प्रकार सजाया होगा कि वह स्पष्ट रीति से दिख सके अथवा तो विशेष आकृति का अमुक घर होगा। अब जब वह व्यक्ति उस मोड़ की दूकान की ओर जाता है तो उसे अपने संस्कार की पुष्टि होते देख कर कुछ आश्चर्य-सा होता है।

महायुद्ध के समय की एक घटना मुझे याद आती है। ईश्वर में आस्था न रखने वाली एक सैनिक टुकड़ी ने नास्तिकवाद पर भाषण देने के लिए एक प्राध्यापक को आमन्त्रित किया था। उसने इस असामान्य घटना का विवेचन किया। इस सम्बन्ध में सबसे अच्छा उत्तर जो वह दे सका वह

मकान का मालिक एक वृद्ध पुरुष था और उसकी दूकान उसी मकान की निचली मञ्जिल पर थी।

'दूसरी मञ्जिल पर ठीक उसकी दूकान के ऊपर उसका कार्यालय था। ऊपरी मञ्जिल के दूसरे सब कमरे किराये पर दिये हुए थे जिनमें मेरे अतिरिक्त एक कारीगर, एक मोम के खिलौने बनाने वाला तथा हाथ करघे पर काम करने वाला एक व्यक्ति अलग-अलग कमरों में रहते थे।

'नवम्बर महीने में एक दिन वर्षा हो रही थी। उस दिन सायङ्काल के ६ वजने से ५ मिनट पूर्व ही मैं अपना स्टूडियो छोड़ कर नीचे आयी, किन्तु उसी समय एक आवश्यक वस्तु की याद आने पर मैं तुरन्त पीछे लौट पड़ी। जब मैं सड़क पार करने के अवसर की प्रतीक्षा में सड़क के एक ओर खड़ी थी तब मैंने वहाँ भूरे रङ्ग की पोशाक पहने हुए एक कोमलाङ्गी नवयुवती को देखा। उसकी पीठ पर उसके सुन्दर लम्बे केश बिखरे हुए थे। उसने मेरे पास से ही, भीड़ से बचती हुई बड़ी मुश्किल से सड़क पार किया। सामने जाकर वह हमारे मकान के दरवाजे में अदृश्य हो गयी।

'यह दृश्य देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। लन्दन में मस्तक पर 'बाल' किये हुई लड़कियाँ होती हैं, किन्तु इस लड़की के अयाल के समान बाल पीठ पर छाये हुए थे। दूसरी बात यह थी कि दूकान के दरवाजे में प्रवेश करने पर वह मेरी ओर देख कर मुस्करायी और मैंने देखा कि उसने जो परमा वायलेट फूल का गुच्छा हाथ में ले रखा था, वह ताजा था। भला नवम्बर माह में उसे वह कहाँ से मिला?

'बड़ी कठिनाई से जब मैं सड़क पार कर दूकान के पास पहुँची, तब दूकान की नौकरानी दूकान बन्द कर रही थी।

मैंने उससे पूछा, 'वह सुन्दर लड़की कौन थी जिसके लम्बे-लम्बे केश थे और हाथ में वायलेट फूलों का गुच्छा था ? वह लड़की इस ओर आयी और सीधे अमुक के आफिस में चली गयी।'

'उस लड़की का चेहरा फीका पड़ गया। उसने मेरी ओर देख कर धीरे स्वर में कहा, अरे वह लड़की ! उसको आपने देखा ? कितनी ही बार हमें वायलेट की सुगन्ध आती है, किन्तु हमारी दूकान में कोई भी व्यक्ति उस लड़की को देख नहीं सकता।

'वह तो अमुक महाशय की इकलौती पुत्री है। कई वर्ष पूर्व वह मर चुकी है। मरने के समय उसकी आयु सोलह वर्ष थी। लोग कहते हैं कि उस लड़की के लम्बे सुन्दर बाल उसकी कमर के नीचे तक पहुँचते थे। दूसरे फूलों की अपेक्षा वायलेट का फूल उसे अधिक प्रिय था।

'कुछ समय पश्चात् मुझे मालूम हुआ कि उसके पिता ने अपनी पुत्री के शव का दाह-संस्कार किया था और उसकी राख को अपने ऑफिस मे एक सुन्दर पात्र मे रख रखा था। इससे मैंने अनुमान लगाया कि उस मनुष्य ने अपनी प्रिय पुत्री की आत्मा को आने का एक मौका दे रखा था।'

मिस लारेंस का कहना है कि 'मैंने उसे घर मे आते हुए देखा था और यह बात भी निश्चित है कि इससे पहले मैंने उसके पिता के विषय में कुछ भी नहीं सुना था और इसी भाँति उस लड़की से भी मैं पहले से न तो परिचित थी और न उसके विषय में कुछ सुना ही था, यह बात भी निश्चित है।'

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

हिमालय के असाधारण हिममानव की दन्तकथा के विषय में एक रोचक लेख मिला है। कमाण्डर रूपर्ट गोल्ड द्वारा

प्रस्तुत यह प्रामाणिक विवरण अभी हाल में ही प्रकाशित हुआ था। उन्होंने इस सम्बन्ध की जो अनेक घटनाएँ प्रस्तुत की हैं उससे इतना तो प्रमाणित हो ही जाता है कि 'मीगो' अथवा 'येति' (हिममानव) में किसी-न-किसी का अस्तित्व अवश्य है और यह येति अपने जङ्गली निवास-स्थान के आस-पास दक्षिण इंग्लैण्ड में भटक रहा है।

डेवानशायर में एक बार यह सनसनीपूर्ण समाचार फैला हुआ था कि जैसा पहले कभी देखने में नहीं आया वैसे सङ्ख्या-बद्ध पद-चिह्न दखने को मिले हैं। यह शीतकाल की हिम ऋतु थी जिससे वे पद-चिह्न स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ते थे। उन पद-चिह्नों का आकार अण्डे की तरह गोल था या यों कहिए कि घोड़े की नाल की तरह था, किन्तु अगला भाग कुछ अधिक नुकीला था। ये पद-चिह्न एक सीधी रेखा में एक के बाद एक पड़े हुए थे। प्रत्येक पग में ८ इञ्च का अन्तर था। अपने परिचित पशुओं में कौन ऐसा है जो अपना पद-चिह्न एक के बाद एक सीधी रेखा में छोड़ता जाय?

यह पद चिह्न सभी असामान्य स्थानों में दिखायी दिये थे। वे केवल भूमि पर ही नहीं पड़े थे वरन् छतों पर, पतली दीवालों के ऊपर, उद्यानों में और घर के बाहर सहन में सर्वत्र पड़े थे। ऐसा लगता है कि पद-चिह्न छोड़ने वाले प्राणी के मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट बाधक न थी।

एक उदाहरण तो ऐसा देखने में आया जहाँ वे पद घास की एक टाल को पार कर ठीक सीध में दूसरी ओर चले गये थे। उस टाल के किनारे कोई भी पद-चिह्न नहीं था। इससे ऐसा अनुमान होता है कि उस विचित्र प्राणी ने उस टाल को सीधे पार किया था। एक स्थान में ये पग सीधे घनी झाड़ियों

और वन-कुञ्जों के ऊपर होकर गये थे, किन्तु जैसा कि सामान्यतया होना चाहिए उसके सर्वथा विपरीत न तो कहीं पर पौधों की टहनियाँ और न वृक्षों की शाखाएँ ही टूटी थीं।

दक्षिण डेवोन प्रदेश के टोपशम, लिम्पस्टोन, एक्समाउथ, टैमाउथ तथा सालिश नगरों में ये पद-चिह्न सङ्घाबद्ध रूप में दिखायी पड़े थे। वहाँ से ये एक निश्चित मार्ग की ओर चले गये थे और पिघली हुई वर्फ में अदृश्य हो गये थे। उनके बाद फिर वे दिखायी नहीं पड़े, किन्तु उन पद-चिह्नों का अभी तक कोई भी सन्तोषजनक उत्तर प्राप्त नहीं हो सका।

पशुओं के पग पहचानने में निष्णात व्यक्तियों को बुलाया गया, उन पगों की भलीभाँति छानबीन की गयी, किन्तु उस प्रकार सीधा पग रखने वाला कोई भी ऐसा जीवित प्राणी नहीं मिला जिसके पग उससे मिलते-जुलते हों। ○

श्रद्धा का वर्णन

ईश्वरीय प्रकृति के सम्बन्ध में गाँधे की जैसी मान्यता है, मैं उसमें विश्वास रखता हूँ, किन्तु मुझे किसी भी इन प्रचलित मत अथवा सम्प्रदाय में विश्वास नहीं है। 'नास्तिक' अथवा 'अविश्वासी' भाव वाले शब्द से भी मैं अपरिचित-सा हूँ। यहूदी सम्प्रदाय में जो सर्वोच्च सिद्धान्त है, उनके कारण मैं उस सम्प्रदाय से सम्बन्धित हूँ, किन्तु इस सम्प्रदाय की अपरिहार्य कठोरताओं के कारण मैं उससे अलग हो गया हूँ। ईसाई धर्म की दया के आदर्श के विचार से मैं उससे सम्बन्धित हूँ, किन्तु इसमें जो ईश्वर और मेरे बीच एक माध्यम की शिक्षा है, उसके कारण मैं इससे दूर हट गया हूँ। जगत् को शाश्वत मानने में मैं भारत से सम्बद्ध हूँ, किन्तु उसके निर्वाण है

सिद्धान्त के कारण मैं उससे अलग हो गया हूँ। यह बात मैं नहीं समझ सका कि धर्म या सम्प्रदाय को लेकर मनुष्य कैसे परस्पर लड़ते या मारकाट करते हैं; क्योंकि सभी धर्मों का उद्देश्य आध्यात्मिक ही है।

सामान्य जनों के लिए प्रचार आवश्यक है और राज्य तथा राष्ट्र के अर्थशास्त्र की दृष्टि से ऐसी गौण संस्थाएँ होनी चाहिए। जिस प्रकार हम किसी के प्रेम-सम्बन्ध में पड़ने के लिए किसी व्यक्ति पर दबाव डालने का प्रयत्न नहीं करते उसी प्रकार धार्मिक मान्यता अथवा आत्म-सम्बन्धी विषयों में किसी पर प्रभाव डालने से हमें दूर ही रहना चाहिए।

मैं भगवान् की प्रत्येक प्रतिमा के सामने उन सभी मनुष्यों को सम्मान देने के लिए प्रणाम करता हूँ जो उनके चरणों के आगे झुक कर प्रणाम करते हैं: किन्तु ईश्वर की प्रार्थना के लिए अमुक मन्दिर होना ही चाहिए ऐसा मैं नहीं जानता। सभी मन्दिरों में सबसे अधिक सुन्दर अथेन्स का पार्थनोन मन्दिर है, किन्तु इसके ऊपर कोई छत नहीं है। इससे यह प्रकट होता है कि वहाँ पर पहले ईश्वर को कैद में रखा गया था, किन्तु अब वह बन्धनमुक्त हो चुका है।

आचार एक अलग वस्तु है। ईश्वर अथवा किसी सम्प्रदाय से इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। सौन्दर्य तथा आरोग्य—ये दोनों महान् लौकिक भेंट हैं। मेरी समझ में ये दोनों किसी अदृश्य शक्ति के ही कार्य हैं। जब कभी मैं अपनी कल्पना को मूर्त रूप देना चाहता हूँ तो ग्रीक के ईश्वर का आकार और नाम सदा-सर्वदा प्रतिभासित होता है।

किसी भी साम्प्रदायिक विधि के अनुसार परमेश्वर से मिलने की अपेक्षा परमेश्वर के कार्यों में उसके प्रत्यक्ष दर्शन करने में मैं विश्वास रखता हूँ। गोथे ने बतलाया कि

'दृश्य पदार्थों के पृष्ठभाग में किसी वस्तु की खोज न कीजिए। वे स्वयं अपने में एक सिद्धान्त हैं।' मृत्यु के अनन्तर अस्तित्व है अथवा नहीं, इस प्रश्न का उत्तर मैं गोथे के शब्दों में ही देना चाहता हूँ जिन्हें गोथे ने वृद्धावस्था में निर्मित अपने विचारों को प्रकट करने के लिए दर्जनों बार प्रयोग किया: 'इसके अनन्तर अपने जीवन के अस्तित्व की मान्यता का आधार मेरी कर्मठता है, क्योंकि यदि मैं अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक अविराम गति से कार्य करता रहा तो जब मेरा यह वर्तमान शरीर मेरे मन को धारण करने में असमर्थ हो जायगा तो मेरे अस्तित्व को बनाये रखने के लिए प्रकृति मुझे दूसरा रूप देने के लिए बाध्य होगी।'

न्याय के सुसङ्गत सिद्धान्त के अनुसार मैं जिस प्रकार स्फटिक मणि में ईश्वर के दर्शन कर सकता हूँ उसी प्रकार हरी दूर्वा में उसके दर्शन कर सकता हूँ। मैं जिस प्रकार कुत्ते के प्रेमल नेत्रों में ईश्वर की झाँकी पाता हूँ उसी प्रकार उसके दर्शन एक नारी के सुन्दर हृदय में भी करता हूँ। मैं तितली के झीने-झीने परों में ईश्वर के दर्शन करता हूँ तो उसी प्रकार उषाकालीन मृदुमुखी सुहिन में भी उसके दर्शन पाता हूँ। चम्पक कली के अवगुण्ठन में ईश्वर मुझे दर्शन देता है उसी प्रकार उस कली के खिलने से पूर्व उसे चुन लेने वाले बालक के हाथों में भी वह मुझे अपना दर्शन देता है। प्राचीन काल के अन्यायों को मिटाने के लिए आज जो क्रान्ति जगी है, उस में मैं ईश्वर के दर्शन करता हूँ। प्रेम-सम्बन्ध में स्पर्धा करने वाले प्रतिपक्षी से अपने वैर का बदला चुकाने की प्रतिज्ञा करने वाले युवक के प्रज्वलित नेत्रों

में मुझे ईश्वर के दर्शन होते हैं, उसके साथ ही युद्ध के बाद उसके नेत्रों से गोली निकालने वाले डाक्टर के अविचलित हाथ में भी मुझे उसके दर्शन मिलते हैं। जब अपने दिव्य सर्जन के होठों पर अलौकिक हास्य की रचना कर रहा हो और जब वह मनुष्य की आकृति में हास्यजनक चित्र अङ्कित कर रहा हो, उस ससम लियोनार्ड के कलाकार हाथों में मुझे ईश्वर के दर्शन होते हैं। खिलवाड़ करता हुआ बिल्ली का बच्चा जब अपने साथी को दर्पण में खोज रहा हो, उसमें मुझे उस ईश्वर के दर्शन होते हैं और उसके साथ ही जब वह अपने हिंसक नेत्रों से देखते हुए पीतरङ्गी पक्षी का पीछा कर रहा हो उसमें मुझे उसके दर्शन मिलते हैं। स्वप्न में दी हुई उसकी प्रेरणाओं में मैं उसके दर्शन करता हूँ और उन प्रेरणाओं को पूरा करने में मुझे जो कठोर श्रम उठाना पड़ता है उसमें भी मैं उसके दर्शन करता हूँ।

—इमिल लुडविग
प्रसिद्ध जर्मन कथाकार

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

(२)

स्वर्ग में निवास

जब पुण्यात्मा व्यक्ति शरीर त्याग करते हैं तो वे स्वर्ग को प्रयाण कर वहाँ निवास करते हैं। सामान्यतया ऐसा विश्वास किया जाता है कि स्वर्ग में उनके निवास की अवधि अस्सी से दो सौ चालीस वर्ष तक की होती है। स्वर्ग में उनके निवास की अवधि समाप्त होने के पश्चात् वे इस भूलोक में पुनः जन्म लेते हैं।

पुण्यात्मा जन मृत्यु के अनन्तर अपने पुण्यों, अपने सत्कर्मों, अपनी सेवाओं तथा अपने त्यागों के पुरस्कार-स्वरूप स्वर्ग-सुख का उपभोग करते हैं, जब उनके पुण्यफल समाप्त हो जाते हैं, तो वे भूलोक में वापस आ जाते हैं।

भगवान् कृष्ण भगवद्गीता में कहते हैं :

"ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥"

—वे उस विपुल स्वर्ग-सुख का भोग करने पर पुण्य क्षीण हो जाने पर मर्त्यलोक में पुनः प्रवेश करते हैं। इसी प्रकार स्वर्ग की कामना से वेदप्रतिपाद्य कर्म का अनुष्ठान करने से संसार में बारम्बार गमनागमन करना होता है।

किन्तु पुण्यात्मा व्यक्ति जब स्वर्ग से पार्थिव जगत् में वापस आता है तो वह कुलीन तथा पुण्यात्मा-परिवार में जन्म ग्रहण करता है। पुण्य कर्म का यही लाभ है। व्यक्ति के पुण्य कर्मों का दोहरा प्रतिफल या पुरस्कार मिलता है। स्वर्ग में निवास करने के पश्चात् भूलोक में वापस आने पर उसे अपने सत्कर्मों तथा आन्तर उद्विकास के लिए अच्छा वातावरण, परिस्थितियाँ तथा सुयोग प्रदान करने वाला अच्छा जन्म प्राप्त होता है।

ज्ञानी की मरणोत्तर दशा

ज्ञानी जिसने अपनी आत्म-सत्ता का परम ब्रह्म के साथ तादात्म्य अनुभव कर लिया है उसके लिए न तो जन्म है और न लोकान्तरण। उसके लिए मुक्ति भी नहीं है, क्योंकि

वह पहले से ही मुक्त हो चुका है। वह सच्चिदानन्द आत्मा की अनुभूति में सुस्थित है।

ज्ञानी को इस विश्व तथा अपने स्वयं के शरीर की धारावाहिक सत्ता मात्र भ्रान्ति प्रतीत होती है। इसके आभास को वह दूर नहीं कर सकता है, पर वह अब उसको और धोखा नहीं दे सकती है। वह शरीर की मृत्यु के पश्चात् ऊर्ध्वगमन नहीं करता, किन्तु वह जहां है और वह जो है और सदा था—सभी प्राणियों तथा पदार्थों का प्रथमजात मूल-तत्त्व; आद्य, शाश्वत, शुद्ध, मुक्त ब्रह्म—बना रहता है।

शरीर के रहते समय तथा शरीरपात होने के पश्चात् भी ज्ञानी अपने स्वरूप में विश्राम लेता है जो कि परम पूर्ण, परम शुद्ध, नित्य चित् और आनन्द है। निम्नाङ्कित दृढ़ कथन में एक ज्ञानी की अपनी गम्भीरतम दृढ़ धारणा तथा अनुभूति है :

"मैं असीम, अविनाशी, स्वयं-प्रकाश तथा स्वयंभू हूँ। मैं अनादि, अनन्त, अक्षय, अजन्मा तथा अमर हूँ। मेरी कभी भी उत्पत्ति नहीं हुई। मैं नित्य मुक्त, पूर्ण, स्वाधीन हूँ; एकमात्र मैं ही हूँ; मैं सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हूँ; मैं सर्वव्यापक तथा सबमें अन्तर्विष्ट हूँ; मैं परम शान्ति तथा आत्यन्तिक मोक्ष हूँ।"

ज्ञानी सदा जीवित रहता है। उसने अनन्त जीवन प्राप्त कर लिया है। लालसाएं उसे उत्पीड़ित नहीं करतीं, पाप उसे कलङ्कित नहीं करते, जन्म तथा मृत्यु उसे स्पर्श नहीं करते, वह सभी लालसाओं तथा आशाओं से मुक्त होता है, वह सदा अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में विश्राम लेता है। वह सभी में एक ही असीम आत्मा के तथा एक असीम आत्मा में सबके दर्शन करता है—असीम आत्मा जो कि उसकी अपनी ही सत्ता है। वह चिदानन्दमय असीम आत्मा के रूप में सदा बना रहता है। ●

पुनर्जन्म तथा मानव का उद्विकास

पुनर्जन्म का, मरणोत्तर जीवन का प्रश्न युगों से अब तक प्रहेलिका ही बना रहा है। जीवन जिन समस्याओं का पूर्वाभास देता है, उन सबका उत्तर देने में मानव-ज्ञान मुश्किल से सक्षम है। गौतम बुद्ध ने कहा है : "हमारी इन्द्रियों द्वारा हमारी भ्रान्ति के अनुसार सृष्ट इस रूप तथा भ्रान्तिमय जगत् में व्यक्ति या तो है या नहीं है, या तो जीता है या मर जाता है; किन्तु सच्चे तथा रूपहीन जगत् में ऐसी बात नहीं है; क्योंकि यहाँ सब बातें हमारे ज्ञान के अनुसार दूसरे ढङ्ग से होती हैं और यदि आप पूछें कि क्या मनुष्य मृत्यु के परे रहता है। मैं उत्तर देता हूँ 'नहीं'—उस मानव-मन के किसी बोधगम्य अर्थ में नहीं जो मृत्यु के समय स्वयं मर जाता है। और यदि आप पूछते हैं कि क्या मृत्यु होने पर मनुष्य पूर्णरूप से मर जाता है तो मेरा उत्तर है नहीं; क्योंकि जो मरता है वह इस रूप तथा भ्रान्तिमय जगत् का है।"

तथापि मानव-मन किसी निश्चित निष्कर्षहीन रहस्यमय उत्तर से अपने को उलझाने नहीं देता और ज्ञानीजनों ने एक बार जो-कुछ कहा था, उसमें अन्ध-विश्वास का युग बहुत दिन हुए जाता रहा। आज हमसे अकेले विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तियों की ही नहीं, अपितु सामूहिक रूप से ठोस प्रमाण की सतत माँग है। यदि जीवात्मा के आवागमन जैसे गम्भीर रहस्य के विषय में ऐसा भाव है तो उसका स्पष्ट उत्तर यह है कि 'अच्छा होगा कि आप अपने मरने तक प्रतीक्षा करें, और तब आप निर्णायक रूप से जान सकेंगे।' अतएव, इस पर शान्त, बुद्धिसङ्गत, निष्पक्ष तथा अवैयक्तिक विचार की आवश्यकता है।

कार्य-कारण का सिद्धान्त तथा तत्परिणामी पुनर्जन्म की अपरिहार्यता हिन्दू-दर्शन का सचमुच मूल-सिद्धान्त ही है। किन्तु हम इस बात की उपेक्षा नहीं कर सकते कि इस भूलोक की २०० करोड़ की जनसङ्ख्या में से ८० करोड़ लोगों की पुनर्जन्म में विश्वास की कोई धार्मिक परम्परा नहीं है जबकि लगभग ५४ करोड़ लोग इसकी सम्भावनाओं के विषय में बिलकुल अज्ञेयवादी हैं।

तब यह स्वाभाविक है कि यदि हिन्दू यह सोचें कि वे ही मनुष्यों में सर्वाधिक बुद्धिमान् हैं तथा शेष अज्ञानी लोगों का एक अति-विशाल समूह है जिनके लिए अज्ञानता ही परमानन्द है तो वह केवल डींग मारना होगा। तब यह प्रश्न उठेगा कि यदि कोई यह विश्वास करे कि उसका वर्त्तमान जन्म उसके पूर्वजन्म के कर्मो का परिणाम है तो पूर्वजन्म को उत्पन्न करने वाला कारण क्या था ? यही सही, एक और पुनर्जन्म। किन्तु, उस जन्म का कारण क्या था ?

अब, इसका उत्तर देने के लिए हमें उद्विकास के नियम का आश्रम लेना होगा और कहना पड़ेगा कि सुदूर अतीत में हम एक बार पशु थे और उस जीवन-सस्तर से हम मानव-प्राणी बने। किन्तु फिर प्रश्न उठेगा कि कार्य-कारण के सिद्धान्त को उचित सिद्ध करने के लिए मानव-प्राणी के रूप में जन्म लेने के लिए भी कोई कारण रहा होगा, और चूँकि पशुओं में सदाचार तथा दुराचार के निर्णय करने की बुद्धि नहीं होती तो मानव परिवार में अपने जन्म के लिए हम कैसे उत्तरदायी हो सकते हैं ? कोई बात नहीं, आइए हम इस तर्कहीन परिकल्पना को अस्थायी रूप से ठीक मान लें और अपने को प्राणि-परिवार तथा उद्भिज्ज तथा खनिज जगत् की ओर वापस ले जायें और अन्त में इस निष्कर्ष पर

पहुँचें कि भगवान् ही उत्तरदायी आद्य कारण है, किन्तु कार्य-कारण के सिद्धान्त में विश्वास करते हुए, इतना अधिक तर्क के होने पर भगवान् कैसे इतना अन्यायी तथा उन सब कष्टों, सङ्घर्षों तथा दुःखों का आद्य कारण हो सकता है जिन्हे मानव-प्राणी के रूप में जन्म लेकर हमें भोगना होता है।

आद्य कारण का कोई उत्तर नहीं है। सर्वोत्तम मार्ग है : भले बने और भला करें, सद्विवेक में आस्था रखें तथा व्यक्ति की योग्यता और जीवन के नैतिक सिद्धान्तों का सम्मान करें तथा शेष भगवान् पर छोड़ दे। ऐसी अनेक चीजें है जो मानव-मस्तिष्क के कार्यक्षेत्र से बाहर है और आत्मज्ञान—यह शब्द कैसा भी प्रभावशाली हो—उनका एकमात्र समाधान है। तथापि *पुनर्जन्म की धारणा की यों ही उपेक्षा नहीं की जा सकती है,* क्योंकि कुछ ऐसे ठोस तर्कसङ्गत अध्याहार है जो विश्वास को बनाये रखने मे विवेक पर प्रभाव डालते है।

वैदिक साहित्य की प्रारम्भावस्था मे, वास्तव में, पुनर्जन्म का कोई उल्लेख, पाप की कोई कालिमा, नरकाग्नि का कोई भय तथा मर्त्य मानव के लिए कोई स्वर्गिक प्रलोभन नही था। किन्तु आरण्यक युग के प्रारम्भ में, जब वैदिक मानस सावयवी ईश्वरत्व की बहुदेववादी धारणा से एक परम सत्ता के अद्वैतात्मक आदर्श की दिशा मे उन्नत हुआ तो मानव-मन में भगवान् की निष्कलङ्क सत्ता को सुरक्षित करने के लिए तर्कसङ्गत आवश्यकता के रूप मे कार्य-कारण तथा जीवात्मा के देहान्तरगमन के सिद्धान्त का विकास किया गया।

अब यह सर्वविदित है कि विश्व के तीन प्रमुख धर्मों ने—जिनका उद्भव यद्यपि हिन्दू धर्म की अपेक्षा आधुनिक है—नरक में शाश्वत शैतानी के विकराल दृश्य को प्रस्तुत

करना आवश्यक समझा जिससे कि लोग एक-दूसरे के गले पर झपटने से दूर रहें तथा सामाजिक सुव्यवस्था, संस्कृति के मूल्य तथा शान्ति की उपयोगिता को सम्मान दें। इसके साथ ही इस उद्देश्य की पूर्त्ति को निर्दिष्ट कर स्वर्ग में आनन्दपूर्ण अमरत्व का सजीव प्रलोभन पेश किया गया। किन्तु इससे उद्विकास के सिद्धान्त की प्रतिष्ठा तत्काल कम हो जाती है और व्यक्ति को उत्तरकाल में उद्धार का एकमात्र अवसर प्रदान किये विना ही अकस्मात् नरक का दण्ड दे दिया जाता है या अत्यधिक कृपापूर्वक उसे व्यष्टिकृत सत्ता में अनन्त काल तक के लिए स्वर्ग में लटकाये रखा जाता है। इसमें इस वात का भी कोई समाधान नहीं है कि क्यों एक व्यक्ति दुष्ट होने पर भी फलता-फूलता तथा सुखी रहे और अन्य पुण्यात्मा होने पर अभाव तथा दुःखों से पूर्ण नीरस जीवन यापन करे।

इसके विपरीत भारतीय ऋषियों ने इससे अच्छा समाधान प्रस्तुत किया तथा व्यक्ति के विकास के लिए पुनर्जन्म को उत्तरदायी वनाया। व्यक्ति ही अपने भाग्य का स्वामी है। इस संसार की सृष्टि ही क्यों की गयी, इस प्रश्न का उत्तर देने में अपनी असमर्थता को उन्होंने निस्सङ्कोच रूप से स्वीकार किया और उसके आधार पर उन्होंने निश्चयपूर्वक कहा कि, भगवान् सद्-असद् का, सुख-दुःख का उत्तरदायी नहीं है। व्यक्ति ही अपनी नियति के लिए उत्तरदायी है। इसके साथ ही वह स्व-प्रयास से इसमें सुधार लाने में समर्थ है। अतएव जीवन की सभी रहस्यमय असमानताओं तथा अन्यायों के लिए भगवान् पर दोषारोपण नहीं किया जा सकता है तथा उन-(भगवान्) का स्थान मानव की विचारधारा में अक्षत वना रहा। अतएव मृत्यूपरान्त यादृच्छ अनुद्धार का

औचित्य सिद्ध करने वाले किसी भी विश्वास की अपेक्षा पुनर्जन्म का सिद्धान्त कहीं अधिक विश्वासोत्पादक है।

इसके अतिरिक्त हमारे पास ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिसमें बालक स्वल्प प्रशिक्षण से सहज ही निपुण कलाकार अथवा प्रतिभाशाली गायक बन जाता है जबकि कुछ अभिजातवर्गीय परिवारों में हम देखते हैं कि अत्यधिक शिक्षा-प्राप्त अध्यापकों के भारी प्रयास तथा स्वयं बालक की ओर से भी कठोर श्रम के बावजूद भी वह शिक्षा-प्राप्ति में बहुत ही कम उन्नति कर पाता है। विलक्षण प्रतिभासम्पन्न बालकों के उदाहरण भी हैं जिनके प्रशिक्षण की कोई पृष्ठभूमि नहीं है। एक अन्य उदाहरण लीजिए। दो बालक एक ही माता-पिता के यहाँ जन्म लेते हैं तथा एक ही वातावरण में उनका पालन-पोषण होता है। उनमें से एक शिष्टाचार-सम्पन्न प्रतिभाशाली विद्वान् बनता है तथा दूसरा बिना किसी भी प्रत्यक्ष कारण के मन्दबुद्धि चिथड़ा पहनने वाला दरिद्र बनता है। एकमात्र पुनर्जन्म का सिद्धान्त इस भेद का उत्तर दे सकता है।

सांसारिक दृष्टिकोण से भी पुनर्जन्म जीवन की सम्पोषक शक्ति है। कितने ही स्वप्न तथा कितनी ही आकांक्षाएँ अपरितुष्ट ही रह जाती है, यौवन क्षीण होकर वृद्धावस्था तथा अशक्तता का रूप ले लेता है तथा दुर्ग्राह्य आशा-रूपी तृणमणि अधिकाधिक धुँधली तथा अशक्त बन जाती हैं; किन्तु इसकी अग्नि-शिखा का टिमटिमाना इस सुदूर की आशा से बना रहता है कि कदाचित् किसी अन्य जीवन में वे आशाएँ पूर्ण हो जायँगी। अतएव इस दृष्टिकोण से भी पुनर्जन्म जीवन के लिए एक सौम्य सान्त्वना तथा आश्वासन है।

एक अन्य विचारधारा है जो यह विश्वास करती है कि शरीर तथा आत्मा के पञ्चतत्त्वों के चरम विस्मृति में चले जाने से मृत्यु का घन जीवन का अन्तिम रूप से अवसान कर देता है। यह सुविधाजनक विश्वास कुछ बौद्धिक वितण्डावादियों के लिए बहुत ही आकर्षक है। किन्तु यदि ऐसी बात हो तो प्रेतों तथा आत्मायनों में प्राप्त होने वाले अकाट्य अनुभवों के लिए क्या स्पष्टीकरण है? अतः मरणोपरान्त जीवन को नियम-विरुद्ध नहीं घोषित किया जा सकता है। आइए, अब हम यह विचार करें कि आध्यात्मिक साधकों का क्या मनोभाव होना चाहिए।

मनुष्य के अन्दर आश्चर्यजनक सम्भाव्यताएँ हैं। वह भाग्य का दास नहीं है। एक बार बुद्ध ने अपने अत्यधिक प्रतिभाशाली शिष्यों में से सारिपुत्र से—बौद्ध धर्म की स्थापना के लिए संसार जिनका अत्यधिक ऋणी है—प्रश्न किया: "क्यों! भिक्षु, क्या जीवन तुम्हें बोझिल नहीं लगता और क्या तुम मृत्यु द्वारा इससे मुक्त होना नहीं चाहते? या जीवन तुम्हें मोहित करता है; क्योंकि एक महान् जीवन-लक्ष्य को पूर्ण करना है।" सारिपुत्र ने उत्तर दिया, "श्रद्धेय गुरुदेव, मैं जीवन की आकांक्षा नहीं रखता। मैं मृत्यु की आकांक्षा नहीं रखता। जैसे सेवक अपनी भृति की प्रतीक्षा करता है वैसे ही मैं अपनी आने वाली घड़ी की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

साधक की भी ऐसी ही मनोवृत्ति होनी चाहिए। उसे स्वयं कुछ पूर्ण करना नहीं है; क्योंकि उसका जीवन भगवदिच्छा की पूर्ति है। उसमें किसी सुयोग्य आध्यात्मिक जीवन-लक्ष्य को प्रोत्साहित करने के लिए पुनः जन्म लेने की कामना को भी कोई स्थान नहीं होना चाहिए; क्योंकि क्या भगवान् हमारी

तथा त्यागी दत्तात्रेय ऋषि ने नहीं कहा, "दीक्षित व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होता है।"

पशु-योनि में अधोगमन

हिन्दू शास्त्र कहते हैं कि मनुष्य अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार देव, पशु, पक्षी, वनस्पति अथवा पाषाण बन सकता है। उपनिषदें भी इस कथन का समर्थन करती हैं। कपिल भी इस विषय पर सहमत हैं।

किन्तु बौद्ध तथा कुछ पाश्चात्य दार्शनिक शिक्षा देते हैं: "प्राणी जब एक बार मानव-जन्म ले लेता है तो फिर उसकी पुनः अधोगति नहीं होती। अशुभ कर्मों के कारण पशु-योनि में जन्म लेने की आवश्यकता नहीं है। उसे मानव-योनि में ही अनेक प्रकार से दण्ड दिया जा सकता है।"

जब मनुष्य देव-रूप धारण करता है तो उसके सभी मानवीय संस्कार, स्वभाव तथा प्रवृत्तियाँ प्रसुप्तावस्था में रहती हैं। जब मनुष्य श्वान का स्वरूप धारण करता है तो केवल पाशवी प्रवृत्तियाँ, स्वभाव तथा संस्कार प्रकट होते हैं। मानवीय प्रवृत्तियाँ दमित रहती हैं। कुछ कुत्तों के साथ राजा के राजप्रासादों तथा अभिजातवर्गीय लोगों के प्रासादों में राजसी व्यवहार किया जाता है। वे मोटर गाड़ियों में चलते हैं, स्वादिष्ट भोजन करते हैं और गद्दों पर सोते हैं। ये सब अधः-पतित आत्माएँ हैं।

स्थूल शरीर की मृत्यु के पश्चात् भी लिङ्ग-शरीर जीवित रहता है

मृत्यु के पश्चात् पञ्चतत्त्वों से निर्मित यह स्थूल शरीर साँप के निर्मोक या केंचुल की भाँति त्याग दिया जाता है।

लिङ्ग-शरीर— जिसमें उन्नीस तत्त्व अर्थात् पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च प्राण, मन, बुद्धि, चित्त तथा अहङ्कार होते हैं—स्वर्ग को जाता, भूलोक को वापस आता तथा पुनर्जन्म ग्रहण करता है।

लिङ्ग-शरीर में ही अतीत के सब कर्मों के संस्कार रहते हैं। यह शरीर आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने और तत्परिणाम-स्वरूप मोक्ष-लाभ करने तक बना रहता है। तब इसका विघटन हो जाता है और इसके घटक तन्मात्राओं अथवा अव्यक्त के महासागर में मिल जाते हैं।

आगामी जन्म का स्वरूप

व्यक्ति के मरण-काल में उसके मन में जो अन्तिम सबल विचार अभिभूत रहता है, वही उसके आगामी जन्म के स्वरूप को निर्धारित करता है। यदि मृत्यु के समय उसके मन में चाय का विचार आता है और यदि उसने सत्कर्म किये हैं तो वह अपने आगामी जीवन में चाय-वाटिका का प्रबन्धक बनता है और यदि उसने कोई पुण्यप्रद कार्य नहीं किया है तो वह चाय-वाटिका में भारिक के रूप मे जन्म लेता है।

मरते समय एक मद्यप का विचार मद्य के सम्बन्ध में होता है। व्यभिचारी व्यक्ति, जब मरणासन्न होता है तो उसका विचार स्त्री-विषयक होता है। मैंने एक ऐसे मरते हुए व्यक्ति को देखा जिसे नस्यसेवन की आदत थी। जब वह अचेतावस्था मे था तो अपना हाथ बार-बार अपनी नासिका की ओर ले जाता और काल्पनिक रूप से सूँघता था। यह स्पष्ट है कि उसका विचार नस्य के विषय में था। एक औषधालय का चिकित्साधिकारी अपशब्द प्रयोग करने का व्यसनी था, वह

जब मरणावस्था में था तो उसने सभी प्रकार के अपशब्द तथा अश्लील शब्दों का प्रयोग किया। मैं इससे पूर्व अन्यत्र बतला चुका हूँ कि राजा जड़ भरत ने करुणावश एक मृग की बहुत देख-रेख की। धीरे-धीरे उनमें राग उत्पन्न हुआ। जब वे मरणावस्था में थे तो उनके मन में एकमात्र उस मृग का विचार ही अभिभूत था; अतः उन्हें मृग-रूप में जन्म ग्रहण करना पड़ा।

प्रत्येक हिन्दू-परिवार में मरते हुए व्यक्ति के कानों में हरि, ॐ, राम, नारायण आदि भगवान् का नाम फूँका जाता है। इसका मूल कारण यह है कि मरने वाला व्यक्ति भगवान् के नाम और रूप को स्मरण करे और उसके द्वारा आनन्द-धाम पहुँच जाय। यदि व्यक्ति अनेक वर्षों तक धार्मिक जीवन यापन करता है और सुदीर्घ काल तक जप तथा भगवान् का ध्यान करता है तभी वह मरण-काल में स्वभाववश भगवान् और उनके नाम को स्मरण कर सकेगा।

स्वर्ग तथा नरक के विषय में वेदान्तिक दृष्टिकोण

वेदान्त के अनुसार स्वर्ग तथा नरक केवल मन की सृष्टि हैं। धर्मात्मा लोगों को सद्गुण, परोपकारिता, प्रेम तथा सेवा के और अधिक कार्य करने का ओर अभिप्रेरित करने के लिए स्वर्ग के आनन्दों का उल्लेख किया जाता है। दुष्ट लोगों को उनके दुष्ट, अनैतिक, अनिष्टकर तथा हानिकारक कामों से रोकने के लिए ही नरक की यातनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं।

मानव-मन शुद्धता, साधुता, प्रेम, सेवा आदि से अपने चतुर्दिक् अपने स्वर्ग का निर्माण करता है। वह अपवित्रता, भूल, बुराई, अज्ञान आदि द्वारा अपने लिए कष्ट और शोक उत्पन्न करता है जिन्हें नरक की संज्ञा दी गयी है। कवि मिल्टन ने

अपने गीत में सच ही कहा है कि मन का अपना स्थान है और वह अपने अन्दर ही स्वर्ग तथा नरक की सृष्टि कर सकता है।

मनुष्य अपने सत्स्वरूप में, अपने आत्मरूप में नित्य, अजन्मा, अनन्त तथा प्रकाश, आनन्द और शान्तिस्वरूप है। अज्ञान ही उसके दुःख, परिसीमन, वैयक्तिकता, भूल तथा जन्म-मृत्यु का मूल कारण है। आत्मसाक्षात्कार व्यक्ति को असीम शान्ति, स्वतन्त्रता तथा आनन्द के साम्राज्य मे मुक्त कर देता है।

पौराणिक साहित्य इस बात की पूर्ण रूप से पुष्टि करता है कि एक नरक नामक स्वावलम्बी लोक है जो स्वय में अवस्थित है। कल्पना कीजिए कि एक दुष्ट तथा चिरकाल से मद्य पीने वाला व्यक्ति है। वह प्रत्येक प्रकार के दुर्गुणों के प्रति असंवेदनशील है। यमराज के दूत मृत्यु के अनन्तर उसे नरक नामक लोक में ले जाते है और उसे तरसाने वाली यातनाओं तथा उन झुलसने वाले मरुस्थलो मे चलने के सन्ताप को भोगने के लिए छोड़ देते है जहाँ उसकी मद्य पीने को तड़पाने वाली पिपासा शान्त नही होती। इस भाँति व्यक्ति को कष्ट के रूप में अपनी भूलों का बदला चुकाना तथा अपनी आत्मा को शुद्ध करना होता है। इसी भाँति एक स्वर्ग नामक स्वावलम्बी लोक है जहाँ धर्मात्मा व्यक्ति को ले जाया जाता है।

मृत्यु के सम्बन्ध में पाश्चात्य दार्शनिकों के विचार

मैं व्यक्तिगत रूप से विश्वास करता हूँ कि शरीर की मृत्यु के अनन्तर भी मनुष्य का अस्तित्व बना रहता है। यद्यपि मैं अपने इस विश्वास के औचित्य को भलीभाँति तथा

पूर्णतः सिद्ध नहीं कर सकता, फिर भी यह विश्वास वैज्ञानिक प्रयोग से सिद्ध किया जा सकता है अर्थात् यह विश्वास तथ्य तथा अनुभव पर आधारित है। मैं बलपूर्वक यह कहता हूँ कि मृत्यु के अनन्तर अस्तित्व के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं और उनमें से कितने ही उदाहरण सर्वथा ठीक हैं। इस बात की उपेक्षा वैसे ही नहीं की जा सकती जैसे कि अन्य वैज्ञानिक अनुभवों की।

—सर ओलिवर लाज

मनोविज्ञान के स्तर पर विचार करने से भी मृत्यु के अनन्तर जीवन के सातत्य के सिद्धान्त की स्वीकृति में ही आकर्षण का केन्द्र है न कि उसके निषेध में। हमारी मृत्यु ही हमारे पारगामी जीवन का जन्म है।

—डब्ल्यू० टूडर जोन्स

जीवन का यह प्रतीयमान अन्त (मृत्यु) वास्तविक अन्त नहीं है, क्योंकि यह तो व्यक्ति के वास्तविक स्वरूप को स्पर्श भी नहीं कर सकता। वह तो मनुष्य की छाया मात्र को, उसके प्रतिरूप को ही नष्ट करता है।

—शेली

आत्मा अजन्मा और अमर दोनों ही होना चाहिए। इसे मानने से मानव का आत्मा पशु योनि में प्रवेश करता है और वह पशु-योनि से पुनः मानव-योनि में वापस आता है, क्योंकि वह पहले मानव-योनि में रह चुका है।

—अफलातून

हम अपने विगत जीवन के बाद, जिसे कि हम भूल चुके हैं, इस जीवन-रूपी भट्टी में डाले गये हैं, जहाँ पर हमारा

नवनिर्माण तथा नवीनीकरण किया जाना है, हम पर दुःखों, विरोधों, वासनाओं, शङ्काओं, रोगों तथा मृत्यु का पानी चढ़ाया जाना है। इन सब यातनाओं को हम इसलिए सहन कर रहे हैं कि जिससे हमारा कल्याण हो, हमारी शुद्धि हो अथवा यों कहिए कि जिससे हम पूर्ण बनें। युग-युग से, जाति-जाति से हम एक धीमी प्रगति कर रहे हैं। यह प्रगति धीमी होते हुए भी निश्चित रूप से प्रगति है। यह एक ऐसी प्रगति है जिसके सम्बन्ध में भले ही नास्तिक लोग इनकार करें, फिर भी इसके प्रमाण स्पष्ट है। हम देखते हैं कि जहाँ एक ओर हमारे जीवन की सभी अपूर्णताएँ तथा हमारी परिस्थिति कि विशेषताएँ हमें निरुत्साही तथा भयभीत बनाती हैं और दूसरी ओर हमें बहुत-सी उत्कृष्ट क्षमताएँ भी प्रदान की गयी हैं जिससे कि हम अपनी पूर्णता की खोज कर सकें, मोक्ष प्राप्ति के योग्य बन सकें और भय तथा मृत्यु से मुक्त बन सकें वहाँ पर ही एक दिव्य सहज ज्ञान, जो प्रकाश और क्षमता में सदा विकास कर रहा है, हमें यह समझने में सहायता देता है कि इस सम्पूर्ण विश्व में कोई वस्तु ऐसी नहीं है जिसका कि पूर्णतः नाश होता हो, हम अपने शाश्वत विकास के अनुकूल नयी परिस्थितियों में पुनः जन्म लेने के लिए अपने पार्थिव जीवन के चारों ओर फैले हुए पदार्थों से कुछ काल के लिए छुप जाते हैं।

—जार्ज सैण्ड

यदि हम जीवात्मा के पुनरागमन के सिद्धान्त पर विश्व के राष्ट्रों में इसके विस्तृत प्रसार तथा ऐतिहासिक युगों से इसके प्रचलन की दृष्टि से विचार करें तो उसे निश्चित रूप से एक

स्वाभाविक अथवा मानव-मन का एक सहज विश्वास मानना पड़ेगा।

—प्रोफेसर फ्रांसिस ब्राउन

यद्यपि पाश्चात्य मानव-मन के लिए पुनर्जन्म का सिद्धान्त अपरिचित-सा लगता है, फिर भी मावन-जाति का अधिकांश भाग इस सिद्धान्त को व्यापक रूप से स्वीकार कर चुका है और वह भी इतिहास के आदि युग से ही। धर्मशास्त्र में पुनर्जन्म के दिये गये प्रमाणों की अपेक्षा निम्नाङ्कित सात युक्तियां अधिक सुसङ्गत और न्यायोचित लगती हैं :

१. अमरता-सम्बन्धी विश्वव्यापक विचार पुनर्जन्म की मांग करता है।

२. सादृश्यता इसे अधिक सम्भाव्य बनाती है।

३. यह सिद्धान्त बहुत-सी बातों में विज्ञान से मिलता-जुलता है।

४. आत्मा के स्वरूप को इसकी आवश्यकता है।

५. 'मूलगत पाप' और 'भविष्यकालीन दण्ड'। सम्बन्धी नीतिशास्त्र के प्रश्नों का यह समुचित उत्तर देता है।

६. अनेक अलौकिक अनुभवों और असामान्य स्मृतियों के रहस्य को यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है।

७. इस पार्थिव जीवन में जो अन्याय और कष्ट महत्त्वपूर्ण भाग अदा करते हैं, उनका समाधान यही सिद्धान्त करता है।

ईसाई मत का यह उपदेश है कि 'जैसा बोओगे, वैसा ही

काटोगे।' यह उपदेश 'पुनर्जन्म और कर्म' की पौर्वात्य शिक्षा से पूर्णतया मिलता है।

महान् सफलताओं के लिए कोई राजमार्ग नहीं है, फिर भी संसार में अद्भुत प्रतिभाशाली और अप्रतिम बुद्धि के बालक पाये जाते हैं। यह तथ्य पुनर्जन्म के सिद्धान्त की सत्यता का साक्षी है। प्रत्येक मानव पहले अनेक जीवन जी चुका है और उसे भूतकाल के अनुभव प्राप्त हैं, जिसके कारण प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है।

—आर्थर ई० मंसे